देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
March 2025
Vol.-21, Issue-3

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

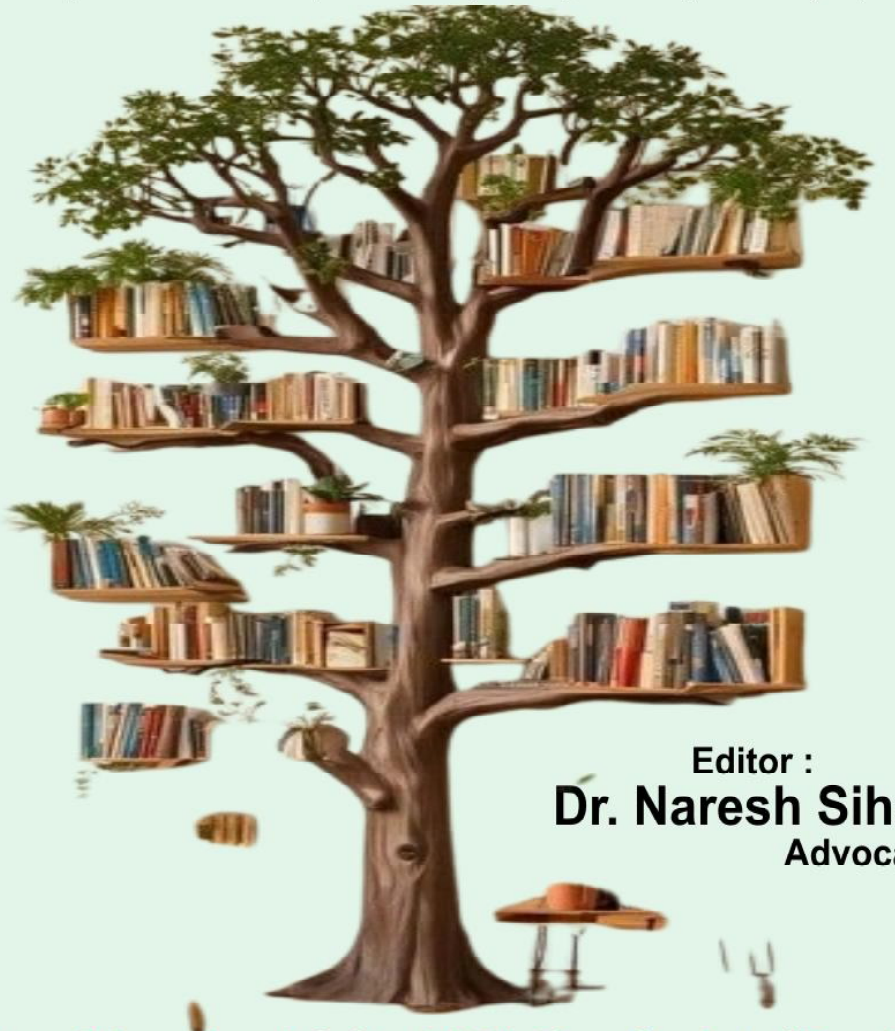

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 21 **ISSUE-3(1)** **(मार्च 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – मार्च 2025

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	9–9
2.	Emerging Digital Literature in New Media : Impact on Modern Contemporary World	Parul Yadav	11-16
3.	IMPACT OF REGULAR YOGA PRACTICES FOR STRESS MANAGEMENT : NOVEL APPROACH	Dr. Mahesh Chandra	17-22
4.	Future Challenges and Opportunities in India-Nepal Trade	Dr Vishal Ranjan Tripathi	23-27
5.	नवीन शिक्षा नीति (NEP) 2020 में शिक्षक शिक्षा : एक समग्र अवलोकन	Surendra Kumar Pareek	28-37
6.	विवेकी राय के निबंधों में निहित व्यंग्यात्मक यथार्थ	डॉ. राज कुमार शर्मा	38–44
7.	पारंपरिक लोक संगीत और संस्कृति का संबंध	Jitendra Saini	45–50
8.	समकालीनता एवं लालित्यबोध के परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की लेखनी	डॉ. षैजू के	51–57
9.	कृषि विकास में निजीकरण के प्रभाव	प्रोफेसर (डा.) के.एल. मीना	58–62
10.	भावनात्मक बुद्धिमत्ता और शिक्षक शिक्षा	Surendra Kumar Pareek	63-70
11.	मलिक मोहम्मद जायसी : महाकाव्य पद्मावत	निर्मला पटेल, डॉ. अभिनेष सुराना	71–75
12.	बाजारवादी संस्कृति में नारी	बेलमती पटेल, डॉ. अभिनेष सुराना	76–80

13.	आमेर किले की प्राचीन जल संचयन प्रणाली : एक विस्तृत अध्ययन	बलराम सैनी	81–85
14.	खेलों में लैंगिक असमानता : माध्यमिक विद्यालयों में खेल गतिविधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. अनिल कुमार शुक्ला, अनिल कुमार झा	86–91
15.	मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षा में संगीत का प्रभाव	Jitendra Saini	92-96
16.	ग्रामीण विकास में पारंपरिक मीडिया का प्रभाव : सूचना संप्रेषण का एक माध्यम	नवीन कुमार, डॉ. सुशील कुमार	97–103
17.	शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता में न्यू मीडिया की भूमिका : साहित्य समीक्षा	नितिन कुमार, डॉ. सुशील कुमार,	104–112
18.	डॉ. मनोज कुमार प्रीत की कहानियों में सामाजिकता का सन्देश	डॉ. यशवीर दहिया	113–115
19.	छायावादोत्तर कविता में लौकिक एवं अलौकिक पक्ष	डॉ. सोनम	116–122
20.	सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों के अनुप्रयोग – एक अध्ययन	डॉ. गोरधन जाटव	123–132
21.	The Chams: Hindu's of Vietnam's Champa Kingdom	Dr. Deepak Kumar	133-144
22.	उत्तराखण्ड विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व : एक विवेचनात्मक अध्ययन	श्रीमती भगवती टम्टा, श्रीमती दीपिका नेगी	145–149
23.	विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में शारीरिक शिक्षा का महत्त्व	Chandra Shekhar Bharti	150-157
24.	21वीं शताब्दी के साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में दलित विमर्श	डॉ. प्रियंका कुमारी	158–161
25.	भीष्म साहनी के नाटक में उनकी सृजन शक्ति	डॉ. रवि देव	162–174
26.	डिजिटल क्रांति तथा ग्रामीण जीवन पर प्रभाव	डॉ. अंजली कुमारी	175–178

27.	मोहन राकेश के साहित्य में अनुभूतिजन्य संवेदना	डॉ. विनोद कुमार	179–184
28.	हिन्दी के उपन्यासों में वर्णित विमुक्त जाति विषयक धार्मिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ	मिनाक्षी झा	185–196
29.	संस्कृति और साहित्य का सैद्धान्तिक अध्ययन	डॉ. नरेश कुमार	197–200
30.	कबीर दास की सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक समरसता	इंदु बाला, डॉ० मणि कान्त ठाकुर	201–207
31.	भाव एवं अनुभूति के परिप्रेक्ष्य में लम्बी कविताओं का वस्तु विधान : समाज चित्रण	अनिता मिश्रा, डॉ० मणि कान्त ठाकुर	208–213
32.	मैहर घराने का इतिहास एवं संगीत परम्परा	धीरज कुमार गुप्ता, डॉ० रूपा सिन्हा	214–222
33.	गंझुओं का आर्थिक जीवन	निर्भय कुमार, डॉ० ममता मौर्या	223–230
34.	सामाजिक गतिशीलता और मध्यम वर्ग	प्रीति जायसवाल, डॉ. रेणु गुप्ता	231–236
35.	किशोरावस्था में आजीविका चुनना	रंजीत कुमार यादव, डॉ० सोनिया रानी	237–241
36.	रामचरित्रमानस में कलागत सौंदर्य	रीना कुमारी, डॉ. संजय कुमार, डॉ. दुष्यंत सिंह	242–247
37.	रामचरितमानस के राम कथा का अभिनव स्वरूप	सतीश कुमार, डॉ० संजय कुमार	248–258

संपादकीय.....

प्रिय पाठकों,

मार्च 2025 के अंक में आपका स्वागत है। इस अंक में, हम हिंदी साहित्य, भाषा विज्ञान, और सांस्कृतिक अध्ययन के विविध विषयों पर केंद्रित शोध प्रस्तुत कर रहे हैं। हमारी यह शोध पत्रिका शिक्षा, साहित्य, विधि, शारीरिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य आदि विविध क्षेत्रों में हो रहे नवीनतम शोध कार्यों को जन–जन तक पहुंचाने के उद्देश्य से समर्पित है।

इस अंक में, हमने विभिन्न विषयों पर गहन शोधपत्रों का समावेश किया है, जो न केवल ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करते हैं, बल्कि समाज के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

हमारे समर्पित लेखकों, समीक्षकों और संपादकीय टीम के अथक प्रयासों के बिना यह संभव नहीं हो पाता। आप सभी के सहयोग के लिए हम हृदय से आभारी हैं।

आशा है कि यह अंक आपके ज्ञानवर्धन में सहायक सिद्ध होगा। आपकी प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हमें सदा इंतजार रहेगा, ताकि हम आगामी अंकों को और भी समृद्ध बना सकें।

प्रमुख आलेख :–

– 'हिंदी साहित्य में समकालीन प्रवृत्तियाँ' : इस लेख में, लेखक ने वर्तमान हिंदी साहित्य में उभरती नई धाराओं और रचनात्मक प्रयोगों का विश्लेषण किया है।

– 'भाषा विज्ञान में नवीन अनुसंधान' : यह लेख भाषा विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे नवीनतम शोध और उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालता है।

– 'भारतीय संस्कृति और परंपराओं का अध्ययन' : इस आलेख में, लेखक ने भारतीय संस्कृति की विविधता और उसकी समृद्ध परंपराओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है।

हम आशा करते हैं कि ये लेख आपके ज्ञान में वृद्धि करेंगे और आपको नए दृष्टिकोण प्रदान करेंगे। आपकी प्रतिक्रिया और सुझाव हमारे लिए मूल्यवान हैं, कृपया हमें लिखें।

सादर।

– संपादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
March 2025

ISSN : 2395-7115
Page No. : 11-16

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Emerging Digital Literature in New Media : Impact on Modern Contemporary World

Parul Yadav

Research Scholar, Guest Faculty, Govt. Girls College, Behror

Abstract :

Authors and creative professionals today are navigating a transformative era shaped by digital technology and media, which continuously redefine how literary works are created, shared, and preserved. This paper aims to examine the expanding field of digital literature within new media, the evolving nature of literary expression in response to technological shifts, and its broader impact on contemporary society. The rapid advancement of technology and the rise of diverse media platforms have given literature a fresh dimension, leading to an unprecedented surge in both writers and readers. These evolving literary trends have ushered in a new age, widely embraced by audiences. This study will not only explore the role of emerging media platforms in enhancing literary studies but also emphasise the significance of recognising this pivotal moment by analysing the growth and impact of electronic and digital literature.

Keywords : Digital literature, New Media, Literature, Social media platforms.

Introduction :

New media is a digital form of communication. It is a catch-all term used for various types of electronic communications that are conceivable due to innovation in computer technology. New media comprises social platforms, websites, online video/audio streams, online education, email, online communities, online forums, blogs, web advertisements, and much more in contrast to old media, which incorporates newspapers, magazines, books, television and other such non-interactive media.

New media includes :

- Websites
- Blogs
- Email

- Social media networks
- Music and television streaming services, etc

Today, the development of digital media, which has influenced the world, has greatly influenced the development of literature as well. From Instapoetry to BookTube, contemporary literary cultures and practices are increasingly intertwined with new media platforms. Media and literature are entwined yet distinguishable, complementing each other and bringing about the same result in different ways. It has changed and transformed the traditional view of literature as a whole because of the transition to the new age – Digital Age.

Methodology :

The methodology of this research will be retrospective study on the basis quantity and quality of the listed social media platforms to deduce the impact on the modern world. The various new media platforms studied in this paper are Twitter, YouTube, E-readers and online journals which will include different literature works which came into action through these digital platforms. This paper also seeks to assess the impact of digital literature in new media on the modern world.

1. Digital Literature :

Digital literature refers to a genre of literary works designed specifically for digital platforms, including computers, tablets, and smartphones. As writer Simon Groth describes, its purpose is to highlight innovation and creativity in storytelling through digital media while exploring new literary practices shaped by technology. Various forms of digital literature include video poems on YouTube, short stories shared on Twitter, and interactive hypertext narratives. The widespread availability of digital tools for learning literature plays a crucial role in reducing educational inequality and fostering inclusivity. In a country like India, where poverty and limited access to quality learning resources remain challenges, digitisation has emerged as a powerful means of democratising education. A study conducted by the ICF in 2015 suggests that when effectively implemented, digital tools and resources can help bridge academic achievement gaps.

2. New Media catering to Digital Literature

2.1 Twitterature :

Launched in 2006, Twitter soon became a platform for literary experimentation, with the first Twitter novels emerging in 2008. While some refer to "Twitterature" as a literary genre, it is more accurately described as an adaptation of existing genres to the social media landscape. Classic literary works have been reimagined on Twitter through concise tweets, often incorporating contemporary slang or portraying characters interacting in a digital space. Renowned authors such as David Mitchell, Jennifer Egan, and Teju Cole have explored this format. In 2009, Alexander Aciman and Emmett

Rensin published Twitterature: The World's Greatest Books Retold Through Twitter. A year later, a group of rabbis used the hashtag #TweetTheExodus to narrate the story of Exodus. In 2011, the Royal Shakespeare Company collaborated with game company Mudlark to present Romeo and Juliet through tweets. Another example of Twitter fiction is Epicretold by Chindu Sreedharan, which simplifies a lengthy epic to make it accessible to modern readers in India and beyond. Similarly, Black Box, a short science fiction story by Pulitzer Prize-winning author Jennifer Egan, was published as a series of tweets on The New Yorker's Twitter account in May 2012.

2.2 E-books :

An e-book, or electronic book, is a digital version of a traditional book that contains text and images, designed to be read on electronic devices. The commercial e-book industry started gaining traction in the late 1990s with the introduction of early e-readers like Rocket eBook and SoftBook Reader in 1998. These devices aimed to integrate content from books, magazines, and newspapers into a portable digital format. The industry evolved further with the launch of the first Kindlein 2007. E-readers offer a convenient way to carry multiple books in a compact format, featuring adjustable fonts, backlit screens, ergonomic scrolling, bookmarking options, and often lower costs compared to physical books. While e-books provide numerous advantages, they are unlikely to completely replace printed books. Instead, they serve as a complementary option, enhancing accessibility and benefiting readers. Ultimately, the survival of print books depends on the continued interest in reading itself.

2.3 YouTube :

As the largest online video platform, YouTube attracts approximately 122 million daily users, with over a billion hours of content watched globally every day. It has become a valuable medium for sharing and discussing literature. Writers and literary enthusiasts use YouTube to connect, educate, and inspire audiences worldwide. Despite its potential, many authors overlook YouTube as a tool for book promotion. A thriving community known as AuthorTube exists, where writers not only market their books but also provide insights, writing tips, prompts, and tutorials. Some of the most successful AuthorTube channels boast over 100,000 subscribers. In addition to book promotion, YouTube hosts a vast array of literary content, including book reviews, discussions on literary adaptations, and in-depth studies of classic literature, catering to those who enjoy a multimedia approach to reading.

2.4 Online Journals and Journal Database :

Online journal databases like sagepub.com, project muse and jstor.org, host a number of journals, books and primary sources in different disciplines including English Literature. These sites are not free and they contain within them databases of scholarly journals which are accessible for

users on subscription based fee or on pay per view basis. In most cases, these online journal databases can be accessed through college or university libraries that pay an annual fee in return for an account and password. The libraries successively hand over these details to their readers who in turn access the information they desire.

Apart from these online journal databases, there exist online journals on English literature. These are professional bodies that publish scholarly articles that are peer reviewed. While a number of them charge fees for publishing, some are free to publish and some pay royalty to the authors which may be in the form of a one-time honorarium. The Research Journal on English Literature (rjeal.com), The International Journal of English and Literature (IJEL), The International Journal of English Language, Literature and Translation Studies (IJELR) are some examples online publishers of research articles with open access. These journals come with the International Standard Serial Number (ISSN) for their recognition. Researchers and Students are now able to quickly publish their articles and papers easily through such electronic media through such online journals.

Impact on Modern Contemporary World :

New media platforms have emerged as a launching pad for numerous writers, offering opportunities to showcase their creativity. In today's fast-paced world, where finding time to connect with friends and family can be challenging, social media serves as a valuable space for self-expression. It encourages individuals to unleash their inner writer and share their creative impulses. The digital landscape plays a crucial role in fostering innovation, whether in literature or business, by enabling the swift exchange of ideas and thoughts. Communication has become more convenient and efficient, leading to the widespread use of various online platforms that facilitate the rapid dissemination of information. Literary works now have the potential to reach a vast audience through social networking sites, often spreading virally. Additionally, numerous websites offer free e-books, further democratising access to literature. As digital advancements continue, media functions evolve, expanding the scope of literature beyond traditional classrooms and libraries. The digitisation of literary texts contributes to a well-informed and knowledgeable society by making literature more accessible.

With the rise of digital publishing, aspiring writers now have the opportunity to bring their work to the public through self-publishing platforms. E-publishing has empowered individuals to realise their literary aspirations without relying on traditional publishing houses. Blogs, emails, and other online platforms provide instant avenues for writers to share their thoughts with a global audience. Fiction, non-fiction, poetry, and essays can now be published with ease, reaching readers almost instantly. Digital publishing offers several advantages over print, making literature more widely available. Statistics indicate that approximately 2.2 million books are published annually, and in addition

to these printed works, an extensive range of digital literature is available in formats such as PDFs, blogs, vlogs, and social media posts on platforms like Facebook, Instagram, Twitter, and YouTube. For example, Brenna Aubrey successfully self-published her debut romance novel At Any Price on Amazon Kindle in December 2013. Likewise, E.L. James's Fifty Shades of Grey initially began as Twilight fan fiction before transitioning into a self-published e-book, highlighting the growing impact of digital platforms in modern literature.

Conclusion :

Digital literature within new media represents the next stage in literary evolution, enabling faster dissemination and access to a wider audience. However, this shift has faced criticism from traditionalists. Unlike classical literature, contemporary digital works are created and shared at an unprecedented pace, breaking temporal barriers. Thousands of literary pieces emerge daily on various online platforms, reaching readers almost instantly. Writers, in turn, receive immediate feedback through likes, shares, and comments, fostering a culture of instant gratification. Undoubtedly, new media has significantly transformed literature, expanding its reach and influence far beyond conventional boundaries. Digital media not only reflects literary values and ideas but also offers an interdisciplinary space where scholars can collaborate in the pursuit of knowledge. Given this technological advancement, the field of literary studies should embrace digital literature as an integral part of its future.

References :

1. Brown, Alex. ?OMG! The Impact of Social Media on English Language? http://blogs.imediaconnection.com/blog/2012/08/28/omg-the-impact-of-social-media-on- the-english -language.
2. Chambers, Deborah. Social media and personal relationships: Online intimacies and networked friendship.
3. Erin , Adrienne. "The fusion of literature and social media." Alabama. Oct 13, 2014.
4. Hayles, N. Katherine. Electronic Literature: New Horizons for the Literary. Notre Dame, IN: University of Notre Dame, 2008. Print.
5. Graddol, David. The Future of English?: A Guide to Forecasting the Popularity of English Language in the 21st Century. London: The British Council, 2000. Digital.
6. Egginton, William and Bernadette Wegenstein. "The Impact of Media on Literature." In Comparative Literature: Sharing Knowledges for Preserving Cultural Diversity-Volume II, 19. 2009. Available at: http://www.eolss.net/sample-chapters/c04/e6-87-04-02.pdf
7. Tharakan, Tony. Writing a Novel? Just Tweet it. Reuters.com India Insight. 2009. 21 January 2016.
8. Washalay, Najeeb. "Literature and Social Media: Reflections on Peace, Conflict & Society". International Journal of English Language, Literature and Translation Studies. Vol. 6, No. 2, 2019.

9. Raymond, Williams. Culture and Society 1780-1950. Harmondsworth: Penguin, 1977.Print.
10. Noor, Al-Deen H. S, and John A. Hendricks. Social Media: Usage and Impact.Lanham, Md: Lexington Palgrave Macmillan, 2013.
11. Pankaja, D. "Literature and Social Media: Effect of Social Media on English Language & Literature". Journal of Higher Education and Research Society: A Refereed Journal, Vol. 4, No. 2, Oct. 2016, pp. 44-51.
12. Miller, Daniel. Making social media matter. In Social Media in an English Village. JSTOR. 2016 (pp. 122-149).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 17-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

IMPACT OF REGULAR YOGA PRACTICES FOR STRESS MANAGEMENT : NOVEL APPROACH

Dr. Mahesh Chandra

Abstract :

Yoga is basically group of physical, mental and spiritual practices or simple kind of disciplined which organized in terms of ancient India. Yoga is one of the six orthodox philosophical institute of Hinduism this is known as Hindus philosophy. Stress is consisting mainly four categories like physical stress, psychological stress, psychosocial stress, psychospritual stress. Stress management is wide range of spectrum along with novel techniques and psycho therapies aimed at controlling special person's stress level. Stress as define the feeling of sad emotion and tense behave as physical. It can come from any event and thought which comes and makes you feel frustrated and angry or nervous. Stress is your body's response to a test or interest. Stress is normal feeling situation for every person but it consists long time in body after that it will create health problems. As basis of ADP report in India 7 out of 10- person experience of stress on weekly basis. As compared to other countries India has very high level of stress increase rapidly.

Keywords : Yoga Practices, Yoga Techniques, Stress Management, Steps of Yoga Asana, Survey Approach, etc.

1. Introduction :

Yoga is a useful broadly comprehensive reasoning expected to achieve basic state likewise is a crucial subject, which takes into thought man as a rule. Today, yoga being a subject of differentiated interests, has gotten by and large prominence. Advancing examination plans have shown that it can fill in as a related science in various fields, for example, planning, genuine getting ready and sports, flourishing and family government help, frontal cortex assessment and medication furthermore one of the procedures for the showcase and advantage. In any case, there exists struggle in suffering yoga as cure. Additionally, treatment since it has all around been accepted that yoga is a critical science

having opportunity as its objective and thusly can't be overseen so to talk as a treatment. There is clear marker in the Literature that yoga strategy is significant in light of mental issue and other flourishing issues. In yoga messages additionally, certain practices to have not exclusively been professed to fix various ailments yet besides to delay rot and degeneration and shockingly somewhat beaten obliteration by drawing out the length of life. In this way, it has been inferred at long last that yoga completely and in wide sense is drug and obliging recuperating contraption on the grounds.

II. Define Yoga : Practices Approaches

1.0 Definition of Yoga :

1. Yoga is a scientific system that teaches self-control to the body, mind and spirit. Yoga is a physical activity which is about breathing, relaxation and mediation.
2. The ultimate goal of yoga is self-realization so that each individual can attain her complete physical, emotional, mental and spiritual potential.

1.1 General Overview :

Yoga is a gathering of physical, mental, and otherworldly practices or trains which began in old India. Yoga is one of the six customary philosophical schools of Hinduism. There is a wide assortment of yoga schools, practices, and objectives in Hinduism, Buddhism, and Jainism. The expression "Yoga" in the Western world frequently means a cutting-edge type of hatha yoga and yoga as exercise, comprising to a great extent of the stances or asana. The act of yoga has been thought to trace all the way back to pre- Vedic Indian customs; perhaps in the Indus valley progress around 3000 BCE. Yoga is referenced in the Rigveda and furthermore referred to in the Upanishads, however it no doubt created as an orderly report around the fifth and sixth hundreds of years BCE, in antiquated India's parsimonious and Srama?a developments. The sequence of soonest texts portraying yoga-rehearses is muddled, varyingly credited to the Upanishads. The Yoga Sutras of Patanjali date from the second century BCE, and acquired unmistakable quality in the west in the twentieth century subsequent to being first presented by Swami Vivekananda. Hatha yoga texts started to arise at some point between the ninth and eleventh century with beginnings in tantra. Yoga masters from India later acquainted yoga with the West, following the achievement of Swami Vivekananda in the late nineteenth and mid twentieth century with his transformation of yoga custom, barring asanas. Outside India, it has formed into a stance based actual wellness, stress-alleviation and unwinding method. Yoga in Indian traditions, however, is more than physical exercise; it has a meditative and spiritual core. One of the six major orthodox darsanas, or schools, of Indian philosophy is also called Yoga darsana, has its own epistemological method, which assumes the ontology and metaphysics of the closely correlated Samkhya darsana.

1.1.1 Meaning of Yoga :

A definitive objective of yoga is "moksha" signifies freedom albeit the specific structure this takes relies upon the philosophical or religious framework with which it is formed. In the old style Astana yoga framework, a definitive objective of yoga practice is to accomplish the province of Samadhi and stay in that state as unadulterated mindfulness.

- As indicated by Jacobsen, Yoga has five head customary implications :
- A restrained technique for accomplishing an objective.
- Techniques of controlling the body and the psyche.
- A name of an everyday schedule of reasoning (darsana).
- With prefixes, for example, "hatha-, mantra-, and laya-, customs spend significant time specifically procedures of yoga.

1.1.2 History of Yoga :

Yoga is a significant and antiquated school in India. Yoga is drilled for better physical and mental referenced. God made man and ladies equivalent accomplices to share daily routine to experience with delights and distresses. Life can measure up to a chariot, the man and lady are its two wheels. Man and lady both longing great wellbeing, mental harmony while carrying on with their life. Ladies today are experiencing numerous normal and serious infirmities. Because of absence of activity, solid and nutritious food and cleanliness, and because of occupied, chaotic timetables, ladies can't give sufficient opportunity to keep up with their own self. Their expert world has suffocated them in the distressing conditions. Because of polished skill, ladies need energy, imperativeness delight and fun.

One of the most straightforward and viable approach to accomplish their craving is yoga and significant type of activity. Yoga assists with alleviating the pressure or it assists with joining the brain, body, and soul. It centers around convergence of the brain, body and soul. Yoga cultivates a more noteworthy inclination, a connection of the person with universe. Yoga has profound roots. Principle point of yoga is to assist humanity with acknowledging genuine bliss, opportunity or edification.

Alongside this yoga have a few auxiliary objectives, like working on actual wellbeing, upgrading mental prosperity and enthusiastic equilibrium.

Yoga is the strongest exercise. It is probably the best exercise for ladies. Yoga is a workmanship and science has been created in India. Yoga positions have been found in archeological locales in the Indus Valley going back 5000 years prior or more. There is a typical confusion that Yoga is established in Hinduism, on the opposite Hinduism as a part of religion developed a lot later and in corporate a

portion of the acts of Yoga among Hindu progress.

1.1.4 The Concept of Yogic Practices :

Yoga : Yoga is an old discipline having an ancient past. There-lics of Mohenjo-Daro unearthing's show its vestige. The significance of yoga for profound advancement has been perceived through the ages. The discipline of yoga stuck through a few phases and in process of everything working out various school arose and assortment of strategies were developed. The practices urged in yogic writing and gave over in various customs are known as the Yogic Practices. These might be characterized in the accompanying gatherings :

1. Asanas, 2. Pranayamas, 3. Bandhas and Mudras, 4. Kriyas. Then again, stress the executives is our primary worry for research study. the pressure characterizes with the terms of pressure the board utilizing yoga rehearses. The yoga practices of yoga methods is utilized to eliminate the two classifications of yoga venture by individually. Presently the idea stress and stress the executives is portraying given beneath.

1.1.5 Stress :

Stress is a sensation of enthusiastic or actual pressure. It can emerge out of any occasion or thought that causes you to feel baffled, furious, or apprehensive.

Stress is your body's response to a test or interest. In short explodes, stress can be positive, for example, when it assists you with staying away from risk or fulfill a time constraint. In any case, when stress goes on for quite a while, it might hurt your wellbeing.

Stress is an ordinary inclination. There are two fundamental sorts of pressure :

- **Acute stress.** This is momentary pressure that disappears rapidly. You feel it when you pummel on the brakes, have a battle with your accomplice, or ski down a precarious slant. It assists you with overseeing hazardous circumstances. It likewise happens when you experiment or energizing. All individuals have intense pressure at some time.
- **Chronic stress.** This is pressure that goes on for a more drawn out timeframe. You might have ongoing pressure in the event that you have cash issues, a miserable marriage, or inconvenience at work. Any sort of pressure that continues for quite a long time or months is ongoing pressure. You can turn out to be so used to constant pressure that you don't understand it is an issue. On the off chance that you don't discover approaches to oversee pressure, it might prompt medical conditions.

1.1.6 Stress and Your Body :

Your body responds to pressure by delivering chemicals. These chemicals make your mind more alarm, cause your muscles to tense, and build your heartbeat. Temporarily, these responses are acceptable in light of the fact that they can assist you with taking care of the circumstance causing

pressure. This is your body's method of securing itself.

At the point when you have constant pressure, your body stays ready, despite the fact that there is no risk. After some time, this puts you in danger for medical issues, including :

- High blood pressure, BP.
- Heart disease. Cardiovascular disease.
- Diabetes. (level of insulin decreased)
- Obesity. (cholesterol level increased)
- Depression or anxiety. (disorder)
- Skin problems, such as acne or eczema.
- Menstrual problems.

If you already have a health condition, chronic stress can make it worse.

1.1.7 Impact Of Stress :

In the coming of Globalization, associations are having the chance to be all around market driven ones with"contribute anyplace and share all over." The effect of internet business, with quickly changing Info Tech(IT) improved the intelligent correspondence capability of the market. The administration of business portfolios, consolidations, parts, overhauling, rebuilding, discovering cooperative energies and accomplishing designated values apply a powerful tension on the leader. In such an environment of upgrading human and scholarly capital, stress assumes an unavoidable part in the work place. Working environment stress is a worldwide wonder that outcomes in weighty expenses for people, organizations or associations and the general public. At the singular level, work environment stress can devastatingly affect the physical and emotional well-being of the worker, making unsalvageable harm his prosperity. It can dissolve the certainty of an individual, prompting loss of ability to adapt to the difficult work and social circumstances. It can impact fixation and spotlight on work, prompting lackluster showing, low of vocation openings and loss of business. At the authoritative level, stress can take weighty cost for the usefulness and effectiveness of the association. It costs the organization as far as expanded truancy because of affliction, higher clinical costs, drop in execution because of low inspirational levels, high work turnover related enrollment and preparing costs, workers' pay and legitimate expenses.

Conclusion Work :

Generally, THE A typical factor for the clinical advantages of yoga is that they identify with "stress." Stress is depicted to go about as a delineation of evaluations, physiological reactions, and social affinities that happen when a particular sees the sales of a circumstance beat their assets for deal with those requesting .Although encountering moderate extents of strain is infrequently a

flourishing danger, reliable openness to even little bit by bit upsets, or genuine responsiveness to over the top stressors, can have clarified inverse success impacts .It has been proposed that rehearsing yoga assists individuals with growing better pressure changing techniques, in like way decreasing the negative thriving impacts of indefatigable strain Yoga might be especially significant in additional creating tendency centered strain changing, which joins diminishing physiological energy through relaxing up, intellectually reappraising stressors, or figuring out some approach to perceive what can't be transformed It has unequivocally been proposed that yogic breathing and care—two basic bits of yoga—may assist individuals with acclimating to pressure, which may truly mediate the putative clinical advantages.

References :

1. Lee SW, Mancuso CA, Charlson ME. (2004) Prospective study of new participants in a community based mind-body training program. J Gen Intern Med.;19 (7):760-5.
2. Hafner-Holter, Kopp and Gunter "Social Readjustment Rating Scale," Journal of impact humanities vol12, pp-136-148.
3. Orme-Johnson (2006)" Neuroimaging of meditation's effect on brain reactivity to pain" & Psychiatry and Human Behavior, MED ... Correspondence and requests for reprints to David Orme-Johnson, PhD, 191 ...; VOL 47: 314.
4. Uebelacker LA, Epstein-Lubow G, Gaudiano, BA. Hatha. (2010) Yoga for depression: critical review of the evidence for efficacy, plausible mechanisms of action, and directions for future research. J Psychiatr Pract.; 16:22–33.
5. Birdee GS, Legedza, AT, Saper RB. (2008) Characteristics of yoga users: results of a national survey. J Gen Intern Med.; 23(10):1653-1658.
6. Woolery A, Myers H, Sternlieb B, Zeltzer L. (2004) A yoga intervention for young adults with elevated symptoms of depression. Alter Ther Health Med.; 10(2):60-63.
7. Chen KM, Chen MH, Chao HC, Hung HM Lin, HS, et al. (2008) Sleep quality, depression state, and health status of older adults after silver yoga exercises: cluster randomized trial. Inter J Nurs Stud.; 4:154-163.
8. Galantino ML, Cannon N, Hoelker T, Iannaco J, Quinn L. (2007) Potential benefits of walking and yoga on perceived levels of cognitive decline and persistent fatigue in women with breast cancer. Rehab Oncol.; 25(3):3-12.
9. Janakiramaiah N, Gangadhar BN, Naga Venkatesha Murthy PJ, Harish MG, Subbakrishna DK, et al. (2000) Antidepressant efficacy of Sudarshan Kriya yoga (SKY) in melancholia: a randomized comparison with electroconvulsive therapy (ECT) and imipramine. J Affect Disord.; 57(1-3):255-259.
10. Chakraborty Jul 26, 2015 – "STRESS MANAGEMNT RELXATION "published ... of mesh size on bubble shape at departure for Volume, 1 (191-248), New Delhi, Sage Publications, 2015…
11. Vedamurthachar A, Janakiramaiah N, Hegde JM, Shetty TK, Subbakrishna DK, et al. (2006) Antidepressant efficacy and hormonal effects of Sudarshan Kriya Yoga (SKY) in alcohol dependent individuals. J Affect Disord.; 94:249-253.

Email: sikarvarmahesh1982@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 23-27

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Future Challenges and Opportunities in India-Nepal Trade

Dr Vishal Ranjan Tripathi

Asst. Prof., Deptt. Of Commerce, Bapu P.G College, Pipiganj, Gorakhpur U.P.

Introduction :

The trade relationship between India and Nepal is of great strategic and economic importance due to their geographical proximity, historical ties, and cultural connections. Despite strong trade relations, both countries face several challenges, including border disputes, political instability, and trade imbalances. However, there are significant opportunities to enhance bilateral trade, improve infrastructure, and deepen economic integration in the future. This paper explores the future challenges and opportunities in India-Nepal trade by analysing the key issues, trends, and potential solutions.

India and Nepal share a deep-rooted economic relationship shaped by their shared history, culture, and geography. India is Nepal's largest trade partner, with a significant portion of Nepal's imports coming from India. The two countries are also connected by a free trade agreement (FTA), which facilitates the flow of goods and services across their border. However, despite the strong trade relationship, several challenges persist that hinder the full potential of trade between the two nations. These challenges include political instability, trade imbalances, infrastructure bottlenecks, and non-tariff barriers. At the same time, there are ample opportunities for growth through enhanced cooperation, regional integration, and improved infrastructure.

This paper discusses the future challenges and opportunities in India-Nepal trade by analysing current trade dynamics, potential growth areas, and the road ahead.

1. Current Trade Landscape between India and Nepal :

India and Nepal's trade is governed by several agreements, including the **India-Nepal Treaty of Trade and Transit (1991)**, which provides duty-free access to Nepalese goods through Indian ports. India supplies Nepal with a wide range of products, including petroleum products, machinery, electronics, food grains, and pharmaceuticals. Nepal exports mainly agricultural products, including vegetables, fruits, and herbs, as well as textiles and carpets.

Trade Volume and Balance :

According to the **Ministry of Commerce & Industry of India**, in the fiscal year 2022-23, bilateral trade between India and Nepal reached around **$9.7 billion**, with India being Nepal's largest trading partner. India's exports to Nepal were valued at **$8.7 billion**, while Nepal's exports to India stood at **$1 billion**. This trade imbalance has been a persistent issue, and it reflects Nepal's dependence on India for most of its imports.

Key Trade Goods :

- **India's Exports to Nepal** :
  - Petroleum products : $2.5 billion
  - Machinery and equipment : $1.8 billion
  - Pharmaceuticals : $0.9 billion
  - Electronic goods and hardware : $0.6 billion
- **Nepal's Exports to India** :
  - Agricultural products : $500 million
  - Textiles and carpets : $400 million
  - Coffee and tea : $100 million

Despite these trade figures, Nepal is heavily reliant on India for many of its essential imports, making the trade relationship asymmetrical.

2. Challenges in India-Nepal Trade Relations :

While the India-Nepal trade relationship holds considerable promise, several challenges must be addressed to unlock its full potential:

2.1 Political Instability and Border Disputes :

The India-Nepal border is often a source of tension, particularly when disputes over border demarcations arise. The **Kalapani, Lipulekh, and Limpiyadhura** areas remain contentious and have been a source of friction. Any political instability or diplomatic conflict over these issues can disrupt trade flows, particularly in regions bordering India and Nepal. These issues were notably highlighted during the 2019-2020 territorial dispute, which strained bilateral relations.

Impact on Trade : Political instability can lead to border closures or trade restrictions, causing disruptions to the regular flow of goods. In the event of political tensions, customs and logistics operations may be slowed, and the volatility can reduce investor confidence.

2.2 Infrastructure Bottlenecks :

Nepal's infrastructure, particularly its transportation networks, is inadequate to support the growth of trade. The country is landlocked and heavily dependent on India for access to international

ports. Roads and rail networks connecting Nepal to Indian trade routes remain underdeveloped and often congested, increasing costs and delays in the supply chain.

Impact on Trade : Inefficiencies in infrastructure lead to increased transit times, higher logistics costs, and delays in the movement of goods. Nepal's reliance on Indian ports for access to international markets adds an additional layer of complexity.

2.3 Non-Tariff Barriers :

Despite the **free trade agreement** (FTA) between India and Nepal, the imposition of non-tariff barriers remains a significant issue. These barriers include technical standards, sanitary and phytosanitary regulations, and other bureaucratic hurdles that slow down trade flows. For instance, Indian authorities sometimes impose stringent checks on agricultural products, which hampers Nepal's exports.

Impact on Trade : Non-tariff barriers create a hidden cost that affects the competitiveness of Nepalese goods in the Indian market. These barriers often discourage small and medium-sized enterprises (SMEs) in Nepal from engaging in cross-border trade.

3. Opportunities in India-Nepal Trade Relations :

Despite the challenges, there are significant opportunities to boost trade relations between India and Nepal.

3.1 Regional Connectivity and Infrastructure Development :

The **Bharatmala Pariyojana** (Indian national highway development project) and the **SASEC** (South Asia Subregional Economic Cooperation) program present opportunities for improving connectivity between India and Nepal. Investments in infrastructure, such as road, rail, and port development, can reduce transit times and lower logistics costs.

Example : The construction of the **Biratnagar-Kakarbhitta-Kolkata** trade route has enhanced connectivity, allowing Nepal to access India's eastern seaports more efficiently.

3.2 Expansion of Trade Agreement :

The India-Nepal trade agreement, while providing duty-free access, could be expanded to include new sectors, such as services, digital trade, and e-commerce. Both countries can benefit from expanding into areas like **ICT**, **tourism**, and **agriculture**.

For instance, India's growing **information technology sector** can complement Nepal's workforce, creating opportunities for outsourcing and knowledge sharing. E-commerce platforms can facilitate cross-border trade by enabling small businesses in Nepal to access broader markets in India.

3.3 Diversification of Exports :

Nepal has opportunities to diversify its exports to India, particularly in the areas of **herbal products**, **organic food**, and **handicrafts**. India's growing demand for these goods provides a potential market for Nepalese products, especially as India focuses on sustainability and environmental consciousness.

Example : Nepal's **organic farming** initiatives can benefit from India's growing demand for organic products, which aligns with consumer preferences for sustainable and eco-friendly goods.

3.4 Investment in Clean Energy and Technology :

India and Nepal can jointly explore investment opportunities in **renewable energy** (hydropower, solar, wind). Nepal has significant hydropower potential, which can be harnessed for both domestic consumption and export to India.

Example : The **Arun-3 Hydroelectric Project** in Nepal, in which India has invested, is an example of successful cooperation in the energy sector. The project aims to generate electricity for both Nepal and India, fostering closer trade ties.

4. Future Directions for Strengthening India-Nepal Trade :

For India and Nepal to unlock the full potential of their trade relationship, certain strategies need to be pursued:

4.1 Strengthening Diplomatic Engagement :

Diplomatic dialogue should be prioritized to resolve any ongoing border issues and ensure that trade is not impacted by political tensions. Regular high-level talks and mechanisms to address grievances will provide stability to bilateral relations.

4.2 Promoting Trade Facilitation :

To overcome infrastructure bottlenecks, both countries need to invest in modernizing customs procedures and simplifying trade regulations. Implementing digital solutions such as **e-customs systems** and **paperless trade** can significantly reduce delays and improve efficiency.

4.3 Encouraging Private Sector Involvement :

The private sector, especially SMEs, should be encouraged to explore cross-border trade opportunities. Supporting entrepreneurship, enhancing business-to-business (B2B) collaboration, and facilitating access to financing can create a conducive environment for private sector growth.

Conclusion :

The future of India-Nepal trade holds substantial promise. However, to realize the full potential of this trade relationship, both countries must address critical challenges such as political instability, infrastructure deficits, and non-tariff barriers. By strengthening diplomatic ties, improving

infrastructure, and diversifying trade, India and Nepal can pave the way for enhanced economic cooperation and mutual prosperity. The growing demand for sustainable goods, technological collaboration, and energy cooperation presents substantial opportunities for deepening trade relations. The next phase of bilateral trade will depend on both countries' ability to cooperate, resolve conflicts, and embrace innovative solutions for economic growth.

References :

1. Ministry of Commerce and Industry, Government of India. (2023). **Bilateral Trade between India and Nepal.**
2. Nepal Ministry of Finance. (2022). **Nepal's Trade and Commerce Outlook.**
3. International Trade Centre (ITC). (2021). **Nepal Trade Profile.**
4. SASEC. (2020). **South Asia Subregional Economic Cooperation: Regional Connectivity Report.**
5. Nepal Rastra Bank. (2021). **Annual Report 2020-21.**

Mob. 9450115779

E.mail – vrt9450@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 28-37

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नवीन शिक्षा नीति (NEP) 2020 में शिक्षक शिक्षा : एक समग्र अवलोकन

Surendra Kumar Pareek

Assistant Professor, Department of Education

Institute of Advanced Studies in Education (Deemed to be University), Sardarshahar, Rajasthan

नवीन शिक्षा नीति (NEP) 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली में एक बड़ा परिवर्तन है, जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बढ़ती आवश्यकता को संबोधित करती है एवं वैश्विक मानकों के साथ मेल खाती है। यह एक समग्र और दूरदर्शी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्त्व करती है जिसका उद्देश्य मौजूदा संरचना को नवीन रूप प्रदान करना है ताकि यह अधिक समावेशी, विद्यार्थी–केंद्रित और भविष्योन्मुखी हो सके। इसके प्रमुख क्षेत्रों में, यह नीति शिक्षक शिक्षा में सुधार पर विशेष ध्यान देती है, यह मानते हुए कि शिक्षक विद्यार्थियों के बौद्धिक और भावनात्मक विकास को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। NEP 2020 यह स्वीकार करती है कि शिक्षकों को सही ज्ञान, कौशल और संसाधन प्रदान करना शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण है। निरंतर सीखने और नवाचार की संस्कृति को बढ़ावा देकर, यह नीति ऐसे शिक्षकों की एक टीम तैयार करने का लक्ष्य रखती है जो अपने विद्यार्थियों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण, रचनात्मकता और अनुकूलन क्षमता को प्रेरित कर सके।

नवीन शिक्षा नीति (NEP) 2020 का शिक्षक शिक्षा के लिए दृष्टिकोण :–

शिक्षक, शिक्षा प्रणाली की रीढ़ हैं, जो विद्यार्थियों के बौद्धिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास की मार्गदर्शक शक्ति के रूप में कार्य करते हैं। इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहचानते हुए, नवीन शिक्षा नीति NEP 2020 इस आवश्यकता पर बल देती है कि ऐसे सक्षम, प्रशिक्षित और अत्यधिक प्रेरित शिक्षकों का एक समूह तैयार किया जाए जो तीव्रता से बदलती दुनिया में विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। यह नीति शिक्षक तैयारी को एक कठोर, बहुविषयक और समग्र प्रक्रिया के रूप में देखती है, जिसमें अकादमिक ज्ञान, शैक्षिक कौशल और नैतिक मूल्यों का समावेश होता है। शिक्षक शिक्षा के मानकों को फिर से परिभाषित करके, NEP 2020 शिक्षण को एक ऐसा पेशा बनाने का प्रयास करती है जिसे उत्कृष्टता और समर्पण पर आधारित माना जाए। इसका अंतिम उद्देश्य यह है कि शिक्षकों को विद्यार्थियों में आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता, समस्या–समाधान क्षमता और अनुकूलनशीलता को बढ़ावा देने के लिए सक्षम किया जाए, ताकि वे 21वीं सदी की जटिलताओं का सामना कर सकें। निरंतर पेशेवर विकास, प्रौद्योगिकी का एकीकरण और समावेशिता पर ध्यान केंद्रित करके, नीति यह प्रयास करती है कि शिक्षक जीवन भर सीखने वाले और परिवर्तनकारी बनें, जो

समाज के भविष्य को आकार देने में सक्षम हों।

शिक्षक शिक्षा में मुख्य सुधार :

1. चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम की शुरूआत :

यह नीति 2030 तक शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता के रूप में चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम को अनिवार्य करती है, जो शिक्षक शिक्षा के दृष्टिकोण में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव को दर्शाता है। यह एकीकृत कार्यक्रम विषय ज्ञान, शैक्षिक कौशल और व्यावहारिक प्रशिक्षण को मिलाकर एक समग्र और व्यापक शिक्षण अनुभव प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है। परम्परागत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के विपरीत, यह पहल अंतर–विषयक अध्ययन पर बल देती है, जिसमें कला, विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा का मिश्रण होता है, ताकि शिक्षकों को व्यापक दृष्टिकोण और शिक्षण पद्धतियों की गहरी समझ विकसित हो सके। इस कार्यक्रम में नवाचारपूर्ण शिक्षण पद्धतियों को शामिल किया जाएगा, जैसे कि कक्षा में इंटर्नशिप, प्रौद्योगिकी का उपयोग, और विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों का अनुभव। वैश्विक मानकों के अनुरूप और अकादमिक कठोरता और व्यावहारिक अनुप्रयोग दोनों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, यह चार वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम ऐसे शिक्षकों को तैयार करने का लक्ष्य रखता है जो न केवल विषय विशेषज्ञ हों, बल्कि समावेशी और विद्यार्थी–केंद्रित वातावरण को बढ़ावा देने में भी सक्षम हों। यह सुधार NEP 2020 की उस प्रतिबद्धता को दर्शाता है जो शिक्षक तैयारी की समग्र गुणवत्ता को बढ़ाने और यह सुनिश्चित करने के लिए है कि प्रत्येक शिक्षक आधुनिक कक्षाओं की विकसित होती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सक्षम हो।

2. बहुविषयक प्रशिक्षण :

शिक्षक शिक्षा संस्थानों (TEIs) को बहुविषयक उच्च शिक्षा संस्थानों (TEIs) में एकीकृत किया जाएगा, जो शिक्षक शिक्षा के अधिक समग्र दृष्टिकोण की दिशा में एक क्रांतिकारी एवं परिवर्तनकारी कदम होगा। यह परिवर्तन भविष्य के शिक्षकों को शैक्षिक प्रशिक्षण के अलावा, ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों और विषयों से परिचित कराएगा। व्यापक शैक्षिक संस्थानों का हिस्सा बनकर, शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम एक समृद्ध और विविध शैक्षिक वातावरण से लाभान्वित होंगे, जिससे शिक्षक–प्रशिक्षुओं को नवीनतम शोध, नवाचारपूर्ण शिक्षण पद्धतियों और अंतर–विषयक दृष्टिकोणों से जुड़ने का अवसर मिलेगा। यह दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करता है कि भविष्य के शिक्षक न केवल अपने विशिष्ट विषयों में विशेषज्ञ हों, बल्कि विभिन्न विषयों में भी निपुण हों, जिससे वे अधिक समग्र और अंतरविषयक तरीके से शिक्षण करने में सक्षम होंगे। विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव शिक्षकों को व्यापक दृष्टिकोण और यह समझने में सक्षम बनाता है कि कैसे विभिन्न विषय एक दूसरे से पारस्परिक संबंध रखते हैं, जिससे वे विद्यार्थियों के लिए शिक्षा को और अधिक प्रासंगिक, आकर्षक और व्यापक बना सकते हैं। इसके अलावा, यह एकीकरण विभिन्न विषयों के शिक्षकों के बीच सहयोग को बढ़ावा देगा, जिससे एक अधिक समग्र और अनुकूलनशील शिक्षण वातावरण तैयार होगा, जो विद्यार्थियों को आधुनिक दुनिया की जटिलताओं के लिए तैयार करेगा। अंतरविषयक दृष्टिकोण के माध्यम से आलोचनात्मक सोच, समस्या–समाधान और अनुकूलन क्षमता को बढ़ावा देते हुए, NEP 2020 का उद्देश्य एक ऐसा शिक्षक समूह तैयार करना है जो समग्र, वैश्विक दृष्टिकोण वाले विद्यार्थियों को पोषित करने के लिए पूरी तरह से तैयार हो।

3. पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण :

शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में आधुनिक शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं के साथ समन्वय के लिए महत्त्वपूर्ण बदलाव शामिल हैं। समावेशी शिक्षा, पर्यावरण जागरूकता, प्रौद्योगिकी का एकीकरण और 21वीं सदी के कौशल जैसे प्रमुख घटक पाठ्यक्रम में शामिल किए गए हैं, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षक आज के विद्यार्थियों द्वारा सामना की जाने वाली विविध चुनौतियों का समाधान करने के लिए तैयार हों। समावेशी शिक्षा एक मुख्य मुद्दा होगी, जो शिक्षकों को विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों से आने वाले विद्यार्थियों, साथ ही दिव्यांगता या सीखने में कठिनाई वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझने के लिए कुशलता प्रदान करेगी। पर्यावरण जागरूकता को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है ताकि स्थिरता और पर्यावरणीय देखभाल की समझ विकसित की जा सके, जिससे भविष्य के शिक्षक इन मूल्यों को अपनी शिक्षण पद्धतियों और कक्षा गतिविधियों में समाहित कर सकें।

इसके अलावा, प्रौद्योगिकी का एकीकरण प्राथमिकता होगी, जिससे शिक्षकों को डिजिटल उपकरणों और संसाधनों का उपयोग करके शिक्षण अनुभवों को बेहतर बनाने की क्षमता प्राप्त होगी। जैसे–जैसे दुनिया अधिक डिजिटल होती जा रही है, यह आवश्यक है कि शिक्षक विद्यार्थियों को संलग्न करने और ऑनलाइन और हाइब्रिड लर्निंग वातावरण को सुगम बनाने के लिए प्रौद्योगिकी में दक्ष हों। पाठ्यक्रम में 21वीं सदी के कौशल, जैसे कि आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान, रचनात्मकता, सहयोग और संचार, पर भी बल दिया जाएगा, जो आधुनिक दुनिया में विद्यार्थियों की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

इन सिद्धांतात्मक घटकों के अलावा, व्यावहारिक इंटर्नशिप पर भी जोर दिया जाएगा। ये व्यावहारिक अनुभव शिक्षकों को कक्षा में प्राप्त ज्ञान को वास्तविक शिक्षण परिवेश में लागू करने का अवसर प्रदान करेंगे, जिससे उन्हें कक्षा की गतिशीलता, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं और शिक्षण पद्धतियों की गहरी समझ प्राप्त होगी। सिद्धांत और अभ्यास के बीच संतुलन बनाए रखते हुए, नीति 2020 यह सुनिश्चित करती है कि शिक्षक समकालीन शिक्षा की जटिलताओं को संभालने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं और अपने विद्यार्थियों के लिए एक गतिशील, समावेशी और तकनीकी रूप से उन्नत शिक्षण वातावरण तैयार करने के लिए सक्षम हैं।

4. निरंतर पेशेवर विकास (CPD) पर ध्यान केंद्रित करना :

NEP 2020 शिक्षकों के लिए निरंतर पेशेवर विकास को एक प्रमुख रणनीति के रूप में उजागर करती है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षक शैक्षिक नवाचार और शैक्षिक उन्नति के क्षेत्र में अग्रणी बने रहें। यह मानते हुए कि शिक्षण एक गतिशील पेशा है, यह नीति नियमित कार्यशालाओं, प्रशिक्षण सत्रों और प्रमाणपत्रों को अनिवार्य करती है, ताकि शिक्षक शैक्षिक पद्धतियों, पाठ्यक्रम संरचना और विषय ज्ञान में नवीनतम विकास के साथ अद्यतित रहे। इसके अतिरिक्त, नीति 2020 शिक्षकों को सहकर्मी–शिक्षण समुदायों, सहकारी शोध, और शैक्षिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे साझा ज्ञान और निरंतर सुधार का वातावरण तैयार होता है। शिक्षकों को आत्म–गति से सीखने के लिए ऑनलाइन प्लेटफार्मों और संसाधनों तक पहुंच भी दी जाएगी, जिससे वे अपने व्यक्तिगत पेशेवर लक्ष्यों और रुचियों के अनुसार अपने कौशल को बेहतर बना सकें। NEP 2020 एक बार के प्रशिक्षण से जीवनभर सीखने के मॉडल की ओर बदलाव की वकालत करती है, जहां शिक्षकों को अपने करियर के दौरान निरंतर आत्म–मूल्यांकन और विकास में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित

किया जाता है। यह निरंतर विकास न केवल शिक्षण की गुणवत्ता को बढ़ाएगा, बल्कि शिक्षकों को बदलती शैक्षिक परिस्थितियों के अनुकूल होने, नई प्रौद्योगिकी को अपनाने और नवाचारपूर्ण शिक्षण विधियों को लागू करने में भी सक्षम बनाएगा। शिक्षकों के पेशेवर विकास में निवेश करके, NEP 2020 का उद्देश्य एक कुशल एवं प्रेरित शिक्षक शक्ति तैयार करना है, जो निरंतर विकसित होती दुनिया में विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो।

5. शिक्षक शिक्षा संस्थानों (TEIs) की सख्त मान्यता :

नवीन शिक्षा नीति 2020 शिक्षक शिक्षा संस्थानों (TEIs) के लिए सख्त मान्यता मानकों का प्रस्ताव करती है, जो शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता और प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। कठोर मान्यता प्रक्रियाओं को लागू करके, NEP 2020 उत्कृष्टता के लिए स्पष्ट मानदण्ड स्थापित करना चाहती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि केवल वे संस्थान जो शिक्षा, बुनियादी ढांचे और संकाय विशेषज्ञता के उच्च मानकों को पूरा करते हैं, उन्हें संचालन की अनुमति दी जाए। ये मानक शिक्षक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जिसमें पाठ्यक्रम की गुणवत्ता, शिक्षण पद्धतियाँ, संकाय की योग्यताएँ, विद्यार्थी परिणाम और संसाधनों की उपलब्धता शामिल हैं। जो संस्थान इन मानकों को पूरा नहीं करेंगे, उन्हें सुधारात्मक कार्रवाई का सामना करना पड़ेगा, और अत्यधिक मामलों में, निम्न मानक वाले TEIs को बंद किया जाएगा ताकि शिक्षण मानकों का और अधिक पतन होने से रोका जा सके।

यह दृष्टिकोण उन संस्थानों को समाप्त करने का उद्देश्य है जो खराब प्रबंधन या प्रभावहीन हैं और जो निम्न गुणवत्ता वाले शिक्षक प्रशिक्षण में योगदान करते हैं, जो अंततः विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। उच्च मान्यता मानकों को लागू करके, नीति 2020 एक अधिक मजबूत और जिम्मेदार शिक्षक शिक्षा प्रणाली बनाने का इरादा रखती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि आकांक्षी शिक्षकों को सर्वोत्तम प्रशिक्षण प्राप्त हो और वे कक्षा में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से लैस हों। इसके अलावा, मान्यता प्रक्रिया पारदर्शी और प्रमाण–आधारित होगी, जिससे उभरते शैक्षिक रुझानों के साथ कदम से कदम मिलाकर मूल्यांकन और सुधार संभव हो सके। गुणवत्ता नियंत्रण पर जोर न केवल शिक्षक शिक्षा के समग्र मानकों को बढ़ाएगा, बल्कि शिक्षण के पेशे के विकास में भी योगदान देगा, जिससे इसे एक सम्मानित और प्रतिस्पर्धी क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा और इस पेशे में उच्च कौशल और जुनून से भरे व्यक्तियों को आकर्षित किया जाएगा।

6. शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी का एकीकरण :

शिक्षा के डिजिटल रूपांतरण के साथ, NEP 2020 शिक्षकों को प्रौद्योगिकी का प्रभावी रूप से उपयोग करने के लिए आवश्यक कौशल से लैस करने के महत्त्व पर जोर देती है, ताकि सीखने के अनुभव को बेहतर बनाया जा सके। जैसे–जैसे शिक्षा तेजी से डिजिटल क्षेत्र में स्थानांतरित हो रही है, शिक्षकों को विद्यार्थियों को संलग्न करने, कक्षा का प्रबंधन करने और सामग्री को प्रभावी रूप से वितरित करने के लिए डिजिटल उपकरणों और प्लेटफॉर्म्स का कुशलतापूर्वक उपयोग करने में सक्षम होना चाहिए। नीति 2020 यह सुनिश्चित करने पर जोर देती है कि शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में ऑनलाइन शिक्षण पद्धतियों, डिजिटल उपकरणों और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) में प्रशिक्षण को एक मुख्य घटक के रूप में शामिल किया जाए। यह सुनिश्चित करेगा कि शिक्षक केवल प्रौद्योगिकी का उपयोग करने में सहज नहीं होंगे, बल्कि वे आकर्षक और समावेशी ऑनलाइन और हाइब्रिड

लर्निंग वातावरण भी बना सकेंगे।

मूल डिजिटल साक्षरता से परे, NEP 2020 एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण की कल्पना करती है, जिसमें शैक्षिक सॉफ्टवेयर, डिजिटल मूल्यांकन उपकरण, मल्टीमीडिया सामग्री निर्माण और वर्चुअल प्लेटफॉर्म के उपयोग में प्रशिक्षण शामिल होगा। शिक्षक ऑनलाइन पाठ्यक्रम तैयार करने, डिजिटल उपकरणों का उपयोग करके विद्यार्थियों की प्रगति का मूल्यांकन करने और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करके अपनी शिक्षण विधियों को व्यक्तिगत सीखने की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित करने में सक्षम होंगे। इसके अलावा, यह नीति डिजिटल नागरिकता को बढ़ावा देने के महत्त्व पर भी बल देती है, ताकि शिक्षकों को यह समझने में सहायता मिल सके कि वे विद्यार्थियों को प्रौद्योगिकी के जिम्मेदार, नैतिक और सुरक्षित उपयोग के बारे में कैसे सिखा सकते हैं। NEP 2020 एक निरंतर पेशेवर विकास मॉडल की कल्पना करती है, जहां शिक्षक नियमित रूप से अपनी प्रौद्योगिकी संबंधी क्षमताओं को अद्यतन करेंगे ताकि वे शिक्षा में विकसित हो रहे रुझानों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें। अंततः, शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण को सम्मिलित करके, नीति का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि शिक्षक 21वीं सदी के विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार हैं और डिजिटल शिक्षा द्वारा प्रदान किए गए अवसरों का पूरी तरह से लाभ उठा सकें।

7. क्षेत्रीय और स्थानीय संदर्भों पर ध्यान :

शिक्षक शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग और स्थानीय संस्कृतियों और परंपराओं की समझ में व्यापक प्रशिक्षण शामिल होगा, यह मानते हुए कि भारत एक विविध देश है जिसमें भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमियों की समृद्ध विविधता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को सभी विद्यार्थियों के लिए अधिक प्रासंगिक, समावेशी और सुलभ बनाने के लिए तैयार किया गया है, विशेष रूप से उन विद्यार्थियों के लिए जो ग्रामीण या हाशिए के समुदायों से हैं और जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में कुशल नहीं हो सकते हैं। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में क्षेत्रीय भाषाओं को सम्मिलित करके, NEP 2020 भाषा की दीवार को पाटने का लक्ष्य रखती है, जिससे शिक्षक अपनी मातृभाषाओं में विद्यार्थियों से अधिक प्रभावी ढंग से संवाद कर सकें, जिससे एक गहरा जुड़ाव और समझ पैदा हो सके।

भाषाई कौशल के अलावा, नीति 2020 सांस्कृतिक क्षमता के महत्त्व पर भी बल देती है, यह सुनिश्चित करते हुए कि शिक्षक उन समुदायों की स्थानीय परंपराओं, रिवाजों और मूल्यों को पहचानने और सम्मान करने के लिए प्रशिक्षित हों जिन्हें वे सेवा प्रदान करते हैं। इससे शिक्षकों को सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील पाठ्यक्रम सामग्री तैयार करने में मदद मिलेगी जो विद्यार्थियों के जीवन अनुभवों को दर्शाती है, जिससे सीखने को अधिक संबंधित और अर्थपूर्ण बनाया जा सकेगा। शिक्षक प्रशिक्षण में क्षेत्रीय भाषाओं और स्थानीय सांस्कृतिक जागरूकता को शामिल करके, NEP 2020 का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा प्रणाली बनाना है जो सभी विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के प्रति अधिक समान और उत्तरदायी हो, विशेष रूप से उन विद्यार्थियों के लिए जो ऐतिहासिक रूप से भाषा या सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण वंचित रहे हैं। यह विचार क्षेत्रीय भाषाओं और संस्कृतियों के संरक्षण का भी समर्थन करता है, जिससे भारतीय शिक्षा परिदृश्य में भाषाई विविधता को एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में बढ़ावा मिलता है।

शिक्षक शिक्षा सुधारों के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ :

जहाँ NEP 2020 की शिक्षक शिक्षा के लिए दृष्टि महत्त्वाकांक्षी है, वहीं इसके सफल कार्यान्वयन और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए कई चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है। इन चुनौतियों में बुनियादी ढांचे में पर्याप्त निवेश, एक बड़ी संख्या में शिक्षकों का प्रशिक्षण, और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण संसाधनों का विकास शामिल हैं। उदाहरण के लिए, चार वर्षीय एकीकृत बी. एड. कार्यक्रम का विस्तार नए शिक्षक शिक्षा संस्थानों की स्थापना और मौजूदा संस्थानों के उन्नयन की आवश्यकता है, जिसके लिए महत्त्वपूर्ण वित्तीय और मानव संसाधनों की आवश्यकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक शिक्षक प्रशिक्षण विधियों को नए बहुविषयक, प्रौद्योगिकी–संचालित पाठ्यक्रम के अनुरूप बदलने से मौजूदा शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को पुनः प्रशिक्षण देने और उपयुक्त शिक्षण सामग्री विकसित करने की चुनौती उत्पन्न होती है।

एक और बड़ी चुनौती उन शिक्षकों और संस्थानों से बदलाव के विरुद्ध प्रतिरोध को दूर करना है, जो परंपरागत प्रणालियों के आदी हैं, और जो नई नीतियों को अपनाने में धीमे हो सकते हैं। इसके अलावा, डिजिटल खाई को पाटना और ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच सुनिश्चित करना NEP 2020 के प्रौद्योगिकी एकीकरण पर ध्यान केंद्रित करने की सफलता के लिए आवश्यक है। शिक्षक शिक्षा के लिए निरंतर पेशेवर विकास सुनिश्चित करने का मुद्दा भी है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ संसाधन या प्रशिक्षण कार्यक्रमों तक पहुँच सीमित है। अंततः, यह सुनिश्चित करना कि शिक्षक शिक्षा संस्थानों के लिए मान्यता प्रक्रियाएँ कठोर और देश भर में समान रूप से लागू हों, इसके लिए मजबूत निगरानी और नियामक तंत्र की आवश्यकता होगी। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार, शैक्षिक संस्थानों और अन्य हितधारकों को मिलकर प्रयास करने होंगे, ताकि NEP 2020 के शिक्षक शिक्षा के लिए महत्त्वाकांक्षी लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

1. क्षमता निर्माण :–

चार वर्षीय बी. एड. कार्यक्रम को समायोजित करने के लिए बुनियादी ढांचे और संकाय का विस्तार करने के लिए मौजूदा शिक्षक शिक्षा संस्थानों (TEIs) का महत्त्वपूर्ण पुनर्गठन और नई संस्थाओं का निर्माण करना आवश्यक होगा ताकि बढ़ी हुई मांग को पूरा किया जा सके। इस विस्तार में भौतिक सुविधाओं, जैसे कक्षाओं, पुस्तकालयों, और प्रौद्योगिकी संसाधनों का उन्नयन शामिल होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अधिक कठोर, बहुविषयक पाठ्यक्रम का समर्थन करने के लिए सुसज्जित हैं। इसके अतिरिक्त, योग्य संकाय सदस्यों की नियुक्ति और प्रशिक्षण आवश्यक होगा ताकि उच्च शैक्षिक मानकों को बनाए रखा जा सके, क्योंकि नए कार्यक्रम को ऐसे प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी जिनके पास विभिन्न विषयों, शैक्षिक दृष्टिकोणों और शिक्षण में प्रौद्योगिकी के एकीकरण में विशेषज्ञता हो। संकाय सदस्यों को शैक्षिक प्रथाओं और पाठ्यक्रम सुधारों के विकास के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए निरंतर पेशेवर विकास की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, इस विस्तार के लिए सरकार और निजी क्षेत्रों से वित्तीय निवेश की आवश्यकता होगी, साथ ही शैक्षिक संस्थानों और नीति निर्माताओं के बीच प्रभावी समन्वय की आवश्यकता होगी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आवश्यक संसाधन प्रभावी और समान रूप से देश भर में आवंटित किए जा सकें।

2. वित्तीय सीमाएं :

TEIs के उन्नयन और सुधारों के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन सुनिश्चित करना, शिक्षक

शिक्षा के लिए NEP 2020 के दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक साकार करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस वित्तीय सहायता की आवश्यकता न केवल नए चार वर्षीय बी. एड. कार्यक्रम को समायोजित करने हेतु भौतिक संरचना के लिए होगी, बल्कि आधुनिक शिक्षण संसाधनों, डिजिटल उपकरणों और शैक्षिक प्रौद्योगिकी के विकास के लिए भी होगी, जो शिक्षण अनुभव को बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, वित्तीय सहायता की आवश्यकता योग्य संकाय सदस्यों की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए भी होगी, जो बहुविषयक, तकनीकी–समझ वाले वातावरण में पढ़ाने में सक्षम हों। संरचना और मानव संसाधन विकास के अतिरिक्त, शिक्षण विधियों में शोध और नवाचार के लिए, साथ ही शिक्षकों और संकाय के लिए निरंतर पेशेवर विकास कार्यक्रमों के आयोजन के लिए भी वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होगी। पर्याप्त संसाधनों का आवंटन इस प्रकार से योजनाबद्ध किया जाना चाहिए, ताकि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से वितरण सुनिश्चित किया जा सके, जिससे गुणवत्ता वाली शिक्षक शिक्षा तक पहुंच में असमानताएं न हों। इसके अलावा, निधियों के उपयोग की निगरानी और मूल्यांकन के लिए प्रभावी तंत्र की आवश्यकता होगी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निवेश उच्च–प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में निर्देशित किए जा रहे हैं और शिक्षक तैयारी और शैक्षिक परिणामों में ठोस सुधार हो रहा है।

3. परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध :–

ऐसी संस्थाओं और शिक्षकों से प्रतिरोध को दूर करना जो पारंपरिक प्रणाली से परिचित हैं, इसके लिए एक पूर्व–नियोजित एवं चरणबद्ध दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी, जो सभी हितधारकों की चिंताओं को संबोधित करते हुए उनका समर्थन प्राप्त करे। कई शिक्षक और शिक्षक शिक्षा संस्थान छम्च् 2020 द्वारा प्रस्तावित व्यापक सुधारों को अपनाने में संकोच कर सकते हैं, क्योंकि वे वर्षों से स्थापित प्रथाओं से परिचित हैं और पारंपरिक तरीकों से हटने के लिए संकोच कर रहे हैं। इस संक्रमण को सुविधाजनक बनाने के लिए, लक्षित क्षमता निर्माण पहलों की आवश्यकता होगी, जिसमें कार्यशालाएँ, अभिविन्यास सत्र और पायलट कार्यक्रम शामिल हैं, जो शिक्षकों को नए पाठ्यक्रम, शिक्षण रणनीतियों और तकनीकी उपकरणों से परिचित कराएँ। इसके अतिरिक्त, पेशेवर विकास के अवसर, मान्यता और सुधारों के प्रारंभिक अपनाने वालों के लिए समर्थन जैसे प्रोत्साहन शिक्षकों को परिवर्तन को अपनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। सुधारों के दीर्घकालिक लाभों–जैसे कि बेहतर विद्यार्थी परिणाम, शिक्षण मानकों में सुधार और पेशेवर विकास को स्पष्ट रूप से संप्रेषित करना आवश्यक होगा ताकि प्रतिरोध को पार किया जा सके। शिक्षकों को सुधार प्रक्रिया में शामिल करना और उनकी प्रतिक्रिया और परामर्श तंत्र के माध्यम से उनकी चिंताओं को संबोधित करना संक्रमण को सरल बनाएगा और परिवर्तन में स्वामित्व की भावना उत्पन्न करेगा। एक सहयोगी दृष्टिकोण, जिसमें मेंटरशिप कार्यक्रम और सहकर्मी–शिक्षण नेटवर्क शामिल हैं, विश्वास बनाने में मदद कर सकता है और सर्वोत्तम प्रथाओं के साझा करने को बढ़ावा दे सकता है, जिससे यह सुनिश्चित होगा कि नए सिस्टम में बदलाव स्थायी और प्रभावी रूप से लागू हो।

4. प्रौद्योगिकी की पहुंच :–

शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी–प्रेरित समान पहुंच सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल विभाजन को दूर करना एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है, जिसके लिए बुनियादी ढांचा, संसाधन और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए लक्षित प्रयासों की आवश्यकता होगी, विशेष रूप से ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में। इन क्षेत्रों में कई शिक्षक शिक्षा संस्थानों में आवश्यक प्रौद्योगिकी ढांचा, जैसे उच्च गति इंटरनेट, कंप्यूटर और डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म की कमी है, जो

NEP के डिजिटल साक्षरता और प्रौद्योगिकी एकीकरण पर जोर देने के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा डाल सकती है। इस अंतर को दूर करने के लिए, सरकार और शैक्षिक संस्थानों को सस्ती, उच्च गुणवत्ता वाली प्रौद्योगिकी समाधानों में निवेश करना होगा, साथ ही विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्टिविटी प्रदान करनी होगी ताकि कोई भी क्षेत्र या समुदाय पीछे न रह जाए। इसके अतिरिक्त, इन क्षेत्रों के शिक्षकों और विद्यार्थियों को व्यापक डिजिटल साक्षरता प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा ताकि वे उपलब्ध प्रौद्योगिकी का सही तरीके से उपयोग कर सकें। प्रौद्योगिकी प्रदाताओं और स्थानीय संगठनों के साथ साझेदारी करके, कनेक्टिविटी की चुनौतियों को पार करने के लिए लागत–कुशल समाधान, जैसे सस्ते टैबलेट, ऑफलाइन डिजिटल सामग्री और मोबाइल–आधारित लर्निंग प्लेटफार्मों को लागू किया जा सकता है। समान पहुंच सुनिश्चित करने का मतलब यह भी है कि ऐसी समावेशी डिजिटल सामग्री तैयार की जाए, जो विभिन्न प्रकार की अध्ययन आवश्यकताओं को पूरा करें, जिसमें क्षेत्रीय भाषाओं में संसाधन और विभिन्न अध्ययन शैलियों के अनुरूप सामग्री शामिल हो। इन चुनौतियों का समाधान करके, डिजिटल विभाजन को दूर किया जा सकता है, जिससे सभी शिक्षक शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी की परिवर्तनकारी क्षमता का लाभ उठा सकें, चाहे उनका भौगोलिक स्थान या सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो।

भविष्यमुखी मार्ग :–

शिक्षक शिक्षा में प्रस्तावित परिवर्तनों को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सरकार, शैक्षिक संस्थानों और विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोगी प्रयास आवश्यक है। नीति निर्माता, शिक्षक संघों, अकादमिक विशेषज्ञों और स्थानीय समुदायों की भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि सुधार व्यावहारिक, व्यापक रूप से स्वीकार्य और भारत के शैक्षिक परिदृश्य की विविध आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन योग्य हों। नीतियों को चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाना चाहिए, जिसमें स्पष्ट समयसीमा, मापने योग्य लक्ष्य और निरंतर निगरानी और प्रतिक्रिया तंत्र हो, ताकि प्रगति का मूल्यांकन किया जा सके, चुनौतियों की पहचान की जा सके और आवश्यक समायोजन किए जा सकें। यह चरणबद्ध दृष्टिकोण संक्रमण को सुगम बनाएगा और प्रणाली को शिक्षकों और विद्यार्थियों की बढ़ती आवश्यकताओं के अनुसार ढलने की अनुमति देगा। इसके अतिरिक्त, कार्यान्वयन चरण के दौरान शिक्षक शिक्षा संस्थानों को लक्षित समर्थन प्रदान करना–जैसे कि वित्तीय सहायता, पेशेवर विकास और बुनियादी ढांचे के उन्नयन, यह सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण होगा कि सुधार दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बने रहें। जो 21वीं सदी में शिक्षकों की बढ़ती मांगों और जिम्मेदारियों को प्रतिबिंबित करें, साथ ही पुरस्कारों, सार्वजनिक मान्यता और पेशे के प्रति सम्मान की संस्कृति को बढ़ावा देकर शिक्षकों के योगदान को पहचानना, उनके पेशे की स्थिति को ऊंचा कर सकता है और इसे एक आकर्षक कैरियर विकल्प बना सकता है।

इस तरह के प्रोत्साहनों को लागू करके, शिक्षण पेशे में विविध प्रतिभाओं और विशेषज्ञताओं वाले व्यक्तियों को आकर्षित किया जा सकता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि कक्षाएं ऐसे प्रेरित और कुशल शिक्षकों से भरी हों जो विद्यार्थियों के जीवन में सार्थक परिवर्तन ला सकें। अंततः, एक सहयोगी और बहुआयामी दृष्टिकोण NEP 2020 के शिक्षक शिक्षा के दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक लागू करने में महत्त्वपूर्ण होगा, जिससे एक मजबूत, भविष्य–तैयार शिक्षा प्रणाली का निर्माण होगा, जो शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए लाभकारी होगी।

निष्कर्ष :-

NEP 2020 एक मजबूत शिक्षक शिक्षा प्रणाली की कल्पना है जो आधुनिक शिक्षा की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो, जिसमें स्पष्ट रूप से ऐसे शिक्षकों को तैयार करने पर ध्यान केंद्रित किया गया है जो एक बढ़ती हुई विविधता और डिजिटल दुनिया की जटिलताओं को समझ सकें। गुणवत्ता, समावेशन और नवाचार को प्राथमिकता देकर, यह नीति शिक्षकों को आवश्यक कौशल, ज्ञान और उपकरण प्रदान करने का उद्देश्य रखती है ताकि वे अपने विद्यार्थियों में आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को बढ़ावा दे सकें। शिक्षक शिक्षा के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण के माध्यम से, जो बहुविषयक अध्ययन, डिजिटल दक्षता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता को शामिल करता है, NEP 2020 यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि शिक्षक न केवल अपने विषय क्षेत्र में विशेषज्ञ हों, बल्कि वे संतुलित, वैश्विक नागरिकों को भी बढ़ावा देने में सक्षम हों।

शिक्षकों को विविध अध्ययन आवश्यकताओं को पूरा करने और नई प्रौद्योगिकियों और शिक्षण विधियों के अनुसार ढलने की क्षमता प्रदान करने के माध्यम से, यह नीति एक ऐसी शिक्षा प्रणाली बनाने का प्रयास करती है जो सभी विद्यार्थियों के लिए अधिक सुलभ और प्रासंगिक हो, चाहे उनका सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि या भौगोलिक स्थान कुछ भी हो। समावेशिता पर जोर देने से यह सुनिश्चित होता है कि हर विद्यार्थी, जिसमें दिव्यांगता वाले विद्यार्थी, हाशिए पर रहने वाले समुदायों से संबंधित विद्यार्थी, और क्षेत्रीय भाषाएं बोलने वाले विद्यार्थी भी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा का लाभ उठा सकें। शिक्षण पेशे में नवाचार को बढ़ावा देना शिक्षकों को नए शैक्षिक दृष्टिकोणों के साथ प्रयोग करने और तकनीकी उपकरणों का उपयोग इस तरह से करने के लिए प्रेरित करेगा, जो विद्यार्थी सहभागिता और शैक्षिक परिणामों को बेहतर बनाए।

यदि इन सुधारों को प्रभावी तरीके से लागू किया जाता है, तो ये भारत के शैक्षिक परिदृश्य में क्रांतिकारी बदलाव ला सकते हैं, जिससे यह न केवल अधिक समान होगा बल्कि भविष्य के लिए तैयार भी होगा। प्रेरित एवं अच्छे प्रशिक्षित शिक्षकों को आकर्षित करने और उन्हें आवश्यक समर्थन प्रदान करने के माध्यम से, NEP 2020 द्वारा देशभर में शिक्षा की गुणवत्ता को बदल सकता है। ये परिवर्तन अंततः एक ऐसी पीढ़ी के विद्यार्थियों को तैयार करेंगे, जो केवल शैक्षिक ज्ञान से सुसज्जित नहीं होंगे, बल्कि आलोचनात्मक सोच, समस्या हल करने और तेजी से बदलते वैश्विक वातावरण में अनुकूलित करने की क्षमता भी रखते होंगे। परिणामस्वरूप, ये सुधार एक अधिक गतिशील, समावेशी और प्रतिस्पर्धी शिक्षा प्रणाली की नींव रख सकते हैं, जो भारत को 21वीं सदी और उसके बाद की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाएगा।

संदर्भ सूची :-

1. नोएल, नित्तला अनुराग प्रशांत, बोनाला कोंडल, नवीन शिक्षा नीति और सामाजिक संदर्भ, 2024, 34–40.
2. सिंह, बलवंत, और मनप्रीत कौर. "Changing Norms o Policies and Practices for Teacher" आधुनिक शिक्षा प्रणाली, 2024, 56–62.
3. कुमारी, शंभवी. "NEP~ 2020 and Teacher Education: Transforming Teacher Training Program" राष्ट्रीय शिक्षा और सुधार, 2024, 78–85.
4. मोंडल, अजीत, इंद्रजीत दत्ता, और भानु प्रताप प्रीतम. "National Education Policy 2020 : Policy

Reforms and Perspective" शिक्षा नीति विश्लेषण, 2023, 41–50.

5. कुमारी, शंभवी. "Revolutionçing Teacher Education: Embracing the" शिक्षा में चुनौतियां, 2023, 92–99.
6. वर्मा, प्रो. के. अंजलि, "Transforming Teacher Education through NEP 2020" राष्ट्रीय शिक्षा की दिशा, 2022, 65–72.
7. अग्निहोत्री, अनुराधा, "National Education Policy 2020: Prospects for Teacher" शिक्षा नीति और विकास, 2022, 88–95.
8. शर्मा, डॉ. सुमन, शिक्षक शिक्षा में सुधार– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में, शिक्षा सुधार और रणनीतियां, 2021, 45–51.
9. शुक्ला, सीमा, भारतीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय शिक्षा प्रणाली, 2020, 22–29.
10. यादव, प्रो. आर. एस., शिक्षक शिक्षा के आयाम, शिक्षक और शिक्षा नीति, 2019, 55–62.

Contact No. 7357193356
E-mail: pareeksurendra67@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 38-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विवेकी राय के निबंधों में निहित व्यंग्यात्मक यथार्थ

डॉ. राज कुमार शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110005

व्यंग्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है, जिसमें मनोरंजन के साथ ही सुधार का पुट निहित रहता है। या यूँ कहें व्यंग्य एक मीठी चुटकी है जो प्रसन्नता के साथ दर्द करता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– 'व्यंग्य गद्य का कवित्त है' तथा 'हास्य व्यंग्य गद्य की संजीवनी शक्ति।' छायावाद के प्रमुख कवि 'निराला', 'गद्य को जीवन संग्राम की भाषा बताते हुए व्यंग्य को इस संग्राम का सबसे शक्तिशाली अस्त्र मानते हैं। व्यंग्य में कितनी शक्ति होती है इस बात का पता रीतिकालीन कवि 'बिहारी' के एक दोहे मात्र से पता चल जाता है :–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कवन हवाल।।

कवि का उक्त व्यंग्य नवोढा रानी के प्रेमपाश में बँधे मिर्जाराजा जयसिंह की आँखे खोल देता है, वे पुनः राजकाल में तल्लीन हो जाते हैं। इस तरह से व्यंग्य शक्ति का भान हो जाता है। 'श्याम कश्यप' व्यंग्य की उत्पत्ति आजादी के बाद उत्पन्न व्यामोह और नव–रूमानी उत्थान में देखते हैं– ''दरअसल, आजादी के बाद के व्यामोह और नव–रूमानी उत्थान की एक 'एंटी–थीसिस' के रूप में व्यंग्य ही सबसे कारगर और लगभग अनिवार्य अस्त्र है। इसके अलावा, हमारे स्वातंत्र्योत्तर जीवन यथार्थ के अनेक ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिन्हें बिना व्यंग्य के न तो भली–भांति चित्रित किया जा सकता है और न ही सही ढंग से व्याख्यायित। व्यंग्य के पैने नश्तरों के बेगैर आजादी के बाद राजनैतिक दोगलेपन, सामाजिक पाखंड, अवसरवाद और तमाम किस्म के भ्रष्टाचार की सूक्ष्म परतें उधेड़ी ही नहीं जा सकतीं। उपरोक्त समस्याएँ लेखकीय कृति–व्यक्तित्व में आक्रोश को जन्म देती हैं जो व्यंग्यात्मक रूप में परिणत हो जाता है। कुछ इसी तरह की सामाजिक विडम्बनाओं की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति विवेकी राय के निबंध साहित्य में दिखाई पड़ता है, जिसका उद्घाटन करना इस शोध–पत्र का उत्स है।

गौरतलब हो कि विवेकीराम के लेखन की चरम बिंदु स्वातंत्र्योत्तर भारत है, जिसमें आजादी के पूर्व और पर के विविध धूप–छाँही रंग अपने वास्तविक रूप में चित्रित हुए हैं। 1947 में अंग्रेजी सरकार के पलायन के बाद शासन सत्ता की बागडोर भारतीय नुमाइंदों के हाथों में आने के बाद जिस तरह की वैयक्तिक सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनैतिक नक्कारापन एवं भ्रष्टाचार से ओत–प्रोत राजनेताओं का दोहरा चरित्र दिखाई पड़ता है उसका सहज किंतु व्यंग्यात्मक रूप विवेकीराय के ललित निबंधों की विषय वस्तु बनी। 'विवेकीराय' 'नया गाँवनामा' में व्यंग्य के विषय में अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– ''मेरा समुचा जीवन विधाता का एक व्यंग्य है, उसकी

आंतरिक चोट कभी–कभी बहुत सघन हो जाती है तो क्लेश कौतुहल बन जाता है। उस विचित्र पीड़ा का उस रहस्य में आनंद ही तो व्यंग्य–कला बन अभिव्यक्त हो जाता है।'' सच है कि यही सामाजिक क्लेश इनके निबंधों में व्यंग्य का बाना धारण कर कोतुहल के रूप में पाठक वर्ग के समक्ष प्रकट होकर आदि से अंत तक जोड़े रहता है।

आजादी के बाद शासन–सत्ता की डोर स्थानांतरित होकर भारतीय राजनेताओं के हाथ में आ जाने से आम भारतीय जन मानस में आशा की नवीन किरणों का संचार हुआ। सदियों से दमित–शोषित, गरीबी और अशिक्षा में जीवन यापन करने वाली जनता आश्वत हो गयी कि, अब देश तरक्की की राह पर चल पड़ेगा जिससे लोगों के जीवन में खुशहाली आएगी। किन्तु हुआ इसके विपरीत, भ्रष्टाचार के रूप में ऐसी बड़ी विडम्बना ने जन्म लिया जो जनता की समस्त आशाओं पर तुषारापात कर दिया। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार जीवन के हर क्षेत्र में थर कर गया है। यह ऐसा रोग है जिससे नेता, मंत्री, संतरी, विधायक, अधिकारी, कर्मचारी से लेकर ग्राहक–व्यापारी तक सभी संक्रमित हो चुके हैं। आजादी के बाद से लेकर आज तक देश में इतने बड़े–बड़े भ्रष्टाचार घटित हुए कि लोग ऐसी खबरों को सुनने के आदी हो चुके हैं। अब ऐसी घटनाओं पर उन्हें आश्चर्य नहीं होता। इस व्यवस्था पर तंज कसते हुए विवेकीराय जी लिखते हैं– ''एक तूफान पूरी रफ्तार से जा रही है, जाने दो। तुम बस काम निकालो और देखो, जहाजों से नोट बरसते हैं और महाजनों के साथ नोंच–खसोट से पवित्र होते हैं, तुम किस–किस पर आश्चर्य करोगे।'' देखा जाए तो आज भी कमोवेश स्थिति वही बनी हुई है।

स्वतंत्र भारत में जिस तरह से विकास होना चाहिए था उस ढंग से हुआ नहीं, आजादी के चौंतीस साल बीस जाने के बाद भी सड़कें जस की तस पड़ी मुँह चिढ़ाती दिख रही हैं। सरकार की इस उदासीनता पर व्यंग्य करते हुए विवेकी जी लिखते हैं– ''हम सोच सकते हैं, बेचारे गोरे कितने लायक थे। चौड़ी–चौड़ी सड़कें दे चले गये। इधर हम कि बस, ट्रस, ट्रैक्टर और रिक्शा चलने लायक अर्थात् चौंतीस वर्षों में उन सबको कच्ची से पक्की नहीं बना सके।'' यह रही विकास का झूठा ढिंढोरा पीटने वाली तत्कालीन सरकारों की करतूत।

भारत कृषि प्रधान देश है, यहाँ के जनसंख्या की एक बड़ा हिस्सा कृषि कार्यों पर निर्भर है। प्रकृति पर आधारित अधिकांश फसलें विविध आपदाओं में काल–कवलित हो जाती हैं। कभी अतिवृष्टि–अनावृष्टि तो कभी आकाशी बिजली एवं मानव जनित आपदाएँ किसानों के भरोसे पर पानी फेर देती हैं। फिर क्या? कृषि व्यवस्था से जुड़े नेता मंत्री और अधिकारियों की चाँदी आ जाती है। आपदा में अवसर को तलाश, गरीब–निरीह किसानों के जख्म पर थोथे आश्वासन और जुमलेबाजी का मरहम लगाने के लिए क्षेत्र भ्रमण पर निकल जाते हैं। दिखावे में तो किसानों के प्रति सहानुभूति है जबकि वास्तविकता अपनी वोट बैंक तैयार करना। मंत्री महोदय के इस दोहरे चरित्र का पटाक्षेप राय जी बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से करते हैं– ''गाँव में जब हेलिकॉप्टर उतरा, तो सुगिया की माई को लगा जहाज गिरा है तब उसके पति ने कि अरे पागल जहाज नहीं गिरा है मंत्री जी हेलिकॉप्टर से सूखा देखने उतरे हैं। बहुत जोरदार मंतिरी हैं। सूखा धान जिला देंगे। गाँव को सरग बना देंगे। उठ–उठ चल दरसन कर लें।''

मंत्री जी आए, जनसभा हुई, अपनी वाणी के माध्यम से सूखा ग्रस्त क्षेत्र को हरा–भरा बनाने के साथ ही खुद को किसानों का सबसे बड़ा हितैसी सिद्ध करते रहे। जनता बीच–बीच में मंत्री महोदय और भारतमाता की जयकारे से सभा को जीवंत बनाए रखी, इसी बीच क्षेत्र का समग्र विकास कर हेलिकॉप्टर उड़ जाता है। यथा

''सनन–सनन, सी–सी, झन–झन की तेज कर्णकटु ध्वनि हुई और हेलीकॉप्टर समूचे क्षेत्रीय विकास शिक्षा–दीक्षा और जीवन–विकास के लिए ऊपर उठ गया।'' किसी भी प्रकार की आपदा घटित होने के बाद पीड़ितों की सहायता हेतु आपदा राहत कोष से मद जारी किया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या मिलने वाला सम्पूर्ण धन जनता की सेवा के लिए पहुँच पाता है? नहीं, जारी होने वाले धन से किस प्रकार लूट–खसूट किया जाता है उससे हम सभी परिचित है। पीड़ितों तक पहुँचते–पहुँचते सहायता राशि का कुछ ही भाग शेष रह जाता है। भारत के पूर्व प्रधान मंत्री राजीव गाँधी ने भी कहा था कि– ''कल्याण और गरीबी उन्मूलन के लिए लक्षित प्रत्येक रूपये में से केवल एक अंश 15 पैसे इच्छित लाभार्थी तक पहुँचते हैं।'' प्रश्न उठता है इसका जिम्मेदार कौन है? इसका जिम्मेदार कहीं न कहीं नेता, मंत्री और अधिकारी गण हैं ऐसे जनसेवकों पर व्यंग्य करते हुए 'विवेकीराय' जी लिखते हैं– ''बेचारा नेता कहाँ जाएगा? बाढ़ का वरदान बना रहे। हर साल फसल डूबती रहे। घुरहू का घर गिरता रहे। मदद से 'मद' बहाल होता रहे। चौथाई–तिहाई से गत वर्ष 'मद' आधे पर उतर आया तो भी घुरूहू को संतोष रहा, अरे हाँ, भाई, कुछ तो मिला न।'' खैर आज व्यवस्था में परिवर्तन हुआ है, धीरे–धीरे सब कुछ आभासी माध्यम से होने के कारण जनता सीधे लाभान्वित हो रही है, फिर भी इस पर निगाह रखने की जरूरत है।

भारती जनता को यह विश्वास था कि अंग्रेजी साम्राज्य के विदा होने के साथ ही देश से गरीबी, भूखमरी और बेरोजगारी जैसी समस्याएँ समाप्त हो जाएगी। तत्पश्चात् जाति, धर्म, मत, मजहब से परे समता मूलक स्वस्थ समाज की स्थापना होगी जहाँ पर सभी को समान अवसर उपलब्ध होगा। किन्तु हुआ इसके विपरीत, आजादी का भवन धार्मिक विद्वेश की नींव पर खड़ा हुआ। देश विभाजन की त्रासदी को झेल ही रहा था कि इतने में जातीय भेद–भाव के रूप में एक नयी समस्या पनपने लगी, जिसको हवा देने का श्रेय स्वतंत्र भारत की मूल्यहीन, स्वार्थी और दलगत राजनीतिक दलों और उनके नेताओं को जाता है। इन राजनीतिक दलों ने भारतीय जनमानस को जातीय संकीर्णता के उस दायरे में आबद्ध कर दिया कि जिससे दामन बचाना मुश्किल कार्य है– ''मरे हुए जातिवाद को हमारे भाग्य विधाताओं ने 'लोक' के तंत्र–मंत्र से न केवल जिंदा कर दिया, बल्कि उसे भस्मासुर बनाकर प्रतिष्ठित कर दिया। किस–किस बात पर हम कितना–कितना आश्चर्य करें?'' स्वातंत्र्योत्तर भारत में सिर्फ जातीय विद्वेष ही नहीं अपितु आर्थिक विषमता की खाईं भी बहुत तेजी के साथ बढ़ी है, जिसे पाटना नामुमकिन है। यदि वर्तमान समय की बात की जाए तो भारत की 90 फीसद सम्पत्ति लगभग 5 फीसद व्यक्तियों के गिरफ्त में है। आजादी के आठवें दशक में भी कुछ लोगों का आशियाना–झुग्गी, झोपड़ी फुटपाथ तथा ओवर ब्रिज बना हुआ है। आर्थिक विडंबना के कारण ही जहाँ पूँजीपति दिनोंदिन फल–फूल रहा है तो वहीं गरीब, गरीबी के दलदल में धँसता जा रहा है। इस आर्थिक विषमता पर कटाक्ष करते हुए राय जी लिखते हैं– ''मत घबराओ, राह के बेचारे बिल–बिलाते नारकी मत घबराओ उस इन्कलाब को पानी पी–पीकर कोसने वालों, जिसने आकर मोटों को और मोटा कर दिया और हड्डी की ठठरियों के बीच भी मांस का प्लास्टर कर बेशर्म प्रेत–नृत्य करने वालों की जमात खड़ी कर दी।''

विवेकी जी का व्यंग्य यहीं तक सीमित नहीं है, आगे की भारत की चुनावी प्रक्रिया सांसदों, नेताओं का भी जमकर खबर लेते हैं। किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए निष्पक्ष चुनाव एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसी आधार पर सरकारों का गठन और विघटन होता है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहाँ की शासन–सत्ता पर

आरूढ़ होने के लिए विभिन्न राजनीतिक दल तमाम प्रकार के हथकंड़ों का सहारा लेते हैं। कभी–कभी इस प्रकार के कृत्यों से समाज विचलित होने लगता है। जाति, धर्म, मत, मजहब में बाँटने के साथ–साथ लोक लुभावने घोषणापत्र के माध्यम से जनमत को आकर्षित करना इनका प्रमुख लक्ष्य होता है। आम जनता इनके ख्याली पुलाव में आकर फँस जाती है। पिछले कुछ चुनावों से राजनीतिक दल मुफ्त की सुविधाएँ मुहैया कराने के नाम पर भी जनमत संग्रह कर रहे हैं जो आगे चलकर देश की अर्थव्यवस्था के लिए बुरा संकेत है। नेतागण अपने समर्थित दल को सच और दूसरे दलों का झूठा साबित करने के लिए किसी भी स्तर पर जाकर घटिही से घटिही भाषा का प्रयोग करने लगते हैं। इस तरह के तमाम वाकया हाल–फिलहाल में सम्पन्न आम चुनाव में बखूबी ढंग से दिखाई पड़ा, कुछ अपने को जनता का सबसे बड़ा मातहत तो कुछ खुद को भगवान भी सिद्ध करने से नहीं चुके। विवेकी जी ऐसे बड़ बोले नेताओं की जमकर खबर लेते हैं– ''मैं बीसवीं शताब्दी का परीक्षित हूँ। मुझे चुनाव का साँप क्या डँसेगा? मुझमें राजनीति का जहर भरा हुआ है। वह खुद उलट जाएगा। मेरा भाषण क्या भागवत से कम है? सुनो–सुनो, हे प्रेमी सज्जन भक्तगण मुझे चुनाव में विजयी बनाकर लोक–परलोक सुधो।'' चुनाव जीतने के बाद बहुत ही कम प्रतिनिधि हैं जो अपने क्षेत्र में भ्रमण करते हों। वे अपने स्व विकास में इतने मशगूल हो जाते हैं कि आम जनमानस का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। किन्तु वही नेता आगामी चुनाव का भूत सिर पर सवार होते ही मरकट की तरह नाचने लगता है। सुबह दोपहरी, शाम तथा धूप–छाँह की परवाह न करते हुए अपने क्षेत्र में डटा रहता है ऐसे उम्मीदवारों पर राय जी व्यंग्य की पैनीधार चलाते हैं– ''गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है, या 'निशा सर्व भूताना' यानी जिस रात में विषयी लोग सोते हैं, उसी समय संयमी लोग जागते हैं। मैं भी आजकल रात भर जाग रहा हूँ। मैं भी संयमी हूँ। मैं भी एक तपोयोगी हूँ। मैंने चुनाव योग की अखंड साधना की है।'' आगे ही नेताओं की वेशभूषा पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं– ''पाँच वर्ष पर आती राम लीला में वानरी सेना में दाखिल होने के लिए जैसे लाल जँघिया सिलवाते हैं, उसी प्रकार चुनाव में लंबी–लंबी बात करने के लिए नवीन खादी का कुर्ता–धोती और जाकेट बनवाना चाहिए।'' नेता जी के बड़े–बड़े वादे और सारी आगामी मौखिक विकास योजनाएँ कुर्ते की लम्बी जेबों में सुसुप्तावस्था में प्रवेश कर, अवसरानुकूल पाँच वर्ष बाद फिर जागृत होकर आमजन को छलने लगती है। जब यही उम्मीदवार वागाडम्बर और अपने झूठे वादों के बल पर जनप्रतिनिधि बन जाते हैं तो इनकी कार्यशैली देखते ही बनती है। एक विकास पुरुष के कोरे आश्वासन का बड़ा ही सुन्दर दृश्य प्रस्तुत है– ''कामों के चक्रव्यूह में वे अभिमन्यू की तरह लड़ रहे हैं, उनकी जीभ पर अलादीन का चिराग जल रहा है। समस्याओं की उफनाती बाढ़ के ऊपर वे राहतकारी हेलीकॉप्टर की तरह मंडरा रहे हैं।''

सिर्फ मंडराना ही इनका काम है निदान करना नहीं। अच्छा गाँवों के इस पिछड़ेपन का जिम्मेदार सिर्फ नेता ही नहीं, बल्कि अधिकारी भी हैं। जैसे ही अधिकारियों को पता चलता है कि अमुक क्षेत्र विशेष में नेता जी का भ्रमण होने वाला है तो उस क्षेत्र का विकास दिन दूना रात चौगुना के तर्ज पर होने लगता है। लेकिन विडम्बना इस बात की है कि जनप्रतिनिधियों को गाँवों में जाने की फुरसत कहाँ– ''विकास के राजपथ को इस देश की देशी सड़क से होकर कभी गुजरने का संयोग होता, तो शायद कुछ सोचा जाता। मगर वह तो राजधानी तक चक्कर मारता, पता नहीं कहाँ–कहाँ अटक जाता।''

स्वतंत्र भारत में गाँवों के विकास के लिए तमाम योजनाएँ बनती बिगड़ती रहीं, किंतु थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ गाँवों की स्थिति आज भी उसी तरह है विशेषकर रोजगार के संबंध में देखें तो। इन्हीं व्यवस्थाओं में से

एक थी पंचायतीराज व्यवस्था, जिसकी शुरूआत तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर से की गयी थी। यह मूलतरू शक्ति के विक्रेन्द्रीकरण पर आधारित ग्रामीण विकास के लिए समर्पित थी। सम्पूर्ण देश में इस योजना का सउत्साह स्वागत किया गया। लोगों के मन में विकास कार्य को लेकर आश जगी लेकिन समय बीतते–बीतते जनहित विकास की इस योजना में स्वहित के दीमक लगने शुरू हो गये। यथा– ''इस बीच क्या हुआ कि कुछ कीड़े इस व्यवस्था के बीच घुसे और समूची पनपती पत्तियों को चर गये। अब यह पंचायत के पौधों को बेजान ठूँठ इस पंचायत के रूप में खड़ा है। यह सच है कि विकास योजना के शुरू होते ही भ्रष्टाचार के कीड़े उसमें प्रवेश कर खोखला कर देते हैं। कुछ योजनाएँ ऐसी भी होती हैं जो सिर्फ कागज और फाइलों में दब कर रह जाती है। या तो उसकी शुरूआत नहीं होती या मद जारी होने बाद कागजों पर विकास कार्य पूर्ण हो जाता है धरातल पर नहीं। इस कटु सत्य को विवेकीराय जी कुछ इन शब्दों में व्यक्त करते हैं– ''बेशक हमारे देश में हर चीज की सत्ता कागज पर है। कागज पर लोकतंत्र है, कागज पर विकास है, कागज पर पंचायती राज है, कागज पर पंचायत घर।'' छोटे–छोटे कार्यों के लिए अरबों–खरबों का बजट पास होता है जिसका आधा भाग, बिचौलिये डकार जाते हैं– ''पता नहीं कितनी योजनाओं में कितने–कितने अरब–खरब स्वाहा करने के बाद गाँव को एक छोटी सी चीज मिलेगी सड़क।'' उपरोक्त कथन इस बात के सुबूत हैं कि अधिकांश सरकारी योजनाएँ भ्रष्टाचार के भेंट चढ़ जाती हैं।

शिक्षा किसी भी देश का मेरुदण्ड और विद्यार्थी देश का भविष्य होता है। इसलिए किसी भी देश का भविष्य उस देश की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है। शिक्षा मनुष्य के समग्र विकास यथा ज्ञानतंतुओं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य में आत्म सात करने, ग्रहण करने तथा हित–अहित के साथ राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों में भाग लेने की भावना का विकास होता है। उपरोक्त सभी तत्व नैतिकता को जन्म देती हैं। इसलिए हमारा पाठ्यक्रम नैतिक मूल्यों और ज्ञान पर आधारित हो। किंतु वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ठीक इसके विपरीत ज्ञान को धता देते हुए सिर्फ नौकर बनाने तक सीमित हो गयी है। ऐसी शिक्षा और परीक्षा व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए विवेकी राय ने लिखा है– ''अपत् जैसी शिक्षा कंटीली डार जैसी परीक्षा? हे जिंदगी की गुलाब–डार से बंधे भौरों के बच्चे, बस जो कुछ शेष है, वह मुसीबत है।'' लोगों के मन में आशा थी की आजाद भारत की शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ और मजबूत होगी लेकिन तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में ऐसा कुछ ''शिक्षा के नाम पर ये केवल स्कूल आते–जाते भर हैं और प्रगति के नाम पर केवल इनकी ऊँचाई भर बढ़ जाती है। स्कूलों में ये भेंड़–बकरियों की भांति बैठे या बैठाये रहते हैं। कहते हैं कि शिक्षा में जो आमूल क्रांति आई है, उसका असर गाँवों की शिक्षा पर यही पड़ा है कि अब शिक्षा नाम की कोई चीज वहाँ रह ही नहीं गई।'' लम्बे समय से पलायन के रूप में एक बड़ी समस्या हमारे समाज में चली आ रही है जो विवेकी राम के समय में भी थी और आज भी है। पढ़ा–लिखा शिक्षित युवा वर्ग गाँवों में रहना नहीं चाहता यही कारण है कि आज गाँव के गाँव खाली होते जा रहे हैं। आज युवा शिक्षित होते ही सबसे पहले अपनी भाषा, संस्कृति, वातावरण, लोक परंपरागत धंधे तथा खेती–बाड़ी को छोड़ न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करने के लिए छोटे–बड़े कस्बों, नगरों और शहरों में मारा–मारा फिर रहा है क्योंकि उसके मन मुताबिक कार्य नहीं मिलता। ऐसे शिक्षित युवाओं को आड़े हाथों लेते हुए राय जी लिखते हैं– ''असली सर्वहारा तो आज की शिक्षित कही जाने वाली युवा–पीढ़ी है। इनके लिए समाज ने, शासन ने शिक्षा की ऐसी सुंदर जनतांत्रिक व्यवस्था की है कि ये भीतर से एकदम खोखले हो गये।

गाँव में वह पुराना सर्वहारा तो खपकर खुश रह सकता है। वह खलिहान से भूसा उठाकर मस्ती ले सकता है, यह नया सर्वहारा किस लायक हर गया।'' इस दुर्व्यवस्था का जिम्मेदार सिर्फ युवाओं को ठहराना गलत होगा कहीं न कहीं गाँवों की प्रछन्न बेरोजगारी और वर्तमान शिक्षा व्यवस्था भी इस समस्या के प्रमुख कारणों में से एक है।

विवेकी राय जी पेशे से एक अध्यापक होने के नाते शिक्षा व्यवस्था की विभिन्न अड़चनों और शिक्षा को लेकर सरकारों की क्या रवैया थी इन सभी बातों से बखूबी परिचित थे। राय जी के समय में या यूँ कहें आज का शिक्षक जिस सम्मान का हकदार है समाज के द्वारा क्या वह सम्मान उसे मिलता। तत्कालीन समय में अध्यापकों का वेतन इतना कम था कि बड़ी मुश्किल से जिवीकोपार्जन हो पाता था उस पर भी वेतन की अनियमित मिलना हमारे मातहतों की शिक्षा के प्रति उदासीनता उजागिर करने के लिए काफी है– ''अध्यापकों को भूख लगती ही नहीं है। साधारण पर किंचित साफ कपड़े भी भूख कम कर देते हैं। शेष भूख के लिए अनेक मादक मंत्र हैं।... गर्दन पर लटकती नंगी तलवारें, ऋषियों की पुनीत गद्दी की रक्षा के दायित्व, देशी साहबों के दोष... छात्र जनता तथा सरकार से प्राप्त विशेष प्रकार का सम्मान पारितोषिक है।'' आगे ही फिर लिखते हैं– ''अध्यापकों के पास शिमला–नैनीताल तरावट लेने जाने भर का पैसा तो होता नहीं है– एक, दो, तीन महीने का धंधा उठा लिया। खैर मनोरंजन के साथ पैसा भी मिला।'' उस समय में शिक्षकों की यह दुर्दशा थी कि गर्मी की छुट्टियों में जीविका चलाने हेतु ठेले–खोमचे लगाने पड़ते थे।

राय जी के अनुसार हमारा पाठ्यक्रम खेल और मनोरंजन पर आधारित होना चाहिए, जिसमें सिद्धांत कम व्यवहार ज्यादा हों, इस आधार पर निर्मित पाठ्यक्रम रूचिकर और मनोरंजक होगा इससे विद्यार्थी खुद विद्यालयों की तरफ आकर्षित होंगे। किंतु है इसके विपरीत, इसलिए प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के छात्र–छात्राएँ छुट्टी का नाम सुनते ही जश्न मनाने लगते हैं– ''प्राइमरी स्कूल हो या हाईस्कूल या कॉलेज–विश्वविद्यालय, सूचना छुट्टी का सुनते ही हर्ष की मर्मर हिलोर कक्षा के इस छोर से उस छोर तक फैल जाती है।'' हमारी सरकारें और कुछ गार्जियन भी शिक्षा को एक बोझ के रूप में देखते हैं। इस हालात पर सटीक व्यंग्य करते हुए राय जी लिखते हैं– ''शिक्षा एक बोझ है, परीक्षा एक पीड़ा। तो भाइयों बोझ रहे न पीड़ा। शिक्षा हटाओ, शिक्षार्थी बचाओ, परीक्षा हटाओ परीक्षार्थी बचाओ दोनों हटाओ मुसीबत बचाओ।''

अतएव हम देखते हैं कि समाज, शिक्षा, राजनीति आर्थिक तथा अन्य विसंगतियों पर जहाँ भी विवेकी राय की दृष्टि गई है। वहाँ की खामियों को व्यंग्य के माध्यम से पाठक के समक्ष उजागिर करने में सिद्धस्थ हुए हैं।

संदर्भ :–

1. हरिशंकर परसाई संकलित रचनाएँ, सम्पा. श्याम कश्यपन, पृष्ठ 12, 13
2. नया गाँचनामा, विवेकीराम, पृष्ठ 16
3. वही, जगततपोवन सो कियो, पृष्ठ 10
4. वही, नया गाँवनामा, पृष्ठ 93
5. वही, पृष्ठ 18
6. वही, पृष्ठ 22

7. विकीपीडिया
8. वही, नया गाँवनामा, पृष्ठ 53
9. वही, जगत तपोवन सो कियो, पृष्ठ 84
10. वही, फिर बैतलवा डाल पर, पृष्ठ 109
11. वही, मेरी श्रेष्ठ व्यंग रचनाएँ, पृष्ठ 132
12. वही, पृष्ठ 133
13. वही, नया गाँवनामा, पृष्ठ 54
14. वही, पृष्ठ 93
15. वही, मेरी श्रेष्ठ व्यंगय रचनाएँ, पृष्ठ 145
16. वही, नया गाँवनामा, पृष्ठ 154
17. वही, पृष्ठ 29
18. वही, पृष्ठ 59, 60
19. वही, आमरास्ता नहीं है, पृष्ठ 203
20. वही, जगत तपोवन से कियो, पृष्ठ 73
21. वही, पृष्ठ 73
22. वही मनबोध मास्टर की डायरी, पृष्ठ 107
23. वही, पृष्ठ 94
24. वही, आम रास्ता नहीं, पृष्ठ 56
25. वही, आम रामस्ता नहीं, पृष्ठ 56

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 45-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पारंपरिक लोक संगीत और संस्कृति का संबंध

Jitendra Saini

Assistant Professor, Department of Education, Institute of Advanced Studies in Education,
(Deemed to be University) Sardarshahar, Rajasthan

भूमिका :–

लोक संगीत किसी भी समाज की आत्मा होता है, जो उसकी संस्कृति, परंपराओं और जीवनशैली को दर्शाने के साथ–साथ उसे एक विशिष्ट पहचान भी प्रदान करता है। यह केवल सुरों और धुनों का संगम नहीं, बल्कि एक जीवंत विरासत है जो पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती रहती है। इसके माध्यम से समाज अपने इतिहास, लोक कथाओं, धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक मूल्यों को संरक्षित और संप्रेषित करता है। लोक संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह समाज की सामूहिक चेतना और उसकी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को अभिव्यक्त करने का एक प्रभावी माध्यम भी है। यह ग्रामीण जीवन की सादगी, किसानों और श्रमिकों की मेहनत, प्रकृति के प्रति प्रेम, और धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों को अपनी धुनों में समेटे रहता है। पारंपरिक लोकगीत अक्सर जीवन की वास्तविकता को सरल शब्दों और मधुर धुनों में पिरोकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे आमजन आसानी से उनसे जुड़ाव महसूस करते हैं। लोक संगीत की विशेषता यह है कि यह एक विशिष्ट समुदाय या क्षेत्र की भाषा, वेशभूषा, और सामाजिक रीति–रिवाजों को भी उजागर करता है। विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीत, जैसे विवाह के मंगल गीत, फसल कटाई के समय के गीत, और त्योहारों पर गाए जाने वाले भक्ति गीत, समाज के सांस्कृतिक ताने–बाने को मजबूत करते हैं। यह संगीत पीढ़ियों के अनुभव और भावनाओं को संजोकर रखता है और उन्हें आगे बढ़ाने का काम करता है। आज के बदलते समय में लोक संगीत की यह अनमोल परंपरा धीरे–धीरे विलुप्ति की ओर बढ़ रही है, क्योंकि आधुनिक संगीत शैलियों ने लोगों के सुनने के तरीके को प्रभावित किया है। लेकिन यदि इसे संरक्षित और प्रचारित किया जाए, तो यह न केवल हमारी सांस्कृतिक जड़ों को सहेज सकता है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को अपनी परंपराओं और मूल्यों से जोड़े रखने का एक सशक्त माध्यम भी बन सकता है। लोक संगीत हमारे अतीत की स्मृतियों को जीवंत बनाए रखने और समाज में सामूहिक एकता को प्रोत्साहित करने का कार्य करता है, जिससे यह केवल ध्वनि का एक रूप नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति का एक अमूल्य दस्तावेज बन जाता है।

लोक संगीत का अर्थ :–

लोक संगीत किसी समाज की संस्कृति, परंपराओं और जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा होता है, जो पीढ़ियों से मौखिक रूप से प्रसारित होता आ रहा है। यह संगीत किसी विशेष क्षेत्र, समुदाय, या जाति की

मान्यताओं और सामाजिक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है। लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये आम जनता द्वारा सहज रूप से गाए और सुने जाते हैं, जिसमें औपचारिक संगीत शिक्षा की अनिवार्यता नहीं होती। लोक संगीत स्वाभाविक रूप से स्थानीय भाषा, बोली और भावनाओं से जुड़ा होता है, जिससे यह सीधे जनमानस की संवेदनाओं को छूता है। यह विभिन्न अवसरों जैसे – त्योहारों, विवाह, कृषि कार्य, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक आयोजनों में गाया जाता है। इसकी सरलता, सहजता और लोकधुनों में गहराई से जुड़े भाव इसे अद्वितीय बनाते हैं। लोक संगीत की धुनें और बोल किसी भी समाज के ऐतिहासिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक ताने–बाने को प्रतिबिंबित करते हैं। यह न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि समाज की कहानियों, वीरता की गाथाओं, प्रेम, भक्ति, और जीवन संघर्षों को भी व्यक्त करता है। यही कारण है कि लोक संगीत को किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान और विरासत का संरक्षक माना जाता है।

लोक संगीत और संस्कृति का गहरा संबंध –

1. ऐतिहासिक परंपराओं का संरक्षण –

लोक संगीत किसी भी समाज की ऐतिहासिक धरोहर को सहेजने और उसे अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इसमें प्राचीन गाथाएँ, वीरों की कहानियाँ, सामाजिक संघर्ष, और ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन होता है, जो समय के साथ मौखिक रूप से प्रसारित होते रहते हैं। यह संगीत केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह समाज की सामूहिक स्मृतियों को संरक्षित करने में भी सहायक होता है। विभिन्न क्षेत्रों में लोकगीतों के माध्यम से ऐतिहासिक परंपराओं को जीवंत बनाए रखा गया है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में 'पाबूजी का लोकगीत' न केवल एक वीर योद्धा की कहानी कहता है, बल्कि उस युग की सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाजों और मान्यताओं को भी प्रस्तुत करता है। इसी तरह, पंजाब में गाए जाने वाले वीर रस से भरपूर लोकगीतों में सिख योद्धाओं की वीरता और बलिदान का चित्रण मिलता है। वहीं, छत्तीसगढ़ की 'पंडवानी' गायन परंपरा महाभारत की कथाओं को लोक शैली में प्रस्तुत करती है, जिससे यह धार्मिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण बन जाती है। लोक संगीत का यह रूप समाज की स्मृतियों को सहेजने और उन्हें जनमानस तक पहुँचाने का कार्य करता है। यह संगीत न केवल इतिहास की घटनाओं को जीवंत बनाए रखता है, बल्कि समाज को अपनी जड़ों से जोड़े रखने और सांस्कृतिक गर्व की भावना विकसित करने में भी सहायक होता है।

2. सामाजिक और धार्मिक परंपराएँ –

लोक संगीत समाज की धार्मिक और सामाजिक परंपराओं का अभिन्न अंग है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों की आस्थाओं और संस्कारों से जुड़ा रहता है। यह संगीत न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि यह विभिन्न अनु ठानों और जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में एक अनिवार्य भूमिका निभाता है। लोक गीतों के माध्यम से समाज अपनी मान्यताओं, परंपराओं और रीति–रिवाजों को संरक्षित और व्यक्त करता है। विवाह, जन्म, त्योहार, कृषि कार्य और धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान लोकगीतों का विशेश महत्त्व होता है। उदाहरण के लिए, विवाह समारोहों में गाए जाने वाले 'बन्ना–बन्नी' गीत न केवल उत्सव का माहौल बनाते हैं, बल्कि दूल्हा–दुल्हन के शुभ भविष्य की कामना भी व्यक्त करते हैं। होली के अवसर पर गाए जाने वाले 'फाग' गीत रंगों के इस त्योहार की उमंग और उल्लास को दर्शाते हैं। इसी तरह, वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले 'कजरी' और 'सावन' गीत महिलाओं

की भावनाओं और ऋतु परिवर्तन की खूबसूरती को संगीत के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इसके अलावा, धार्मिक अनुष्ठानों में भक्ति लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, जैसे कन्हैया के जन्म के समय गाए जाने वाले कृष्ण भजन, देवी जागरण के दौरान प्रस्तुत किए जाने वाले शक्ति गीत, और गुरबानी, जो सिख परंपरा में आध्यात्मिक शांति और मार्गदर्शन का कार्य करती है। लोक संगीत की यह परंपरा समाज को एकता के सूत्र में बाँधती है और सांस्कृतिक धरोहर को जीवंत बनाए रखती है। यह गीत न केवल समुदाय की पहचान को सहेजते हैं, बल्कि लोगों को अपनी जड़ों से जोड़ने का भी कार्य करते हैं।

3. क्षेत्रीय पहचान और विविधता –

भारत का लोक संगीत इसकी सांस्कृतिक विविधता और समृद्ध परंपराओं का सजीव प्रतिबिंब है। प्रत्येक क्षेत्र की लोक धुनें वहाँ की भाषा, बोली, पारंपरिक पहनावे, खानपान और सामाजिक जीवनशैली से प्रभावित होती हैं। यह लोक संगीत न केवल लोगों की भावनाओं और जीवन के अनुभवों को दर्शाता है, बल्कि यह क्षेत्रीय पहचान को भी सुदृढ़ करता है। भारत के विभिन्न हिस्सों में लोक संगीत की विशिष्ट शैलियाँ देखने को मिलती हैं। राजस्थान में 'गोरबंद' और 'मांड' लोकगीत वहाँ की मरुस्थलीय संस्कृति, वीरता और प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। बंगाल में 'बाउल संगीत' सूफी और भक्ति परंपरा से प्रेरित होकर आध्यात्मिकता और सादगी का संदेश देता है। महाराष्ट्र में 'लावणी' अपनी तेज लय, भावपूर्ण अभिव्यक्ति और नृत्य शैली के लिए प्रसिद्ध है, जो लोक जीवन की ऊर्जा और उत्साह को दर्शाता है। वहीं, बिहार और उत्तर प्रदेश में 'बिरहा' और 'जट–जटिन' जैसे लोकगीत सामाजिक जीवन, प्रेम और संघर्ष की कहानियों को प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा, पंजाब का 'गिद्धा और भांगड़ा', गुजरात का 'गरबा', असम का 'बीहू संगीत', और कश्मीर का 'रौफ' लोक संगीत की क्षेत्रीय विविधता को और भी समृद्ध बनाते हैं। ये लोकगीत न केवल लोगों के मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि वे समाज की सांस्कृतिक धरोहर को भी सहेजते हैं। इस तरह, भारतीय लोक संगीत केवल धुनों का संकलन नहीं, बल्कि एक विरासत है, जो विभिन्न समुदायों की पहचान और परंपराओं को आगे बढ़ाने का कार्य करता है। यह संगीत लोगों को उनकी जड़ों से जोड़े रखता है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता और सद्भाव को बढ़ावा देता है।

4. जीवनशैली और लोक संस्कृति का प्रतिबिंब –

लोक संगीत समाज की दैनिक जीवनशैली और सांस्कृतिक मूल्यों का जीवंत चित्रण करता है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समुदाय की आशाओं, संघर्षों, प्रेम, भक्ति और वीरता को भी व्यक्त करता है। लोकगीतों में श्रमिकों, किसानों, नाविकों, योद्धाओं और साधारण जनजीवन की सच्ची झलक मिलती है। इन गीतों के माध्यम से किसी भी क्षेत्र की परंपराएँ, रीति–रिवाज और सामाजिक व्यवस्थाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती रहती हैं। कृषि प्रधान भारत में किसान और श्रमिक वर्ग के लिए लोक संगीत विशेष महत्त्व रखता है। महाराष्ट्र में गाए जाने वाले 'हलगी' गीत खेतों में कार्य करते समय गाए जाते हैं, जो श्रमिकों की थकान मिटाने और उनके कार्य में ऊर्जा भरने का कार्य करते हैं। इसी तरह, पश्चिम बंगाल के 'भटियाली' गीत नाविकों द्वारा गाए जाते हैं, जो जलयात्रा के दौरान उनकी भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करते हैं। वीरता और साहस को दर्शाने वाले 'आल्हा' गीत, उत्तर भारत में विशेष रूप से बुंदेलखंड क्षेत्र में प्रचलित हैं, जो योद्धाओं के पराक्रम और युद्ध गाथाओं को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इसके अलावा, राजस्थान के 'पड़' और 'गोरबंद' गीत रेगिस्तानी जीवन की कठिनाइयों और रोमांच को प्रस्तुत करते हैं, जबकि असम के 'बीहू' गीत वहाँ के कृषकों

की उत्सवधर्मिता और हर्षोल्लास को दर्शाते हैं। लोक संगीत न केवल सामाजिक कार्यों और परंपराओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, बल्कि यह समुदाय की सामूहिक स्मृतियों और उनकी जीवनशैली का एक अनमोल दस्तावेज भी है। इस प्रकार, लोक गीतों के माध्यम से किसी भी समाज की संस्कृति, सामाजिक संरचना, आर्थिक गतिविधियाँ और परंपराएँ स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। यह संगीत केवल अतीत की स्मृतियों को सहेजने का कार्य नहीं करता, बल्कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को उनकी विरासत से जोड़ने का भी एक सशक्त माध्यम है।

5. नैतिक और शिक्षाप्रद मूल्य –

लोक संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को नैतिकता और जीवन मूल्यों की शिक्षा देने का एक प्रभावी माध्यम भी है। यह संगीत पारंपरिक लोक कथाओं, धार्मिक गाथाओं और सामाजिक घटनाओं के माध्यम से लोगों को सही और गलत का बोध कराता है। लोकगीतों में प्रेम, करुणा, सद्भाव, साहस, भाईचारा और मानवीय मूल्यों का सुंदर समावेश होता है, जिससे ये समाज को प्रेरित करने का कार्य करते हैं। लोकगीतों के माध्यम से कई सामाजिक संदेश दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ गीत पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते हैं, जिनमें वृक्षारोपण, नदियों की पवित्रता और प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना झलकती है। स्त्री–पुरुष समानता को बढ़ावा देने वाले लोकगीत महिलाओं के अधिकारों और उनके सम्मान की बात करते हैं, जिससे समाज में समानता और जागरूकता का संचार होता है। प्रेम और भाईचारे पर आधारित लोकगीत सामाजिक सद्भाव को मजबूत करते हैं और विभिन्न समुदायों को एकजुट करने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, लोक संगीत धार्मिक और नैतिक शिक्षाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्रोत रहा है। भक्ति लोकगीतों में ईश्वर भक्ति, सत्य, अहिंसा और धर्म का महत्त्व बताया जाता है। कई लोकगीतों में माता–पिता और बुजुर्गों के सम्मान, ईमानदारी, परिश्रम, और दया जैसे गुणों की सीख दी जाती है, जो समाज में नैतिक आदर्शों को बनाए रखने में सहायक होते हैं। इस प्रकार, लोक संगीत केवल धुनों और बोलों का संगम नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक धरोहर है, जो समाज को नैतिक शिक्षा देकर उसे सही दिशा में मार्गदर्शित करता है। यह पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम भी है।

लोक संगीत के संरक्षण और प्रोत्साहन के उपाय –

1. लोक संगीत को स्कूल और विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना चाहिए –

लोक संगीत हमारी सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसे संरक्षित और प्रोत्साहित करने के लिए इसे औपचारिक शिक्षा प्रणाली में शामिल किया जाना चाहिए। यदि स्कूल और विश्वविद्यालयों में लोक संगीत को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए, तो नई पीढ़ी इसे न केवल सीखेगी, बल्कि इसकी गहराई और महत्त्व को भी समझ सकेगी। शिक्षण संस्थानों में लोक संगीत की कक्षाएँ आयोजित करने से छात्र अपनी क्षेत्रीय और राष्ट्रीय संगीत परंपराओं से अवगत हो सकेंगे। यह न केवल कला और संस्कृति के प्रति रुचि को बढ़ाएगा, बल्कि छात्रों को उनकी जड़ों से भी जोड़ेगा। इसके अलावा, लोक संगीत को संगीत विषय की एक अनिवार्य इकाई के रूप में शामिल किया जा सकता है, ताकि युवा संगीतकारों को इसकी तकनीक और शैली का विधिवत प्रशिक्षण मिल सके। लोक संगीत पर कार्यशालाओं, व्याख्यानों और प्रदर्शनों का आयोजन करके छात्रों को इसकी महत्ता से परिचित कराया जा सकता है। यदि शिक्षा प्रणाली लोक संगीत को प्रोत्साहित करेगी, तो इसका प्रभाव समाज

में व्यापक रूप से देखने को मिलेगा और यह संगीत शैली नए जीवन के साथ आगे बढ़ सकेगी।

2. कलाकारों को मंच प्रदान करने के लिए संगीत महोत्सवों और सांस्कृतिक आयोजनों को बढ़ावा देना चाहिए –

लोक संगीत के कलाकारों को उचित मंच उपलब्ध कराना बेहद आवश्यक है, ताकि उनकी कला को पहचान मिल सके और उनकी प्रतिभा को सही दिशा में विकसित किया जा सके। इसके लिए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर संगीत महोत्सवों, सांस्कृतिक आयोजनों और लोकगीत प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाना चाहिए। त्योहारों, सरकारी आयोजनों, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में लोक कलाकारों को आमंत्रित करके उनके प्रदर्शन को प्रोत्साहित किया जा सकता है। साथ ही, विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं और सरकारी निकायों को लोक संगीत को बढ़ावा देने के लिए विशेष योजनाएँ बनानी चाहिए, ताकि यह केवल ग्रामीण या पारंपरिक समाज तक सीमित न रहे, बल्कि इसे शहरी क्षेत्रों और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी पहचाना जाए। इसके अतिरिक्त, टेलीविजन, रेडियो और सार्वजनिक मंचों पर लोक संगीत कार्यक्रमों का प्रसारण करके इसे अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। बड़े शहरों में आयोजित होने वाले संगीत महोत्सवों और कॉन्सर्ट्स में लोक कलाकारों को स्थान देकर उनके लिए नए अवसरों का सृजन किया जा सकता है।

3. डिजिटल प्लेटफार्मों पर लोक संगीत को प्रचारित करना चाहिए –

आज के डिजिटल युग में लोक संगीत को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए यूट्यूब, स्पॉटिफाई, गाना, एप्पल म्यूजिक और अन्य स्ट्रीमिंग प्लेटफार्मों पर इसका प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए। लोक कलाकारों के लिए ऑनलाइन माध्यमों का उपयोग करके उनकी प्रतिभा को वैश्विक स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और टिकटॉक पर लोक संगीत के वीडियो, लाइव परफॉर्मेंस और वर्चुअल कॉन्सर्ट आयोजित किए जा सकते हैं, जिससे युवा पीढ़ी भी इससे जुड़ सके। डिजिटल प्लेटफार्मों पर लोक संगीत की प्लेलिस्ट बनाकर इसे सुगमता से उपलब्ध कराया जा सकता है, ताकि लोग इसे आसानी से सुन सकें और इसे अपनी संगीत सूची में शामिल कर सकें। इसके अलावा, ऑनलाइन संगीत अकादमियों और वेबिनार के माध्यम से लोक संगीत की शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता है, जिससे नए कलाकारों को सीखने और अपने हुनर को निखारने का अवसर मिलेगा। यदि लोक संगीत को डिजिटल प्लेटफार्मों पर सही ढंग से प्रचारित किया जाए, तो यह न केवल स्थानीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी लोकप्रिय हो सकता है।

4. सरकार और सांस्कृतिक संगठनों को लोक कलाकारों को आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहिए –

लोक कलाकारों की आजीविका सुनिश्चित करने और उनकी कला को संरक्षित करने के लिए सरकार और सांस्कृतिक संगठनों को उन्हें आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहिए। कई लोक कलाकार पारंपरिक संगीत को जीवित रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, और यदि उन्हें वित्तीय सहायता मिले तो वे अपनी कला को और अधिक निखार सकते हैं। सरकार को लोक कलाकारों के लिए विशेष अनुदान, छात्रवृत्ति और वित्तीय सहायता योजनाएँ बनानी चाहिए, जिससे वे बिना आर्थिक संकट के अपनी कला को आगे बढ़ा सकें। इसके अलावा, लोक संगीत को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के तहत कलाकारों को स्वास्थ्य बीमा, पेंशन और अन्य सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। सांस्कृतिक संगठनों और गैर–सरकारी संस्थाओं को भी लोक कलाकारों के विकास में योगदान देना चाहिए। लोक संगीत को प्रोत्साहित करने के लिए निजी कंपनियों और उद्योगपतियों

को भी आगे आकर सीएसआर (कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी) पहल के तहत लोक संगीत कार्यक्रमों को प्रायोजित करना चाहिए। इससे न केवल कलाकारों को वित्तीय स्थिरता मिलेगी, बल्कि लोक संगीत को भी नया जीवन मिलेगा।

निष्कर्ष :– लोक संगीत किसी भी समाज और संस्कृति का मूल आधार होता है, जो न केवल उसकी पहचान को संरक्षित करता है, बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी उसकी परंपराओं और मूल्यों को भी आगे बढ़ाता है। यह संगीत हमें हमारी जड़ों से जोड़ता है और जीवन के विभिन्न पहलुओं–प्रकृति, प्रेम, संघर्ष, वीरता, भक्ति और लोककथाओं को सहजता से अभिव्यक्त करता है। इसके माध्यम से समाज की विविधता को संरक्षित किया जाता है, जिससे हर क्षेत्र की विशिष्टता उभरकर सामने आती है। यदि हम लोक संगीत की इस विरासत को संजोकर रखें, तो हमारी सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रह सकेगी और आने वाली पीढ़ियाँ अपनी परंपराओं से परिचित हो सकेंगी। आधुनिक समय में, जब वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण पारंपरिक कलाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं, तब लोक संगीत को सहेजना और उसका प्रचार–प्रसार करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसके संरक्षण के लिए इसे शैक्षणिक पाठ्यक्रम में शामिल करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बढ़ावा देना और डिजिटल प्लेटफार्मों पर इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करना जरूरी है। लोक संगीत केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक एकता और सामाजिक समरसता का भी प्रतीक है। यदि इसे उचित प्रोत्साहन और समर्थन मिले, तो यह वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट पहचान बना सकता है। विभिन्न देशों और संस्कृतियों में भारतीय लोक संगीत की धुनों को पसंद किया जाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी अपील सीमाओं से परे भी है। इसलिए, लोक संगीत को बढ़ावा देकर न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित किया जा सकता है, बल्कि इसे वैश्विक पहचान भी दिलाई जा सकती है। जब हम अपनी परंपराओं को सम्मान देते हैं और उन्हें अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं, तो हम अपनी सांस्कृतिक समृद्धि को बनाए रखने में योगदान देते हैं।

सन्दर्भ सूची :–

1. सिंह, रामेश्वर, भारतीय लोक संगीत : इतिहास और परंपरा, नई दिल्लीः साहित्य भवन, 2010. 45–67
2. शर्मा, सविता, लोक संस्कृति और संगीत, जयपुरः राजस्थानी ग्रंथागार, 2012. 102–118
3. गुप्ता, अनिल कुमार, भारत के लोकगीत और उनकी सांस्कृतिक विरासत, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2015. 89–105
4. वर्मा, मनीशा, लोक संगीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन, लखनऊ : नवल किशोर प्रेस, 2013. 56–78
5. दास, सुरेश चंद्र, भारतीय लोक संगीत की परंपराएँ, कोलकाता : ग्रंथालय, 2011. 34–50
6. कुमार, अजय, लोक संगीत और समाज, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 2014. 67–83
7. त्रिपाठी, राधेश्याम, भारत की लोक सांस्कृतिक धरोहर, भोपाल : मप्र हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2016. 120–138
8. जोशी, नीलम, राजस्थान का लोक संगीत, जयपुर : राजस्थान साहित्य अकादमी, 2017. 45–62
9. मिश्रा, प्रवीण, उत्तर भारत के लोकगीत, इलाहाबाद : हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2018. 78–95
10. पांडेय, सुनील, लोक संगीत और भारतीय समाज, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2019. 102–119
11. चौधरी, रेखा. पश्चिम बंगाल का बाउल संगीत, कोलकाता : आनंद पब्लिशर्स, 2015. 88–104
12. सक्सेना, दीपक, मध्य प्रदेश की पंडवानी परंपरा, भोपाल : मप्र कला परिषद, 2013. 55–72
13. अग्रवाल, कविता, उत्तर प्रदेश के रसिया गीत, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 2014. 90–108
14. कौशिक, रजनीश, हरियाणा का लोक संगीत, चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 2016. 66–84
15. पटेल, संगीता, गुजरात के गरबा और डांडिया, अहमदाबादः गुजरात विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2017. 110–128

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 51-57

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीनता एवं लालित्यबोध के परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की लेखनी

डॉ. बैजू के

सहायक आचार्य, सरकारी लॉ कॉलेज एर्णाकुलम, केरल –६८२०११

सारांश :-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रकाण्ड विद्वानों में से एक माने जाते हैं। हिंदी साहित्य जगत में द्विवेदी जी ने निबंध, उपन्यास व आलोचना विधा में कई अनुपम कृतियों का सृजन किया हैं। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे जन–चेतना की दृष्टि से साहित्येतिहास के शोधकर्ता एवं व्याख्याता, विचारक, उपन्यासकार, ललित निबन्धकार, सम्पादक तथा एक बहुअधीत एवं बहुश्रुत आचार्य के रूप में मान्य है। द्विवेदीजी ने लेखन यधपि शुक्लजी के जीवन–काल में ही प्रारम्भ कर दिया था।

बीज शब्द :- समकालीनता, इतिहास लेखन, निबंध कला, आलोचना दृष्टि, लालित्य बोध, रहस्यबोध, सौंदर्यशास्त्रीय नजरिया, बुद्धितत्व और भावतत्व।

प्रस्तावना :-

हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के प्रख्यात पंडित एवं भावी पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक के रूप में जाने जाते हैं। क्योंकि बचपन से ही उनके गहन साहित्य एवं धार्मिक अध्ययन एवं अथक प्रयासों ने उन्हें कभी गिरने ही नहीं दिया और न ही कभी ठहरने का अवसर दिया। इन सभी कारणों से उन्हें यह भली–भाँति अहसास हो गया था कि बाहर कुछ भी नहीं है जो कुछ भी है वह केवल हमारे अंदर ही है। अपने सारे जीवन में उन्होंने विभिन्न विधाओं में अनेक रचनाएँ की और उन सभी में केवल वही उतारा जो उन्हें अंदर से मिलता चला गया। भावार्थ यह कि उनके साहित्य को यदि ध्यानरत्त अवलोकन किया जाए तो यही पायेंगे कि वह केवल लालित्य बोध से ही सराबोर है।

शुक्लजी के देहान्त उपरान्त हिन्दी–साहित्य की भूमिका (१९४०) के प्रकाशन के साथ द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को व्यापक स्वीकृति मिली थी। उन्होंने 'हिन्दी–साहित्य की भूमिका' में शुक्लजी की कई साहित्येतिहास सम्बन्धी धारणाओं से मतभेद प्रकट किये। शुक्ल जी और द्विवेदी जी दोनों शुरू में ही जनसमुदाय की बाते करते है, लेकिन इतिहास–लेखन की पध्दति में अन्तर हैं। शुक्लजी यद्यपि साहित्य को जनता की चित्तवृति का प्रतिबिम्ब मानते हैं। किन्तु इतिहास लिखते समय उन्होंने साहित्य का स्वरूप का अध्ययन शिक्षित जनता की प्रवृतियों को ध्यान में रखकर किया हैं। जबकि द्विवेदी जी आदिकालीन साहित्य का अध्ययन

कथानक–रूढ़ियों और काव्य–रूढ़ियों के द्वारा करना उचित समझते हैं।

अतः द्विवेदी जी ने मुख्यतः चार बातों पर बल दिया :–

१) हिन्दी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य से सम्बन्ध करके देखा जाये।

२) हिन्दी–साहित्य के माध्यम से व्यक्त चिन्ताधारा को भारतीय चिन्ता के स्वाभाविक विकास के रूप में स्वीकार किया जाये।

३) हिन्दी–साहित्य को ठीक से समझने के लिए मात्र हिन्दी ग्रंथों पर निर्भर न रहकर जैन और बौध्य, अपभ्रंश साहित्य, कश्मीर के शैवों तथा दक्षिण और पूर्व के तांत्रिकों का साहित्य, नाथ योगियों का साहित्य, वैष्णव आगम, पुराण, निबन्ध–ग्रंथ तथा लौकिक कथा साहित्य यह सब कुछ देखा–परखा जाये।

४) साहित्य के इतिहास को जनचेतना के इतिहास के रूप में व्याख्यायित किया जाये।

एक वर्ष बाद (१६४१ ई.) में द्विवेदी जी की परम प्रसिद्ध पुस्तक 'कबीर' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के माध्यम से द्विवेदी जी का समीक्षक रूप उभर कर सामने आया।

कबीर के पंक्तियाँ :–

''अंखड़ियाँ झाई परी पन्थ निहारी निहारी,
जीभड़ियाँ छाला पड्या नाम पुकारि पुकारि।''

शुक्ल जी के अनुसार यह जिज्ञासा सच्ची रहस्य भावना का आधार है। कबीरदास ने अपने भाव जिस अज्ञात प्रियतम को निर्वेदित किए हैं, वह मानव–चेतना द्वारा संकेतित हैं। शुक्ल जी कबीर में सहृदयता तो कही पाते ही नहीं, प्रशंसा भी करते हैं तो यह कहकर कि कबीर की उक्तियों में कही–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार हैं। पं. रामचन्द्र शुक्ल का विचार था कि कबीर मूर्ति पूजा का खण्डन 'मुसलमानी' जोश के साथ करते थे। द्विवेदी जी का मानना हैं कि – कबीर की जाति, निर्गुण साधकों की परम्परा, इस्लाम का उन पर प्रभाव, उनकी योगपरक उलटवासियों की व्याख्या, बाह्माचार का खण्डन आदि यह सब कबीर ने पूर्ववर्ती साधकों से ग्रहण किया था। जाति–भेद और ऊंच–नीच तथा बाह्म कर्मकाण्ड पर प्रहार करने की इस देश में बहुत पुरानी परम्परा हैं। इसलिए कबीर ने जीवन काशी में बिताया और मृत्यु के समय मगहर में जाकर अपने शरीर का त्याग किया, शायद वे इस प्रवाद और अन्धविश्वास को तोड़ने के लिए ही अन्तकाल में मगहर गए होंगें। यह बात द्विवेदीजी ने समझाई कि कवि की रचना उसके व्यक्तित्व से और उसका व्यक्तित्व अपने देशकाल की उपज होता है तो निश्चित हैं कि प्रत्येक रचना पर अपने विशिष्ट काल की विशेता की छाप रहती हैं और उसे देश, काल एवं परिवेश से अलग करके नहीं परखा जा सकता। यानी कालिदास एक खास जाति और खास काल में ही हो सकते थे। एस्किमों जाति के बच्चे को चाहे जितनी भी संस्कृत रटा दीजिए वह कालिदास नहीं बन सकता। अतरू उनका विचार है कि – 'किसी रचना का सम्पूर्ण आनन्द पाने के लिए रचियता के साथ हमारा घनिष्ठ परिचय और सहानुभूति मनुष्यता के नाते भी आवश्यक है।'

इसके बाद उनका हिन्दी–साहित्य का आदिकाल (१६५२) हिन्दी के आरम्भिक सहित्य सम्बन्धी उलझनों का समाधान प्रस्तुत करने वाला इतिहास ग्रंथ हैं। शुक्ल जी का विचार था कि भक्ति की भावना हिन्दी–भाषी क्षेत्र में मुसलमानों से पराजय के कारण पैदा हुई। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी–सी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की

ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था। लेकिन भक्ति–पूर्व धर्म साधनाओं का विश्लेषण करने वाले द्विवेदी जी ने देखा कि यदी मुसलमान न आए होते तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज हैं। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के उद्‌भव–काल के पूर्व जाकर उसकी प्रवृतियों और उनके स्वाभाविक विकास को देखा है। उनका मत है कि हिन्दी साहित्य निराशा और पराजय मनोवृति का साहित्य नहीं है। इस क्षेत्र की जातीय चिन्ताधारा का स्वाभाविक विकास हमें साहित्य में मिलता हैं।

निबंध हिन्दी गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण एवं विचार प्रधान विघा है। संस्कृत आचार्यों ने गद्य को कवियों की कसौटी मानते हुए कहा है, ''गद्यं कविनां निकषं वदन्ति''। स्पष्ट है कि गद्यकार के समक्ष एक चुनौती भरा साहित्यिक कर्म होता है जिसमें उसे कल्पना और भावनाओं के संयमित रखना होता है ताकि उसकी रचना शैली तर्क बुद्धि से वंचित न हो सके। यूँ तो निबंध किसी भी विषय पर हो सकता है, यथा वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक घटनाओं पर लेकिन प्रस्तुत शोध आलेख में लालित्य बोध के निकष पर आचार्य द्विवेदी के निबंधों पर विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। हिन्दी में निबंध लेखन का क्रम भारतेन्दु काल से ही अग्रसर है। 'किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक निबंध के साथ ललित विशेषण का प्रचलन नहीं हुआ था फिर भी उस समय के निबंधों में ललित निबंधों की प्रारंभिक विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। द्विवेदी युग में आचार्य शुक्ल, बालमुकन्द गुप्त, अध्यापक पूर्ण सिंह इत्यादि ऐसे निबंधकार हुए जिनका निबंध विशुद्ध भाव प्रधान है। इनके निबंधों को ललित की कोटि में रखा जा सकता है।' उस समय उन सभी निबंधों में भाव पक्ष की अपेक्षा बुद्धि पक्ष की ही प्रधानता थी इसलिए वह सभी निबंध लालित्य की श्रेणी में शामिल नहीं किये जा सकते। हाँ, द्विवेदी युग में आकर छुट–पुट निबंध इस संबंध में अवश्य लिखे गये। भारतेन्दु ने स्वयं अनेक प्रकार के ललित सामाजिक आदि निबंध लिखे हैं।

द्विवेदी काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. विद्या निवास मिश्र, अज्ञेय तथा कुबेरनाथ राय आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। इन सभी निबंधकारों ने विचार प्रधान, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भाव–प्रधान, व्यंग्य–प्रधान तथा लालित्य बोध निबंध लिखे हैं। हिन्दी में ललित निबंधों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सभी निबंध लालित्य बोध से ओत–प्रोत हैं। एक बात यहाँ कहना वाँछनीय हो जाता है कि मानवीय प्रवृति का एक यह गुण है कि जिस व्यक्ति की जैसी प्रवृति होती है वह अपने आसपास का वातावरणय उससे मिलने वाले लोगों इत्यादि को भी वह उसी प्रवृति के अनुसार ही देखता है अथवा देखना चाहता है। द्विवेदी जी ने जितने भी निबंध लिखे, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लालित्यबोध उनकी विशेषता रही है। अपनी किताब 'कालिदास की लालित्य योजना' भी यही विशेषता साफ झलकती हुई नजर आती है। इस किताब में उन्होंने कालीदास जी पर काफी कार्य किया।

अपनी लालित्यबोध की प्रवृति के अनुसार ही उन्होंने कालिदास के कार्यों में भी यही कुछ निकालने का प्रयास किया। उनके कार्यों के संबंध में वह कहते हैं कि 'इस देश की संस्कृति में अनेक प्रकार के वैचित्र्य आये। काव्य में, चित्र में, मूर्ति में, वास्तु में, नृत्य–गीत–वादित्र में और नाटक आदि चाक्षुष कलाओं से नवीन बातों का समावेश होता गया। और एक प्रकार की प्रच्छन्न गतिशीलता का प्रादुर्भाव हुआ। इस बहु–विचित्र जनमंडली के सर्वोत्तम को रूप–ललित रूप–देना बड़ी मर्मभेदनी दृष्टि और अर्थग्राहिका शक्ति का परिचायक है। कालिदास में यह शक्ति पूरी मात्रा में थी। इसीलिए वे सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना को ललित रूप देने में कृतकार्य हुए।'' भावार्थ यह

कि कालिदास ने जो भी भारतीय समाज अथवा सभ्यता के संबंध में कार्य किये हों, किन्तु द्विवेदी जी ने उनके बारे में अपने विचारों के माध्यम से उनमें लालित्यबोध को प्रस्तुत करने का भरपूर प्रयास किया है। उन्होंने कालिदास जी पर कार्य करते हुए उसमें से भी अपनी मनोवृत्ति के अनुसार ही लालितस्य भाव को अभिव्यक्त किया है।

उल्लेखनीय यह है कि ललित निबंध में विचार प्रधानता, चिन्तन, निष्कर्षण, ज्ञानवर्धन तथा निर्दोष–बंधत्व का गुण होता है। इससे व्यक्ति निष्ठता, भावमयता, हार्दिक व मधुर सज्जा के तत्व भी विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार हृदय एवं बुद्धि दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करने के कारण ललित निबंध लोकप्रिय एवं सशक्त गद्य विद्या के रूप में प्रतिष्ठित है। ललित निबंध में विचारों के साथ भावों की सुगंध होती है, गद्य काव्य जैसा माधुर्य होता है, कविता जैसा आकर्षण होता है, कहानी जैसा रस होता है, उपन्यास जैसी सजीवता होती है और रेखाचित्र जैसी चित्रात्मकता तथा नाटक जैसी गूढ़ता व गतिशीलता होती है। इस प्रकार ललित निबंध गद्य एवं पद्य के मध्य के सेतु है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंधों के वस्तु विधान तथा शिल्प विधान में लालित्य बोध को उच्च सीमा पर दर्शाया है। उनके निबंध विशेष प्रकार के माधुर्य, सहजता, कोमलता और रमणीयता को उजागर करते हैं। 'अशोक के फूल' नामक अपने निबंध संग्रह के पहले ही निबंध 'अशोक के फूल' में वह कहते हैं कि 'अशोक में फिर फूल आ गये हैं। इन छोटे–छोटे लाल–लाल पुष्पों के मनोहर स्तबकों में कैसा मोहन भाव है! वहुत सोच–समझकर कन्दर्प–देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तुणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक ही है।' निबंध के इस गद्यांश में द्विवेदी जी का भावपक्ष इतना प्रबल नजर आ रहा है कि माधुर्य, सहजता, कोमलता इत्यादि शब्द भी फीके नजर आ रहे हैं। फूल अपने गुणों के कारण जो स्थान प्राप्त कर चुके हैं। यह प्रदर्शित करना ही द्विवेदी जी का लालित्य है।

अपने विचार और वितर्क नामक निबंध संग्रह में भी वह इसी प्रकार के लालित्यबोध को वर्णित करते हैं कि 'ग्यारह वर्षों तक लगातार रवीन्द्रनाथ जैसे महापुरुष के संसर्ग में रहना सौभाग्य की बात ही कही जाएगी। मुझे यह सौभाग्य मिला था। जानकर और अनजान में मैंने उसे कितना लिया है इसका कोई हिसाब नहीं है, किन्तु जब सोचकर कोई संस्मरण लिखने का अवसर आता है तो कुछ भी स्पष्ट याद नहीं आता। केवल एक ही बात रह–रहकर मस्तिष्क को छाप लेती है–उनका सहज प्रसन्न मुखमण्डल, स्नेहमेदुर बड़ी–बड़ी आँखें और अनन्य–साधारण मंद हास्य।' बुद्धितत्व के साथ–साथ भावनाओं की कोमलता के अहसास को चित्रण करना द्विवेदी जी के लालित्यबोध अभिव्यंजना का एक सशक्त हिस्सा है। इस निबंध संग्रह के अंतर्गत 'वसंत आ गया है' नामक निबंध के दौरान उनका बहुत सा समय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जी के साथ प्राकृतिक वातावरण में व्यतीत हुआ। द्विवेदी जी ने अपनी मर्मानुभूति गुरुदेव के साथ–साथ प्रकृति के रहस्योद्घाटन करके भी प्रस्तुत की है जो मानवीय जीवन एवं प्रकृति के आपसी संबंधों पर दृष्टिपात करती नजर आती है। इसी संबंध में रामनिवास अपनी आस्था और आदर्श नामक निबंध संग्रह में कहते हैं कि 'सौन्दर्यशास्त्र का उद्देश्य सौन्दर्य तथा उसकी अनुभूति की व्याख्या करना है। साधारणतः सौन्दर्यशास्त्र के विद्वान जिस सौन्दर्य का विवेचन करते हैं, वह साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं का सौन्दर्य होता है। प्रकृति और मानव जीवन के सौन्दर्य की व्याख्या किये बिना कलात्मक सौन्दर्य का विवेचन करना संभव नहीं है।'

अंग्रेजी भाषा के 'एस्थेटिकनैस' शब्द के समांतर हम सौन्दर्यात्मकता शब्द को ले लेते हैं। किन्तु कला की

दृष्टि से इसमें अंतर पाया जाता है। 'वस्तुत कलागत सौन्दर्य को 'लालित्य' नाम देकर उसे नैसर्गिक सौन्दर्य से भिन्न स्थापित करने का प्रयास किया गया जो उचित कहा जा सकता है। यह मान्यता स्वीकृत की जा सकती है कि मनुष्य के चित्त में जो ललित भाव होते हैं, उनकी अभिव्यक्ति–सौन्दर्य का नाम ही लालित्य है।' विगत भी वर्णित रहा था कि लालित्य और सौन्दर्य शब्द एक दूसरे के पर्याय के रूप में परिलक्षित होते हैं। लेकिन कलाओं के विभाजन के संदर्भ में ललित शब्द का प्रयोग किया गया है। सौन्दर्य को नैसर्गिक माना गया है लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य निर्मित सौन्दर्य को 'लालित्य' की संज्ञा प्रदान की हैं। किन्तु फिर भी इनमें मूलभूत अंतर द्विवेदी ही स्वयं ही अपनी किताब 'कालिदास की लालित्य योजना' में स्पष्ट करते हैं कि 'एक प्राकृतिक सौन्दर्य है, दूसरा मानवीय इच्छाशक्ति का विलास है। दूसरा सौन्दर्य प्रथम द्वारा चालित होता हैय पर है मनुष्य के अन्तरतर की अपार इच्छा को रूप देने का प्रयास। एक केवल अनुभूति देकर विरत हो जाता है, दूसरा अनुभूति द्वारा अभिव्यक्त होकर अनुभूति–परम्परा का निर्माण करता है। भाषा में, धर्माचरण में, काव्य में, मूर्ति में, चित्र में बाधा अभिव्यक्त मानवीय शक्ति का अनुपम विलास ही वह सौन्दर्य है, जिसकी हम मीमांसा करने का संकल्प लेकर चले हैं। अन्य किसी उचित शब्द के अभाव में हम उसे लालित्य कहेंगे। लालित्य अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न, किन्तु उसके समान्तर चलने वाला मानवीय रचित सौन्दर्य।' यह तो सत्य है कि एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति के कारण व्यक्ति उसी से संबंधित कार्य करने अथवा भावाभिव्यक्ति हेतु बाध्य रहता है।

'विचार और विर्तक' नामक अपने निबंध संग्रह में भी हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लालित्य बोध को बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। अपने निबंध 'मधुर रस की साधना में वह कहते हैं कि 'नन्ददास ने ठीक ही कहा है कि यह भगवान की छाया है जो माया के दर्पण में प्रतिफलित हुई है–

या जग की परछॉह री माया दर्पण बीच।

अब अगर दर्पण की परछॉह की जॉच की जाए तो स्पष्ट ही मालूम होगा कि इसमें छाया उल्टी पड़ती है। जो चीज ऊपर होती है, वह नीचे पड़ जाती है और जो नीचे होती है, वह ऊपर दीखती है। अपने निबंधों में इस प्रकार का प्रदर्शन करना बुद्धि तत्व के विलक्षण स्वरूप का दृष्टिपात है जो केवल द्विवेदी जी ने ही कर दिखाया और इसमें भी अलौकिक रूप को मानवीय समझ के अनुसार प्रस्तुत करना ही द्विवेदी जी का लालित्य रूप का प्रदर्शन है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्राकृतिक सौन्दर्य को सौन्दर्य ही कहते हैं तथा मानव द्वारा रचित सौन्दर्य को 'लालित्य' की संज्ञा देते हैं। वह स्वयं ही कहते हैं 'सत्पुरुषो के हृदय में निवास करने वाली ललिता ही वह शक्ति है जो मनुष्य को नयी रचनाओं के लिए प्रेरित करती है। इसलिए यह परम्परागृहीत अर्थ मानव–रचित सौन्दर्य को 'लालित्य' कहना उचित ही है।' अपने कल्पलता नामक निबंध संग्रह में भी द्विवेदी जी कहते हैं कि 'अगर आदमी अपने शरीर की, मन की, वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियो के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले'। भावार्थ यह कि मनुष्य केवल बाहरी दिखावा अथवा व्यर्थ के कार्यों में अपने बुद्धि, बल और समय की बर्बादी पर अमादा रहता है। यदि वह अपने अंदर स्वयं की तलाश करे तो उसे अपनी असीम शक्तियों की पहचान हो सकती है जो कहीं न कहीं उसके साथ–साथ मानवीय कल्याण में भी सहायी रहेगी। उसी को पहचानने एवं उससे कार्य करवाने की शक्ति को ही द्विवेदी जी ने लालित्य की श्रेणी में शामिल किया है।

उनके समग्र साहित्य में माँ भगवती ललिता की चर्चा अनेक स्थलों पर आई है, जिससे स्पष्ट है कि माँ भगवती ललिता के आधार पर ही वे 'लालित्य' नामकरण करते हैं। इस संबंध में डॉ. कविता रानी अपनी किताब 'हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में लालित्य योजना' में कहती हैं कि 'आचार्य द्विवेदी ने शक्त आगमों में वर्णित माँ भगवती ललिता के स्वरूप और कलाओं से उसके सवध को स्वीकार करके उनके प्रमुख गुण 'लालित्य' को ही मानव रचित सौन्दर्य का नाम देने का एक प्रमुख कारण प्रस्तुत किया है। इससे पाश्चात्य सौन्दर्य–शास्त्र को भारतीय परिपेक्ष्य और परम्परा में देखने का अवसर मिल सकता है।' उन्होंने सभी कलाओं के एक शास्त्र के लिए 'लालित्य' शब्द का प्रयोग किया है। वे मानते हैं कि सभी कलाओं की आत्मा एक ही है। इस आत्मा को उन्होंने भारतीय दृष्टि से देखा और परखा है। नवीन रचना की इस प्रेरणा का अर्थ ग्रहण करने के कारण ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लालित्य शब्द को उपयुक्त माना है। उन्होंने चौतन्य की सीमा हीन अभिव्यक्ति की व्याकुलता को लालित्य का मूल उत्स माना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लालित्य सिद्धांत समष्टि मानव के आधार पर स्थित है, जिसमें लोक तत्व और मानवता का समावेश हो जाता है। लालित्य तत्व का दूसरा कोण वेदना, भाषा और छन्द का तथा तीसरा कोण मिथक का है। इस प्रकार मानव, मिथक, वेदना, भाषा, छन्द, सम्प्रेषणीयता का धर्म आदि मिलकर लालित्य सिद्वांत का निर्माण करते हैं। इनके मूल में आस्था का प्रश्न है, जिसे उन्होंने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यहाँ इच्छा छन्द है, ज्ञान वेदना (रस आदि) है और क्रिया मिथक (लोक तत्व) है। इस संबंध में डॉ. कविता रानी अपनी किताब 'हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में लालित्य योजना' में कहती हैं कि ''आचार्य द्विवेदी का आस्थावादी दृष्टिकोण लालित्य सिद्धांत का केन्द्र बिन्दु है, इसलिए वे इच्छा, ज्ञान और क्रिया के द्वारा रस, छन्द और लोक तत्व की समीक्षा करते हैं। वे अपने सिद्वांत का ताना–बाना मानव के चारों ओर ही बुनते हैं। वे साहित्य का प्रयोजन समष्टि मानव कल्याण ही मानते हैं, इसलिए उनके समग्र साहित्य में समष्टि–मानव–चिन्तन का प्रयास परिलक्षित होता है। उनके निबंध, उपन्यास, समीक्षा, साहित्येतिहास तथा अन्य विधाओं में मानव कल्याण की कामना है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय' व्याप्त है जिसका संधान वे अपने साहित्य के माध्यम से करते हैं। इसी व्याकुलता को वे अपने लालित्य सिद्धांत का अंग बनाते हैं।'

मनुष्य को साहित्य को केन्द्र में प्रतिष्ठित करने के कारण ही आचार्य द्विवेदी आलोचना की समग्र और सन्तुलित दृष्टि के निर्माण पर बल देते हैं। वे साहित्य को सामाजिक सन्दर्भों में देखने और परखने का आग्रह करते हैं। सामाजिकता का यह आग्रह ही उन्हें 'मानवतावादी' बनाता है। वे जीवन्त मनुष्य और उसके समूह समाज को मनुष्य की सारी साधनाओं का केन्द्र और लक्ष्य मानते हैं। साहित्य भी उन्हीं रेखाओं में से एक है जो संस्कृति का चित्र उभारते हैं। वे कहते है– साहित्य को महान् बनाने के मूल में साहित्यकार का महान् संकल्प होता है। 'कबीर' उन्हें इसलिए प्रिय हैं उन्होंने सारे भेद–प्रभेदों से ऊपर उठकर मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। सूरदास ने राग–चेतना और कालिदास ने अपनी अनुपम नाटय् कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मनुष्य और प्रकृति के साथ एकसूत्रता का विधान करती हैं और विश्वव्यापी भाव–चेतना के साथ व्यक्ति की भाव–चेतना का तादात्मय स्थापित करती है। द्विवेदी जी इसी विकास–यात्रा को मनुष्य की श्जय यात्राश कहते हैं। यही कारण हैं कि द्विवेदी जी की गणना हिन्दी के प्रगतिशील आलोचकों में की जा सकती हैं।

सारांश :-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में लालित्य बोध एक तरह से मानव रचित सौन्दर्य है। लालित्य के बिना किसी भी ललित कला की रचना नहीं की जा सकती। यही सही है। कि सभी ललित कलाओं के माध्यम भिन्न हैं। इसलिए नादात्मक सौन्दर्य बोध के लिए संगीत, रेखात्मक सौन्दर्य बोध के लिए चित्र, अकारात्मक सौन्दर्य बोध के लिए स्थापत्य गद्यात्मक सौन्दर्य बोध के लिए नृत्य, रुपात्मक सौन्दर्य बोध के लिए मूर्ति और वाणी के सौन्दर्य बोध के लिए काव्य कला का आविर्भाव हुआ। माध्यमों की इस भिन्नता में सौन्दर्य एक्य है। किसी एक कला एक कलाकार अथवा साहित्यकार का मूल्यांकन भी लालित्य सिद्धांत के आधार पर ही सम्भव है।द्विवेदी आधुनिक युग के एक प्रकाण्ड विद्वान, साहित्यकार एवं आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में लिखा है।

इनमें निबंध, उपन्यास, आलोचना, संस्मरण आदि प्रमुख विधाएँ हैं, जिन पर उन्होंने उत्कृष्ट कृतियाँ का प्रणयन किया है। लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की सर्वाधिक ख्याति एक निबंधकार, उपन्यासकार एवं आलोचक के रूप में भारतीय साहित्य में विद्यमान है। उनके निबंधों में 'लालित्य बोध' की परख और पहचान के लिए सबसे पहले यह जानना अति आवश्यक है कि लालित्य बोध से क्या आशय है। 'लालित्य' शब्द को रमणीयता के संदर्भ में लिया जाता है। किन्तु यह शब्द संस्कृत के 'लालित्य' का ही एक रूप है। ''लालित्य' की व्युत्पत्ति 'लालितस्य भावः' की गई है।' वस्तुतः यह शब्द मंजुलता, चारुता, अभिरामता इत्यादि का ही वाचक है।

संदर्भ :-

1. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार – रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, २०१४, पृष्ठ– ८५,८६
2. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार – रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, २०१४, पृष्ठ– ८६
3. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१४३
4. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१४६
5. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१४३
6. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१४४
7. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार – रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, २०१४, पृष्ठ– ८७
8. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१४६
9. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१५१
10. हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार – रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, २०१४, पृष्ठ– ६६
11. हिन्दी आलोचना– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, २०१८, पृष्ठ–१५२
12. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कालिदास की लालित्य योजना, नैवेध निकेतन, वाराणसी, 1965, पृष्ठ–02
13. द्विवेदी हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1958, पृष्ठ–01
14. द्विवेदी हजारी प्रसाद, विचार और विर्तक, सुषमा–साहित्य–मन्दिर, जवाहरगंज, जबलपुर, पृष्ठ–149

shyjukas@gmail.com, 9656398746

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 58-62

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृषि विकास में निजीकरण के प्रभाव

प्रोफेसर (डा.) के.एल. मीना

राजेश पायलेट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालसोट जिला–दौसा (राज.)

1980 के दशक के मध्य से दुनिया भर की सरकारों द्वारा ''निजीकरण'' के नाम पर विविध कृषि विस्तार वित्तपोषण और वितरण व्यवस्थाएं शुरू की गई हैं। यह अध्याय इन कार्रवाइयों और उनके निहितार्थों की समीक्षा करता है।

जब कृषि विस्तार पर चर्चा की जाती है, तो निजीकरण का उपयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है – निजी क्षेत्र की भागीदारी को शुरू करने या बढ़ाने के लिए, जो जरूरी नहीं कि निर्दिष्ट राज्य के स्वामित्व वाली संपत्तियों को निजी क्षेत्र में स्थानांतरित कर दे। वास्तव में, कृषि विस्तार में सुधार के लिए विभिन्न लागत–वसूली, व्यावसायीकरण और अन्य तथाकथित निजीकरण विकल्पों को अपनाया गया है।

यह अध्याय पाँच मुख्य खण्डों में व्यवस्थित है। पहला उन प्रमुख ताकतों का परिचय देता है जो ''सरकारों को नई विस्तार निधि और वितरण व्यवस्था, या जिसे आम तौर पर ''निजीकरण'' के रूप में जाना जाता है,''[1] को तैयार करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं। दूसरा खंड परिवर्तन के लिए परिणामी रणनीतियों पर चर्चा करता है। तीसरा, वित्त पोषण और कृषि विस्तार प्रदान करने में संस्थागत परिवर्तनों के प्रमुख निजीकरण प्रकारों पर चर्चा और वर्गीकरण करता है। चौथा खंड विस्तार के संस्थागत परिवर्तनों के अंतर्निहित औचित्य पर विचार करता है, और पांचवां इन परिवर्तनों के निहितार्थ की जांच करता है। अध्याय इस सिफारिश के साथ समाप्त होता है कि देश दूसरों द्वारा किए गए संस्थागत परिवर्तनों की जांच करें, फिर अपनी स्थिति का विश्लेषण करें और उस आधार पर, कृषि विस्तार सेवाओं के भविष्य के विकास के लिए दिशानिर्देश विकसित करें।

परिवर्तन के लिए बल :–

सार्वजनिक कृषि विस्तार का विकास 1980 के दशक में एक विश्वव्यापी मोड़ पर पहुंचा, जिसने विकसित और विकासशील दोनों दुनिया में सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित विस्तार के विकास में एक प्रमुख चरण के अंत का प्रतिनिधित्व किया। ''कृषि विस्तार को तेजी से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण या ग्रामीण विकास की एक या अन्य (स्पष्ट रूप से) विभेदित गतिविधियों के रूप में परिभाषित किया गया है। कई स्थितियों में, प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, जिसे अब तक सार्वजनिक क्षेत्र प्रणालियों का दायरा माना जाता था, पर पुनर्विचार किया गया है।''[2] इस तरह के बदलाव सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के वितरण के लिए प्रतिमानों पर फिर से ध्यान केंद्रित करने का सुझाव देते हैं।

वैश्विक प्रतियोगिता :–

टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौते के अनुसमर्थन का परिणाम यह है कि देशों को भोजन और फाइबर के उत्पादन और विपणन में तुलनात्मक कृषि लाभ को अधिक सक्रिय रूप से विकसित करना होगा। अधिक रूढ़िवादी राजनीतिक विचारधाराओं और मुक्त–बाजार अर्थशास्त्र की ओर बदलाव के साथ, वैश्विक विकास कृषि में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सुझाव देते हैं। हालाँकि देश अपने तुलनात्मक लाभों पर अधिक ध्यान केंद्रित करेंगे, फिर भी, कई मामलों में, वे अभी भी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा चिंताओं और घोर ग्रामीण गरीबी का सामना कर रहे हैं।

सार्वजनिक विस्तार का पुनर्मूल्यांकन :–

जबकि ''आधुनिक'' विस्तार उन्नीसवीं सदी से अस्तित्व में है, दुनिया भर में कृषि विस्तार एक औपचारिक संस्था के रूप में काफी युवा है, अधिकांश देशों ने 1950 और 1960 के दशक से ऐसी सेवाएं शुरू की हैं। यहां तक कि उच्च आय वाले देशों में जहां विस्तार पहले की तारीखों में शुरू हुआ था, ''द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजकोषीय प्रतिबद्धता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बैकलॉग जमा हो गया था। 115 देशों (स्वानसन, फार्नर, और बहल, 1990) में 207 कृषि विस्तार संगठनों के एफएओ सर्वेक्षण में, इनमें से 50 प्रतिशत संगठन पिछले दो दशकों में स्थापित या पुनर्गठित किए गए थे।''[3]

परिवर्तन के लिए रणनीतियाँ :–

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, अपनी लागत और दक्षता की कमी के लिए आलोचना का सामना कर रहा है और समानता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों को आगे नहीं बढ़ाने के लिए बदलाव की कई संभावनाओं का सामना कर रहा है।

समायोजन के दौर से गुजर रही विभिन्न विस्तार प्रणालियों में कृषि सलाहकार सेवाओं के वित्तपोषण में अधिक लचीलेपन और कई साझेदारों की प्रवृत्ति देखी गई है।

1. करदाता द्वारा केवल उन प्रकार की सेवाओं के लिए सार्वजनिक वित्तपोषण जो आम जनता के लिए सीधे चिंता का विषय हैं।
2. प्रत्यक्ष रिटर्न के साथ कुछ व्यक्तिगत सेवाओं के लिए प्रत्यक्ष शुल्क (बेहतर आय के रूप में)
3. कुछ सेवाओं के लिए सार्वजनिक और निजी पेशेवर एसोसिएशन के योगदान के बीच मिश्रित फंडिंग साझा की जाती है, जहां लाभ साझा किए जाते हैं।

व्यावसायीकरण :–

न्यूजीलैंड के कृषि और मत्स्य पालन मंत्रालय (एमएएफ) की कृषि सलाहकार सेवा अब उपयोगकर्ता–भुगतान, वाणिज्यिक मानदंड (हर्कस, 1991) के तहत संचालित होती है। एमएएफ सलाहकार सेवा का नाम बदलकर एमएएफ कंसल्टिंग कर दिया गया। कृषि न्यूजीलैंड, (अस्थायी रूप से) एक सार्वजनिक एजेंसी बनी हुई है, हालांकि इसके कर्मचारियों ने कई सार्वजनिक रोजगार लाभ छोड़ दिए हैं और अब उन्हें परामर्श कार्य के लिए कमीशन मिलता है। एजेंसी अपने वार्षिक बजट के लिए किसानों से प्राप्त परामर्श शुल्क और सरकार को नीतिगत जानकारी और ग्रामीण खुफिया जानकारी की आपूर्ति के लिए सरकार के साथ संविदात्मक व्यवस्था पर निर्भर करती है।[2]

लागत वसूली :–

अन्य सार्वजनिक विस्तार प्रणालियाँ लागत–वसूली दृष्टिकोण की ओर बढ़ गई हैं। मेक्सिको ने उत्तर पश्चिम क्षेत्र में बड़े पैमाने के किसानों के बीच एक शुल्क–आधारित प्रणाली विकसित की है और दक्षिण मध्य क्षेत्र में छोटे पैमाने के किसानों के बीच एक समान व्यवस्था के विकास की योजना बनाई है (विल्सन, 1991)। इंग्लैंड और वेल्स में कृषि विकास और सलाहकार सेवा (एडीएएस), सैद्धांतिक रूप से ''व्यावसायिक'' है, आंशिक लागत–वसूली के आधार पर संचालित होती है। ''एडीएएस के ग्राहक सलाह के लिए शुल्क का भुगतान करते हैं जो पहले निःशुल्क था। 1987 में शुरू की गई लागत वसूली की यह प्रक्रिया एजेंसी को 1993–94 तक वाणिज्यिक शुल्क से अपनी आय का 50 प्रतिशत प्राप्त करने के लिए निर्देशित की गई।''[5]

क्रमिक ''निजीकरण'' :–

ग्रामीण उद्योग संगठनों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए अधिक जिम्मेदारी लेने के लिए, विक्टोरियन सरकार ने भविष्य के विस्तार कार्यक्रमों की डिलीवरी के लिए ''आउटसोर्सिंग'' का प्रस्ताव दिया है। आउटसोर्सिंग का मतलब है कि सरकारी विस्तार एजेंसी विस्तार परियोजना कर्मचारियों का एक मुख्य पूल बनाए रखेगी और निजी क्षेत्र की पेशेवर सेवाओं को उन कौशलों के साथ ''खरीदेगी'' जिन्हें एजेंसी बनाए रखना अनावश्यक समझती है। ग्रामीण उद्योग और संघीय सरकार द्वारा वित्त पोषित विशिष्ट परियोजनाओं में सेवाएं प्रदान करने में सहायता के लिए कृषि सलाहकारों और अनुबंध कर्मचारियों को नियुक्त किया जाएगा। ऐसी परियोजनाएं व्यापक और उद्योगव्यापी होने की संभावना है और व्यक्तिगत कृषि परिस्थितियों के अनुरूप नहीं हैं।

अन्य व्यवस्थाएँ :–

कुछ देशों ने कभी भी सार्वजनिक क्षेत्र की कृषि विस्तार सेवाओं का विकास नहीं किया है, कृषि विस्तार का कार्य निजी क्षेत्र के कमोडिटी उद्यमों या उद्योग एजेंसियों पर छोड़ दिया है, हालांकि अक्सर कुछ सरकारी वित्तीय सब्सिडी के साथ। फ्रांस में, जबकि कृषि और निजी क्षेत्र की कंपनियां विस्तार सेवाएं प्रदान करती हैं, पूर्व को सार्वजनिक धन द्वारा वित्तीय रूप से पर्याप्त समर्थन दिया जाता है। ''न्यूजीलैंड में, कई वर्षों से डेयरी उद्योग को विस्तार सेवाएँ डेयरी बोर्ड परामर्श सेवा द्वारा प्रदान की जाती रही हैं, जिसका वित्तपोषण डेयरी उद्योग द्वारा किया जाता है।''[6]

वैकल्पिक वित्त पोषण और वितरण :–

विविध दिशा–निर्देश अपनाए गए हैं और भुगतान के कई साधन (सार्वजनिक और निजी) उभरे हैं क्योंकि सरकारों ने सार्वजनिक क्षेत्र की कृषि विस्तार सेवाओं के भुगतान और वितरण के लिए वैकल्पिक वित्तीय और वितरण व्यवस्था का विकल्प चुना है। विस्तार प्रावधान अक्सर बहु–संस्थागत होता है और ऐसे तरीकों से व्यवस्थित होता है जो जरूरी नहीं कि स्वतंत्र हों।

निजीकरण पर बहस :–

व्यापक निजीकरण बहस में दो विषय हैं : पहला, एक अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका और आकार पर ''राजनीतिक अर्थव्यवस्था'' विचार, जो इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि निजी बाजारों की विफलता है या नहीं और, दूसरे, सरकारी परिव्यय को कम करने की एक व्यक्त आवश्यकता। जबकि सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित विस्तार के कई पुनर्मूल्यांकनों ने दूसरे विषय को प्रतिबिंबित किया है, यह एक अर्थव्यवस्था में

सार्वजनिक बनाम निजी गतिविधि के औचित्य पर विचार करने लायक है।

विस्तार के संबंध में बहस :-

जबकि विस्तार से संबंधित अधिकांश सार्वजनिक नीति बहस सरकारी परिव्यय को कम करने के साधन के रूप में तथाकथित निजीकरण या व्यावसायीकरण पर केंद्रित है, अन्य पहलुओं पर विचार करने की आवश्यकता है। कृषि न्यूजीलैंड का व्यावसायीकरण अनुभव, हालांकि इसकी समस्याओं के बिना नहीं, व्यावसायीकरण के लिए कुछ तर्कों के उदाहरण प्रदान करता है। ऐसा माना जाता है कि ''व्यावसायीकरण का संपूर्ण उत्पादन–प्रसंस्करण–परिवहन–विपणन श्रृंखला में विस्तार कर्मचारियों की भागीदारी में ''फार्म गेट से परे'' जाने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।''[7] ग्राहक अभिविन्यास पर ध्यान केंद्रित करने और केवल गतिविधियों में संलग्न होने के बजाय परिणामों की पहचान करने और उत्पादन करने की चिंता में भी बदलाव आया है।

संस्थागत विचार :-

विभिन्न स्थितियों के लिए उपयुक्त संस्थागत व्यवस्थाओं की खोज सार्वजनिक सेवाओं के प्रतिस्थापन या पूरक के लिए निजी क्षेत्र के रचनात्मक उपयोग पर वर्तमान में चल रही बड़ी बहस को प्रतिबिंबित करती है। सार्वजनिक कार्यों को कैसे आयोजित किया जाना चाहिए, इस बहस में निजीकरण एक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

कुछ उदाहरणों में, केंद्र सरकार की नौकरशाही को अनुत्तरदायी और अक्षम के रूप में देखा जाता है, और जिम्मेदारी का प्रसार इस चिंता से उत्पन्न होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र का आकार कम किया जाना चाहिए। हालाँकि, अन्य मामलों में, सार्वजनिक क्षेत्र के आकार को कम करने पर कम और विभिन्न इकाइयों के बीच अधिकार साझा करने पर अधिक जोर दिया गया है। बढ़ते जटिल संस्थागत क्षेत्र में सरकार को क्या भूमिका निभानी चाहिए यह सवाल अपने आप में जटिल है और ऐसा नहीं है, जिसके लिए आवश्यक रूप से सरल उत्तर हैं।

संस्थागत निहितार्थ :-

नए विकास अधिक संस्थागत बहुलवाद को उजागर करते हैं। विस्तार, मोटे तौर पर व्याख्या की गई, अब अक्सर एक मिश्रित प्रणाली या ''जटिल'' है जहां सेवाएं निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती हैं। व्यापक संदर्भ जिसमें सार्वजनिक और निजी सेवाओं का मिश्रण संचालित होता है, ''सार्वजनिक क्षेत्र के लिए नई संभावित भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के साथ एक नई चुनौती प्रस्तुत करता है। इस अध्याय का एक प्रमुख आधार यह है कि नीति निर्माताओं को धन आवंटित करने की योजना बनाते समय या सार्वजनिक क्षेत्र के लिए वैकल्पिक वित्तपोषण व्यवस्था की तलाश करते समय संपूर्ण कृषि विस्तार परिसर पर विचार करना चाहिए।''[8]

निष्कर्ष :-

यह अध्याय यहां उल्लिखित विभिन्न ''निजीकरण'' व्यवस्थाओं पर विचार करने की सिफारिश के साथ समाप्त होता है, लेकिन साथ ही फंडिंग और वितरण व्यवस्था विकसित करने में इम्प्लांटेशन या फॉर्मूले के उपयोग पर नहीं, बल्कि व्यक्तिगत देश स्थितिजन्य विश्लेषण और स्वतंत्र राजनीतिक और तकनीकी निर्धारण के महत्व पर भी जोर देता है। कृषि विस्तार प्रदान करें।

संदर्भ :-

1. भारत में निजीकरण अवधारण्णा व स्वरूप – समाजशास्त्र, गुप्ता एवं शर्मा, साहित्य भवन, आगरा 2003
2. प्रो.योगेन्द्र सिंह भारत में आधुनिकी परिवर्तन– राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2001
3. विश्व कृषि एवं खाद्य की रिपोर्ट 1990, पृष्ठ 201
4. उपरोक्त, पृष्ठ 205
5. उपरोक्त, पृष्ठ 208
6. उपरोक्त, पृष्ठ 210
7. उपरोक्त, पृष्ठ 305
8. नीति आयोग की रिपोर्ट, 2016

Email Id : drklmeena1970@gmail.com

Contact No. +91 9413677604

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 63-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भावनात्मक बुद्धिमत्ता और शिक्षक शिक्षा

Surendra Kumar Pareek

Assistant Professor, Department of Education

Institute of Advanced Studies in Education (Deemed to be University), Sardarshahar, Rajasthan

प्रस्तावना :–

आधुनिक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता को एक महत्त्वपूर्ण कौशल के रूप में मान्यता मिली है। इसमें अपनी भावनाओं को समझना, प्रबंधित करना और नियंत्रित करना, साथ ही दूसरों की भावनाओं को पहचानना और प्रभावित करना शामिल है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में, भावनात्मक बुद्धिमत्ता प्रभावी शिक्षकों को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो सकारात्मक शिक्षण वातावरण को बढ़ावा दे सकते हैं और छात्रों के साथ गहरे स्तर पर जुड़ सकते हैं। मजबूत भावनात्मक बुद्धिमत्ता वाले शिक्षक ऐसी कक्षाएँ बना सकते हैं जो समावेशी, सहानुभूतिपूर्ण और सीखने के लिए अनुकूल हों, जहाँ छात्र मूल्यवान और समझे जाने वाले महसूस करें। यह कौशल न केवल शिक्षकों को विविध कक्षा की भावनात्मक जटिलताओं से निपटने में मदद करता है, बल्कि उन्हें व्यवहार संबंधी मुद्दों, सांस्कृतिक मतभेदों और विभिन्न सीखने की जरूरतों जैसी चुनौतियों को संयम और संवेदनशीलता के साथ संभालने में भी सक्षम बनाता है। इसके अलावा, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान शिक्षक छात्रों के लिए रोल मॉडल के रूप में काम करते हैं, जो सहानुभूति, लचीलापन और प्रभावी संचार के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं, जो महत्त्वपूर्ण जीवन कौशल हैं। जैसे–जैसे शैक्षिक परिदृश्य विकसित हो रहा है, समकालीन शिक्षण की सामाजिक और भावनात्मक मांगों को पूरा करने के लिए शिक्षकों को तैयार करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण में भावनात्मक बुद्धिमत्ता को एकीकृत करना आवश्यक हो गया है।

शिक्षण में भावनात्मक बुद्धिमत्ता का महत्व :

शिक्षण का अर्थ केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं है, यह एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें छात्रों, सहकर्मियों और व्यापक स्कूल समुदाय के साथ भावनात्मक बातचीत शामिल है। उच्च भावनात्मक बुद्धिमत्ता वाले शिक्षक कक्षा की चुनौतियों को संभालने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होते हैं, जैसे कि विघटनकारी व्यवहार का प्रबंधन करना या अपने छात्रों की विविध भावनात्मक आवश्यकताओं को संबोधित करना। छात्रों की भावनाओं को पहचानकर और उन पर प्रतिक्रिया देकर, वे संघर्षों को कम कर सकते हैं, आपसी सम्मान को बढ़ावा दे सकते हैं और कक्षा के भीतर विश्वास का निर्माण कर सकते हैं। जो शिक्षक भावनात्मक बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करते हैं, वे एक सकारात्मक कक्षा का माहौल बनाने में भी माहिर होते हैं जहाँ छात्र खुद को अभिव्यक्त करने, विचारों का पता लगाने और निर्णय के डर के बिना शैक्षणिक जोखिम लेने में सुरक्षित महसूस करते हैं।

इसके अलावा, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान शिक्षक माता–पिता और सहकर्मियों के साथ मजबूत, सहयोगात्मक संबंध बनाने में कुशल होते हैं, जो छात्रों के लिए एक एकजुट समर्थन नेटवर्क में योगदान देता है। वे अपनी भलाई को बनाए रखते हुए पेशे की मांगों, जैसे समय प्रबंधन और कार्यभार के दबाव को संतुलित करने में बेहतर हैं। ऐसा करने में, वे भावनात्मक लचीलेपन और अनुकूलनशीलता के लिए रोल मॉडल के रूप में काम करते हैं, छात्रों को अपने स्वयं के भावनात्मक परिदृश्यों को नेविगेट करना सिखाते हैं। अंततः, भावनाओं को समझने और प्रबंधित करने की क्षमता शिक्षकों को आत्मविश्वास प्रेरित करने, सीखने के लिए उत्साह पैदा करने और अपनेपन की भावना का पोषण करने में सक्षम बनाती है जो सभी शिक्षार्थियों के लिए शैक्षणिक और व्यक्तिगत विकास दोनों को बढ़ाती है।

भावनात्मक बुद्धिमत्ता के मूल तत्व :

भावनात्मक बुद्धिमत्ता के एक प्रमुख शोधकर्ता डैनियल गोलेमैन पांच मुख्य घटकों की पहचान करते हैं :–

स्व–जागरूकता (Self-awareness) :

किसी की भावनाओं को पहचानने और समझने में हमारे द्वारा अनुभव की जाने वाली भावनाओं के बारे में जागरूक होना, उनके कारणों की पहचान करना और यह स्वीकार करना शामिल है कि वे हमारे विचारों, व्यवहारों और दूसरों के साथ बातचीत को कैसे प्रभावित करते हैं। यह आत्म–जागरूकता व्यक्तियों को वास्तविक समय में अपनी भावनात्मक स्थिति की निगरानी करने की अनुमति देती है, जिससे उन्हें आवेग के बजाय स्पष्टता और जानबूझकर स्थितियों पर प्रतिक्रिया करने में मदद मिलती है। यह व्यक्तियों को उनके भावनात्मक विनियमन और संचार में सुधार के लिए भावनात्मक ट्रिगर, पैटर्न और क्षेत्रों पर विचार करने में सक्षम बनाकर व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देता है।

आत्म नियमन (Self-regulation) :

विभिन्न स्थितियों में उचित प्रतिक्रिया देने के लिए भावनाओं को नियंत्रित करने में किसी की भावनाओं को इस तरह से विनियमित करने की क्षमता शामिल होती है जो उस समय की मांगों के अनुरूप हो, यह सुनिश्चित करना कि प्रतिक्रियाएं मापी गई, रचनात्मक और प्रासंगिक रूप से उपयुक्त हों। यह कौशल व्यक्तियों को तनाव का प्रबंधन करने, दबाव में शांत रहने और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों पर अति प्रतिक्रिया करने से बचने में मदद करता है। इसमें भावनाओं को सकारात्मक कार्यों में बदलने की क्षमता भी शामिल है, जैसे किसी समस्या को हल करने के लिए निराशा को प्रेरणा के रूप में उपयोग करना या तनाव को कम करने के लिए संघर्ष के दौरान सहानुभूति व्यक्त करना। स्वस्थ संबंधों को बनाए रखने, प्रभावी संचार को बढ़ावा देने और भावनात्मक रूप से भरे वातावरण में भी अच्छे निर्णय लेने के लिए भावनात्मक विनियमन आवश्यक है।

अभिप्रेरणा (Motivation) :

लक्ष्यों को प्राप्त करने और दूसरों को प्रेरित करने के लिए भावनात्मक कारकों का उपयोग करने में प्रेरणा बढ़ाने, दृढ़ संकल्प को बढ़ावा देने और उद्देश्यों पर ध्यान बनाए रखने के लिए किसी की भावनाओं और समूह की भावनात्मक ऊर्जा का लाभ उठाना शामिल है। इसमें चुनौतियों पर काबू पाने और असफलताओं का सामना करने के लिए उत्साह, आशावाद और जुनून जैसी सकारात्मक भावनाओं का उपयोग करना शामिल है। इसमें दूसरों की भावनाओं को पहचानना, यह समझना कि उन्हें क्या प्रेरित और प्रोत्साहित करता है, और साझा उद्देश्य

और सहयोग की भावना पैदा करने के लिए उस जागरूकता का उपयोग करना शामिल है। भावनात्मक ऊर्जा को रणनीतिक कार्यों के साथ जोड़कर, व्यक्ति एक ऐसा वातावरण बना सकते हैं जो सामूहिक उपलब्धि, नवाचार और लचीलेपन को बढ़ावा देता है।

सहानुभूति (Empathy) :

दूसरों की भावनाओं को समझने और साझा करने में उनकी भावनाओं, दृष्टिकोणों और अनुभवों को सटीक रूप से समझने और व्याख्या करके सहानुभूति रखने की क्षमता शामिल है। इसके लिए सक्रिय रूप से सुनना, मौखिक और गैर–मौखिक संकेतों पर ध्यान देना और भावनात्मक स्तर पर दूसरों के साथ जुड़ने का वास्तविक प्रयास आवश्यक है। यह कौशल व्यक्तियों को दूसरों की भावनाओं को मान्य करने, करुणा दिखाने और जरूरत के समय सहायता प्रदान करने में सक्षम बनाता है। सहानुभूति मजबूत रिश्तों को बढ़ावा देती है, गलतफहमियाँ कम करती है और विश्वास और आपसी सम्मान की भावना को बढ़ावा देती है। विविध सेटिंग्स में, यह सांस्कृतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत मतभेदों को पाटने, अधिक समावेशी और सामंजस्यपूर्ण वातावरण बनाने में भी मदद करता है।

सामाजिक कौशल (Social skills) :

संबंध बनाना, संघर्षों का प्रबंधन करना और टीम वर्क को बढ़ावा देने में विश्वास, आपसी सम्मान और प्रभावी संचार पर आधारित सार्थक संबंध विकसित करना शामिल है, जो सहयोग और सामूहिक सफलता के लिए आवश्यक हैं। इसके लिए संवेदनशीलता के साथ पारस्परिक गतिशीलता को नेविगेट करने, असहमतियों को रचनात्मक रूप से संबोधित करने की क्षमता की आवश्यकता होती है, साथ ही यह सुनिश्चित करना कि सभी पक्ष सुने और महत्त्व महसूस करें। संघर्ष समाधान कौशल तनाव को कम करने, सामान्य आधार खोजने और चुनौतियों को विकास और समझ के अवसरों में बदलने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, टीम वर्क को बढ़ावा देने में एक ऐसा वातावरण बनाना शामिल है जहां व्यक्ति साझा लक्ष्यों की दिशा में अपनी अनूठी शक्तियों का योगदान करने, सहयोग, जवाबदेही और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित महसूस करते हैं। ये क्षमताएं व्यक्तिगत, व्यावसायिक और सामाजिक संदर्भों में सामंजस्यपूर्ण, उत्पादक संबंध विकसित करने के लिए मौलिक हैं। शिक्षकों के लिए, ये घटक महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, आत्म–जागरूकता शिक्षकों को उनके तनाव ट्रिगर की पहचान करने में मदद करती है, जबकि सहानुभूति उन्हें विविध पृष्ठभूमि के छात्रों से जुड़ने की अनुमति देती है।

शिक्षक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता :–

आधुनिक कक्षा की बहुमुखी माँगों के लिए शिक्षकों को तैयार करने के लिए शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों को अपने पाठ्यक्रम में भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकास को एकीकृत करना चाहिए। पारंपरिक शिक्षक प्रशिक्षण अक्सर शैक्षणिक कौशल और विषय विशेषज्ञता पर ध्यान केंद्रित करता है लेकिन शिक्षण के भावनात्मक पहलू को नजरअंदाज कर देता है, जो प्रभावी शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देने के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता प्रशिक्षण को शामिल करके, भविष्य के शिक्षक अपनी भावनाओं को प्रबंधित करने के लिए आवश्यक कौशल विकसित कर सकते हैं, जैसे स्व–नियमन और तनाव प्रबंधन, जो उन्हें दबाव में शांत और प्रभावी रहने में सक्षम बनाता है।

इसके अतिरिक्त, ईआई प्रशिक्षण शिक्षकों को सहानुभूति, सक्रिय श्रवण और सांस्कृतिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देकर छात्रों के साथ सार्थक संबंध बनाने के लिए तैयार करता है, जो शिक्षार्थियों की विविध भावनात्मक और सामाजिक आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह प्रशिक्षण शिक्षकों की सहकर्मियों के साथ सहयोग करने, अभिभावकों के साथ जुड़ने और स्कूल के सकारात्मक माहौल में योगदान करने की क्षमता को भी बढ़ाता है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता को प्राथमिकता देकर, शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम भविष्य के शिक्षकों को न केवल शैक्षणिक निर्देश देने के लिए सशक्त बनाते हैं, बल्कि समावेशी, सहायक स्थान भी बनाते हैं, जहाँ छात्र शैक्षणिक और भावनात्मक रूप से आगे बढ़ सकते हैं। इस तरह के एकीकरण से अंततः अधिक लचीले, अनुकूलनीय और प्रभावशाली शिक्षक तैयार होते हैं, जो उभरते शैक्षिक परिदृश्य की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं।

शिक्षक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता बढ़ाने की रणनीतियाँ :–

1. कार्यशालाएँ एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम :

शिक्षक शिक्षा संस्थान ईआई में सुधार के लिए रणनीतियों को सिखाने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन कर सकते हैं, जैसे कि माइंडफुलनेस, सक्रिय श्रवण और संघर्ष समाधान, भविष्य के शिक्षकों को उनकी आत्म–जागरूकता, भावनात्मक विनियमन और पारस्परिक कौशल को बढ़ाने के लिए व्यावहारिक उपकरण प्रदान करना। इन कार्यशालाओं में शिक्षकों को कक्षा में जटिल भावनात्मक गतिशीलता को समझने में मदद करने के लिए भूमिका निभाने वाले परिदृश्य, चिंतनशील अभ्यास और समूह चर्चा जैसी व्यावहारिक गतिविधियाँ शामिल हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसे कार्यक्रम वास्तविक जीवन के शिक्षण संदर्भों में इन रणनीतियों के अनुप्रयोग पर जोर दे सकते हैं, जिससे शिक्षकों को कक्षा संघर्ष, छात्र चिंता और सांस्कृतिक विविधता जैसी चुनौतियों को आत्मविश्वास और सहानुभूति के साथ संभालने में सक्षम बनाया जा सकता है। इन प्रथाओं को अपनी दैनिक दिनचर्या में शामिल करके, शिक्षक अपने पेशेवर विकास और भावनात्मक कल्याण को बढ़ावा देते हुए अधिक सामंजस्यपूर्ण शिक्षण वातावरण बना सकते हैं।

2. भूमिका निर्वहन :

अनुरूपित कक्षा परिदृश्य प्रशिक्षुओं को विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ प्रयोग करने और उनकी बातचीत से सीखने के लिए एक सुरक्षित स्थान प्रदान करके वास्तविक दुनिया की चुनौतियों के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का अभ्यास करने में मदद कर सकते हैं। ये परिदृश्य शिक्षक उम्मीदवारों को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने की अनुमति देते हैं कि कक्षा की गतिशीलता को कैसे प्रबंधित किया जाए, छात्रों के साथ कठिन परिस्थितियों को कैसे संभाला जाए और सकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देने के लिए रणनीति विकसित की जाए। अनुभवी फैसिलिटेटर्स से निर्देशित फीडबैक के माध्यम से, प्रशिक्षु अपनी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं पर विचार कर सकते हैं, अपने संचार कौशल को निखार सकते हैं और अधिक सहानुभूति और लचीलापन बना सकते हैं। यह अनुभवात्मक सीखने की प्रक्रिया न केवल उन्हें शिक्षण की भावनात्मक जटिलताओं के लिए तैयार करती है, बल्कि अपनी कक्षाओं में आने वाली अप्रत्याशित चुनौतियों से निपटने के लिए उनमें आत्मविश्वास भी पैदा करती है।

3. परामर्श कार्यक्रम :

शिक्षक उम्मीदवारों को अनुभवी शिक्षकों के साथ जोड़ना, जो उच्च भावनात्मक बुद्धिमत्ता का मॉडल पेश

करते हैं, प्रभावी शिक्षण प्रथाओं, संघर्ष समाधान और भावनात्मक प्रबंधन के वास्तविक दुनिया के उदाहरण प्रदान करके व्यावहारिक सीखने के अवसर प्रदान कर सकते हैं। ये सलाहकार मूल्यवान रोल मॉडल के रूप में कार्य करते हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि छात्रों के साथ मजबूत संबंध कैसे बनाएं, कक्षा के तनाव को कैसे प्रबंधित करें और पेशेवर सीमाओं को बनाए रखें। अवलोकन और सहयोग के माध्यम से, शिक्षक उम्मीदवार भावनात्मक बुद्धि की सूक्ष्मताओं में अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं, जटिल कक्षा की गतिशीलता को नेविगेट करना सीखते हैं, और छात्र जुड़ाव और सीखने पर उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के प्रभाव को समझते हैं। यह मार्गदर्शन संबंध न केवल नए शिक्षकों के व्यावहारिक कौशल को बढ़ाता है बल्कि उन्हें भावनात्मक बुद्धिमत्ता को अपने शिक्षण दर्शन में एकीकृत करने में भी मदद करता है।

4. चिन्तनशील अभ्यास :

शिक्षक उम्मीदवारों को चिंतनशील पत्रिकाएँ बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करना, कक्षा में उनके अनुभवों, भावनाओं और बातचीत को संसाधित करने के लिए एक संरचित स्थान प्रदान करके आत्म–जागरूकता और निरंतर भावनात्मक विकास को बढ़ावा देता है। यह अभ्यास उन्हें अपनी शिक्षण चुनौतियों का पता लगाने, सफलताओं का जश्न मनाने और उनके सामने आने वाली किसी भी भावनात्मक बाधा का सामना करने के लिए प्रोत्साहित करता है। चिंतनशील जर्नलिंग शिक्षकों को विभिन्न स्थितियों में उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का गंभीर रूप से विश्लेषण करने, पैटर्न की पहचान करने और भावनात्मक विनियमन के लिए रणनीति विकसित करने की अनुमति देती है। यह उनकी अपनी शिक्षण शैली और छात्रों पर इसके प्रभाव की गहरी समझ को भी बढ़ावा देता है, जिससे कक्षा प्रबंधन के प्रति अधिक सहानुभूति और अधिक संवेदनशील दृष्टिकोण पैदा होता है।

5. मूल्यांकन और पृष्ठपोषण :

ईआई दक्षताओं का आकलन करने और फीडबैक प्रदान करने के लिए उपकरणों को शामिल करने से यह सुनिश्चित होता है कि प्रशिक्षु ताकत वाले क्षेत्रों और आगे विकास की आवश्यकता वाले क्षेत्रों की पहचान करने में मदद करके उनकी प्रगति को समझते हैं। इन मूल्यांकनों में स्व–रिपोर्ट प्रश्नावली, सहकर्मी प्रतिक्रिया और कक्षा की बातचीत के अवलोकन शामिल हो सकते हैं। ऐसे उपकरण भावनात्मक जागरूकता, विनियमन और सामाजिक कौशल पर ठोस डेटा प्रदान करते हैं, जिससे शिक्षक उम्मीदवारों को समय के साथ अपने विकास को ट्रैक करने की अनुमति मिलती है। सलाहकारों या प्रशिक्षकों से रचनात्मक प्रतिक्रिया उन्हें अपनी भावनात्मक बुद्धिमत्ता में सुधार करने, ईआई और प्रभावी शिक्षण प्रथाओं के बीच संबंध को मजबूत करने के लिए विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित करने में मदद करती है।

शिक्षण में भावनात्मक बुद्धिमत्ता के लाभ :–

1. प्रभावशाली छात्र–परिणाम :

मजबूत ईआई वाले शिक्षक छात्रों को प्रेरित कर सकते हैं, कक्षा के संघर्षों को कम कर सकते हैं और विश्वास, सम्मान और सहानुभूति के माहौल को बढ़ावा देकर सहयोगात्मक शिक्षा को बढ़ावा दे सकते हैं। छात्रों के साथ भावनात्मक स्तर पर जुड़ने की उनकी क्षमता सकारात्मक संबंध बनाने में मदद करती है, जिससे छात्रों को मूल्यवान और समझा हुआ महसूस होता है। यह भावनात्मक संबंध छात्रों के बीच सक्रिय भागीदारी, जुड़ाव और अपनेपन की भावना को प्रोत्साहित करता है। संघर्षों को रचनात्मक ढंग से संबोधित करके, ये शिक्षक एक

सुरक्षित स्थान बनाते हैं जहां छात्र अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं और असहमति के माध्यम से शांति से काम कर सकते हैं, जिससे कक्षा में अधिक सामंजस्यपूर्ण माहौल बन सकता है। इसके अलावा, उनका सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण सहयोगात्मक शिक्षा का समर्थन करता है, जहां छात्र विचारों को साझा करने, एक साथ काम करने और एक दूसरे से सीखने में सहज महसूस करते हैं। ऐसी कक्षाओं में उच्च स्तर का सहयोग, कम प्रतिस्पर्धा और सामूहिक उपलब्धि पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाता है।

2. मजबूत शिक्षक–छात्र संबंध :

भावनात्मक रूप से बुद्धिमान शिक्षक सुलभ होते हैं और छात्रों को सक्रिय रूप से सुनकर और उनकी भावनाओं को मान्य करके खुद को अभिव्यक्त करने के लिए एक सुरक्षित स्थान बनाते हैं। वे प्रत्येक छात्र के विचारों, चिंताओं और अनुभवों में वास्तविक रुचि दिखाते हैं, निर्णय के डर के बिना खुले संचार को प्रोत्साहित करते हैं। यह पोषणकारी वातावरण छात्रों को व्यक्तिगत चुनौतियों पर चर्चा करने, प्रश्न पूछने और अपने दृष्टिकोण साझा करने में सहज महसूस करने की अनुमति देता है। सकारात्मक सुदृढीकरण और मार्गदर्शन प्रदान करने की शिक्षक की क्षमता छात्रों में आत्मविश्वास और आत्म–मूल्य की भावना को बढ़ावा देती है, जो उनके शैक्षणिक और भावनात्मक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार का सहायक कक्षा वातावरण बनाकर, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान शिक्षक छात्रों को जोखिम लेने, भेद्यता को अपनाने और अकादमिक और व्यक्तिगत रूप से बढ़ने के लिए सशक्त बनाते हैं।

3. तनाव प्रबंधन :

ईआई शिक्षकों को पेशे की भावनात्मक मांगों को प्रबंधित करने के लिए उपकरणों से लैस करता है, उन्हें अपने स्वयं के तनावों और भावनाओं को पहचानने और संबोधित करने में मदद करके बर्नआउट को रोकता है। बढ़ी हुई आत्म–जागरूकता और भावनात्मक विनियमन के माध्यम से, शिक्षक शिक्षण के दबाव, जैसे भारी कार्यभार, छात्र दुर्व्यवहार और सहकर्मियों या माता–पिता के साथ चुनौतीपूर्ण बातचीत से निपटने के लिए स्वस्थ मुकाबला तंत्र विकसित कर सकते हैं। अपनी भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करके, शिक्षक सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने और भावनात्मक थकावट को रोकने में बेहतर सक्षम होते हैं। यह उन्हें शिक्षण के प्रति अपने जुनून को बनाए रखने, असफलताओं का सामना करने में लचीला बने रहने और लंबे समय तक अपने छात्रों को प्रेरित और समर्थन देना जारी रखने में सक्षम बनाता है। इसके अतिरिक्त, भावनात्मक रूप से बुद्धिमान शिक्षक अपने पेशेवर नेटवर्क से समर्थन लेने की अधिक संभावना रखते हैं, जो अलगाव की भावनाओं को कम करता है और बर्नआउट को रोकने में मदद करता है।

4. सहयोगात्मक कार्य वातावरण :

अच्छे सामाजिक कौशल वाले शिक्षक सहकर्मियों के बीच प्रभावी टीम वर्क को बढ़ावा देकर, एक सहयोगी वातावरण बनाकर सकारात्मक स्कूल संस्कृति में योगदान करते हैं जहां साझा लक्ष्यों को महत्त्व दिया जाता है और सामूहिक सफलता को प्राथमिकता दी जाती है। खुलकर संवाद करने, सक्रिय रूप से सुनने और मजबूत संबंध बनाने की उनकी क्षमता विभिन्न संकाय सदस्यों के बीच दूरियों को पाटने में मदद करती है, जिससे एक एकजुट स्कूल समुदाय बनता है। ये शिक्षक अक्सर अपने स्कूलों में नेतृत्त्व की भूमिका निभाते हैं, नए कर्मचारियों को सलाह देते हैं, व्यावसायिक विकास के अवसरों का समन्वय करते हैं और स्कूल की पहल पर टीम वर्क की

सुविधा प्रदान करते हैं। उनका सकारात्मक प्रभाव आपसी सम्मान, साझा संसाधनों और निरंतर सीखने की संस्कृति को प्रोत्साहित करता है, जिससे शिक्षकों और छात्रों दोनों को लाभ होता है। सहयोग और सहयोग को बढ़ावा देकर, वे समग्र शैक्षिक अनुभव को बढ़ाते हैं और एक सहायक माहौल में योगदान करते हैं जो व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास दोनों को बढ़ावा देता है।

शिक्षक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता को एकीकृत करने की चुनौतियाँ :–

गैर–पारंपरिक शिक्षण विधियों का विरोध शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में भावनात्मक बुद्धिमत्ता प्रशिक्षण के एकीकरण में बाधा बन सकता है। कई शिक्षक पारंपरिक, सामग्री–केंद्रित दृष्टिकोण के आदी हैं जो पारस्परिक कौशल और भावनात्मक दक्षताओं पर विषय वस्तु विशेषज्ञता को प्राथमिकता देते हैं। यह अनिच्छा अज्ञात के डर में निहित हो सकती है – इस बारे में अनिश्चितता कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता प्रशिक्षण स्थापित शिक्षण प्रथाओं, कक्षा प्रबंधन रणनीतियों और समग्र छात्र परिणामों को कैसे प्रभावित करेगा। जो शिक्षक पारंपरिक तरीकों से सहज हैं, वे ईआई प्रशिक्षण को एक अतिरिक्त, बोझिल आवश्यकता के रूप में देख सकते हैं जो अधिक सीधे मापने योग्य शैक्षिक उद्देश्यों से अलग हो जाता है। इस प्रतिरोध पर काबू पाने के लिए शिक्षण प्रभावशीलता, छात्र जुड़ाव और स्कूल के माहौल को बढ़ाने में भावनात्मक बुद्धिमत्ता के ठोस लाभों को प्रदर्शित करना आवश्यक है, जिससे शिक्षक तैयारी के मुख्य घटक के रूप में इसके एकीकरण का मामला बनता है। इसके लाभों के बावजूद, शिक्षक शिक्षा में ईआई को एकीकृत करने में निम्नलिखित चुनौतियाँ आती हैं :–

1. शिक्षक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता के महत्व की जागरूकता का अभाव :

शिक्षकों के बीच ईआई के महत्त्व की सीमित समझ शिक्षक शिक्षा में इसके एकीकरण में एक महत्त्वपूर्ण बाधा उत्पन्न कर सकती है। कई शिक्षक और प्रशासक पूरी तरह से इस बात की सराहना नहीं कर सकते हैं कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता शिक्षण प्रभावशीलता, छात्र संबंधों और समग्र स्कूल माहौल को कैसे प्रभावित करती है। जागरूकता की यह कमी पारंपरिक शैक्षिक ढांचे के परिणामस्वरूप हो सकती है जो सामाजिक–भावनात्मक कौशल पर शैक्षणिक सामग्री पर जोर देती है। सकारात्मक सीखने के माहौल को बढ़ावा देने और छात्र परिणामों को बढ़ाने में भावनात्मक बुद्धिमत्ता की भूमिका की स्पष्ट समझ के बिना, ईआई–केंद्रित प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम को अपनाने के लिए न्यूनतम प्रेरणा हो सकती है। इस चुनौती पर काबू पाने के लिए लक्षित व्यावसायिक विकास, जागरूकता अभियान और ईआई के लाभों को प्रदर्शित करने वाले साक्ष्य–आधारित शोध की आवश्यकता है, जिससे शिक्षकों को एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण और सीखने के उपकरण के रूप में इसके मूल्य को पहचानने में मदद मिलेगी।

2. बदलते कार्यबल में विशिष्ट प्रशिक्षकों एवं संसाधनों का अभाव :

विशेष प्रशिक्षकों और संसाधनों की आवश्यकता तेजी से महत्त्वपूर्ण होती जा रही है क्योंकि उद्योग और संगठन तेजी से बदलती और जटिल दुनिया में प्रतिस्पर्धी बने रहना चाहते हैं। तकनीकी प्रगति, नौकरी की भूमिकाओं में बदलाव और डिजिटल साक्षरता, अनुकूलनशीलता और समस्या–समाधान जैसे कौशल की बढ़ती मांग के साथ, कंपनियों को अपने कार्यबल को आवश्यक दक्षताओं से लैस करने के लिए अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रमों और संसाधनों में निवेश करना चाहिए। ये विशेष प्रशिक्षक और संसाधन यह सुनिश्चित करते हैं कि कर्मचारी न केवल अपनी वर्तमान भूमिकाओं को प्रभावी ढंग से निभाने में सक्षम हैं बल्कि अपने संबंधित क्षेत्रों में

भविष्य की चुनौतियों और अवसरों का सामना करने के लिए भी तैयार हैं।

निष्कर्ष :-

भावनात्मक बुद्धिमत्ता शिक्षकों को अपनी भावनाओं को समझने और प्रबंधित करने की क्षमता के साथ–साथ अपने छात्रों की भावनाओं के साथ सहानुभूति रखने और प्रतिक्रिया देने की क्षमता प्रदान करती है। यह क्षमता शिक्षकों को अपने छात्रों के साथ मजबूत, सहायक संबंध बनाने, एक सकारात्मक कक्षा वातावरण बनाने में सक्षम बनाती है जहां सीखना फल–फूल सकता है। इसके अलावा, शिक्षक शिक्षा में ईआई को शामिल करके, संस्थान न केवल शिक्षकों की भावनात्मक लचीलापन बढ़ाते हैं बल्कि उन्हें संघर्ष समाधान, तनाव प्रबंधन और विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से निपटने जैसी चुनौतीपूर्ण स्थितियों को प्रभावी ढंग से संभालने के लिए सशक्त भी बनाते हैं। अंततः, शिक्षक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता को एकीकृत करने से शिक्षा के प्रति अधिक समग्र दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है, जो पूर्ण रूप से विकसित व्यक्तियों के विकास में योगदान देता है जो शैक्षणिक और भावनात्मक रूप से सफल होने में सक्षम हैं।

References :

1. तिवारी, अशोक। 'शिक्षकों के लिए भावनात्मक बुद्धिमत्ता की प्रासंगिकता।' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद पत्रिका, खंड 45, अंक 2, 2019, पृष्ठ 45–50।
2. सिंह, रामबली। 'शिक्षा में शिक्षक की भावनात्मक भूमिका।' भारतीय शिक्षण पत्रिका, खंड 52, अंक 3, 2020, पृष्ठ 22–30।
3. वर्मा, राकेश। 'भावनात्मक बुद्धिमत्ता और कक्षा प्रबंधन।' शिक्षा विमर्श, खंड 8, अंक 4, 2017, पृष्ठ 78–85।
4. चौहान, अशोक। 'शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता का स्थान।' भारतीय शिक्षण पत्रिका, खंड 49, अंक 1, 2017, पृष्ठ 32–40।
5. त्रिपाठी, आनंद। 'शिक्षकों की प्रभावशीलता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता।' राष्ट्रीय शिक्षा परिषद पत्रिका, खंड 39, अंक 2, 2018, पृष्ठ 58–63।
6. सिंह, के.एल। 'शिक्षक के व्यक्तित्व विकास में भावनात्मक बुद्धिमत्ता की भूमिका।' भारतीय शैक्षिक समीक्षा, खंड 50, अंक 3, 2019, पृष्ठ 12–19।

Contact No. 7357193356

E-mail: pareeksurendra67@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 71-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मलिक मोहम्मद जायसी : महाकाव्य पद्मावत

निर्मला पटेल, शोधार्थी (हिन्दी)
डॉ. अभिनेष सुराना, सह–शोध निर्देशक
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी)
शास. वि. या. ता. स्नात. स्वशासी महावि. दुर्ग (छ.ग.)

हिंदी साहित्य के स्वर्णिम इतिहास में भक्तिकाल का सर्वोच्च स्थान है, जिस समय भक्तिकाल का उदय हुआ उस समय भारत में मुसलमानों का शासन था। यहां की बहुसंख्यक जनता हिंदू तथा शासक मुस्लिम होने के कारण दोनों के मध्य सदैव संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी, साथ ही साथ विदेशी आक्रमणों से देश की जनता भयातुर रहती थी। ऐसे स्थिति में देश के जनमानस में विश्वास एवं आशा का अभाव होने लगा। दोनों धर्मों में आपसी मतभेद, वैमनस्य और भेदभाव की भावना विकसित होने लगी थी। इस स्थिति को सुधारने के लिए तथा लोगों के आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र की प्रवाह को बचाए रखने के लिए नामदेव एवं कबीरदास जैसे संत कवियों ने अपने दोहों के माध्यम से लोगों को सजग करने का प्रयत्न किया परंतु इससे आपसी संबंध मजबूत न हुए। ऐसे समय में भारत के सूफी कवियों ने इस समस्या को समूल दूर करने के लिए तथा एकता के सूत्र में बांधने के उद्देश्य से हिंदू घरों की कहानियों एवं उनके जनजीवन से संबंधित लोकप्रथाओं को अपने काव्य रचनों में सम्मिलित किया। इस पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं :–

'कबीर की अटपटी वाणी से भी दोनों के दिल साफ न हुए। मनुष्य–मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध है, यह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ।

अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने सामने करके अजनबियत मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।'[1]

भक्तिकाल के प्रेमाश्रयी काव्यधारा में अनेक सूफी कवियों ने साहित्य रचना की परंतु जायसी का स्थान शीर्षस्थ है। जायसी के बारे अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं मिलते हैं परंतु स्वयं जायसी ने अपनी रचना 'आखरी कलाम' में एक चौपाई के माध्यम से वर्णन किया है :–

"भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।"[2]

नवीं सदी को जन्मकाल तो 900 हिजरी अर्थात् 1492 और जन्म स्थान उत्तर प्रदेश के जायस नामक स्थान में हुआ था जो वर्तमान में अमेठी जिला के अंतर्गत आता है।

मलिक मोहम्मद जायसी की रचनाओं को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी के तीन रचनाओं को प्रमाणिक माना है जो निम्न हैं– पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। इन तीनों में से पद्मावत जायसी के यश का आधार है, सन् 1540 में रचित 'पद्मावत' का प्रेमाख्यानक काव्य धारा में विशिष्ट स्थान है।

'जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है पद्मावत, जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और प्रेम की पीर से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्मपक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।'[3]

'पद्मावत' जायसी के लिए यशदायक तो है ही, हिंदी साहित्य के लिए भी जायसी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। जायसी ने लोगों के हृदय में शुष्क होती भावनाओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्लावित करने का कार्य बखूबी किया। हिंदी साहित्य की विराट परंपरा में जायसी द्वारा रचित महाकाव्य 'पद्मावत' को निम्न बिंदुओं के द्वारा रेखांकित किया जा सकता है :–

सांप्रदायिक सद्भाव :–

भक्तिकाल के अंतर्गत मलिक मोहम्मद जायसी का जो समय निर्धारित किया जाता है वो भारतीय राजनीति के लिए उथल–पुथल का था। देश में बाह्य आक्रमण तथा शासन सत्ता में अनस्थिरता की स्थिति सदैव बनी रहती थी। एक धर्म या संप्रदाय दूसरे धर्म या संप्रदाय का विरोधी था। छुआछूत और द्वेष भावना विभिन्न संप्रदायों के मध्य खाई का कार्य करती थी तब जायसी ने सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर दोनों धर्मों में सद्भाव के लिए हिंदू समाज की कथाओं को अपने साहित्य का आधार बनाया।

"पद्मावत की हस्त लिखित प्रतियाँ अधिकतर मुसलमानों के ही घर पाई गई हैं।"[4]

विरह वर्णन :–

हिंदी साहित्य में जायसी का विरह वर्णन अद्वितीय है। जायसी ने 'पद्मावत' के 57 खंडों में से 15 खंडों में विरह का विशद चित्रण किया है। इसमें जायसी ने नागमती और पद्मावती दोनों के विरह वेदना का मार्मिकतापूर्ण वर्णन किया है। 'पद्मावत' में जब राजा रत्नसिंह पद्मावती के रूप सौंदर्य का बखान सुनकर सिंहलद्वीप के लिए निकल जाते हैं तब नागमती विरह में व्याकुल हो जाती है जिससे उनकी स्थिति अत्यंत कारुणिक हो जाती है और वह पशु–पक्षियों से अपने प्रिय के बारे मे पूछने लगती है। यहां पर जायसी ने नागमती को एक रानी की भांति नहीं वरन एक सामान्य वियोगिनी स्त्री की तरह विरह में तल्लीन दिखाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नागमती के विरह वर्णन पर कहा है :–

'नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुःखड़ा सुनाती है। वह पुण्यदशा धन्य है जिसमें ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुःख सुनाने से भी जी हल्का होगा।'[5]

इतिहास एवं कल्पना का सामंजस्य :–

'पद्मावत' की कथावस्तु को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित किया है तथा पूर्वार्द्ध को काल्पनिक और उत्तरार्द्ध को ऐतिहासिक कहा है। 'पद्मावत' में राजा रतनसिंह का पद्मावती

को प्राप्त करने हेतु सिंहलद्वीप के लिए प्रस्थान करने से लेकर वापस चित्तौड़ लौटने तक की कथा को काल्पनिक और चित्तौड़ से राघव तथा चेतन को बहिष्कृत करने तक अंतिम में पद्मावती और नागमती के सती होने तक की कथा को ऐतिहासिक माना गया है। परंतु कई स्थानों पर 'पद्मावत' की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़े होते हैं जैसे– पहला कर्नल जेम्स टॉड ने रतनसिंह के स्थान पर भीमसी नामक राजा का वर्णन किया है वहीं पर आईने अकबरी में रतनसिंह का नाम आता है। दूसरा 'पद्मावत' के काल्पनिक कथा के बारे में कहा जाता है कि पहले अवध क्षेत्र में 'पद्मिनी रानी और हीरामन सूए' की कथा प्रचलित थी। इन प्रश्नों से पद्मावती और रतनसिंह जैसे पात्र संदिग्ध हैं कि ये जनसाधारण में प्रचलित कथाओं के पात्र हैं अथवा ऐतिहासिक। संदेह की इस स्थिति में आचार्य शुक्ल कहते हैं :–

'अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं के ब्योरों में कुछ फेरफार करने का अधिकार कवि को बराबर रहता है।'[6]

जायसी ने 'पद्मावत' महाकाव्य में कल्पना और इतिहास को एक साथ मिलाकर दोनों का अभूतपूर्व सामंजस्य स्थापित किया है।

लोकतत्व का निरूपण :–

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक लोक संस्कृति और लोकजीवन होती है और उस भू–भाग में निवासरत जनजीवन द्वारा एक विशेष संस्कृति का पालन किया जाता है। साहित्य का संबंध जनमानस से होता है अतएव साहित्यकार अपनी रचनाओं में लोकजीवन के विविध पहलुओं को अपने साहित्य में स्थान देते हैं। जायसी ने 'पद्मावत' महाकाव्य में अनेक स्थलों पर अवध क्षेत्र के लोकजीवन को चित्रित किया है। जिसमें लोकोत्सवों, प्रथाओं, रीति–रिवाजों, गीतों और कहावतों का समावेश है। 'पद्मावत' में लोक प्रथाओं के अंतर्गत मलिक मोहम्मद जायसी ने गौना प्रथा, सती प्रथा, जौहर प्रथा तथा चौपड़ खेल का वर्णन किया है। 'पद्मावत' से सती प्रथा का उदाहरण प्रस्तुत है :–

"नागमती पद्मावति रानी। दुवौ महा सत सती बखानी।।
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठी। औ सिव लोक परा तिंह दीठी।।"[7]

लोकजीवन में अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम लोकभाषा होती है। जिससे लोग एक आंतरिक जुड़ाव महसूस करते हैं। जायसी अवध क्षेत्र से आते थे इसलिए उन्होंने पद्मावत में ठेठ अवधी भाषा को काव्य रचना का माध्यम बनाया है। जायसी की भाषा पर डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं :–

'हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में जायसी कृत पद्मावत शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। अवधी भाषा का ठेठ रूप और मर्मस्पर्शी माधुर्य यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।'[8] जायसी ने लोकभाषा के रूप में ठेठ अवधी का प्रयोग तो किया साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति को सशक्त और रोचक बनाने के लिए जनभाषा की बड़ी विशेषता के रूप में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग ज्यों का त्यों किया है। जैसे शेरशाह के शासन का गुणगान करते हुए जायसी कहते हैं :–

"परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुष सोन उछारा।।
गऊ सिंह रेंगहि एक बाटा। दुनौ पानि पियाहिं एक घाटा।।"[9]

यहाँ पर शेरशाह सूरी के शासन काल का गुणगान करते हुए 'परीनाथ न छूना', 'मार्ग में सोना उछालना',

'गाय और सिंह का एक घाट पर पानी पीना' जैसे मुहावरों का प्रयोग करते हैं।

महाकाव्यात्मक तत्व :–

साहित्य के निर्माण के लिए प्रत्येक साहित्यकार की अपनी एक अलग शैली होती है जो उस साहित्यकार को अन्य साहित्यकारों से अलग पहचान दिलाती है तथा रचना को कालांतर तक जगत में स्मरणीय बनाती है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में आचार्यों द्वारा इसके लिए विशेष सिद्धांत नहीं बताए गए हैं परंतु पाश्चात्य विद्वानों ने इस पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

जायसी ने 'पद्मावत' में भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली को नहीं अपनाया है वरन् फारसी के मसनवी शैली को लेकर रचना की है। यह एक सर्ग हीन प्रबंध काव्य है। ऐसा करके उन्होंने काव्य शास्त्रीय पद्धति का अतिक्रमण किया है परंतु ये अतिक्रमण नकारात्मक प्रभाव नहीं छोड़ता है।

प्रेमाख्यानक गाथा 'पद्मावत' में सात चौपाई के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है जिसे इनके परवर्ती गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कालजयी रचना 'रामचरित मानस' में अनुसरण किया है। इस पर विजयदेव नारायण साही कहते हैं :—

'एक अर्थ में जायसी हिंदी के पहले विधिवत कवि हैं। कबीर में प्रयास के चिन्ह हैं, जायसी में प्रयास कहीं दिखलाई नहीं देता।'[10]

पद्मावत स्वयं में एक अनूठा महाकाव्य है जिसकी अंतिम परिणति त्रासदी के रूप में होती है। त्रासदी पाश्चात्य साहित्य की देन है क्योंकि भारतीय साहित्य सुखांतक निष्कर्ष पर समाप्त होती है वही पाश्चात्य के अनेक साहित्य का समापन दुखांतक होता है। जायसी ने पद्मावत महाकाव्य में त्रासदी से समापन किया है। विजयदेव नारायण साही एक ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने इस बात को अपनी पुस्तक 'जायसी' में मजबूती के साथ रखते हैं :—

'अपनी मूल प्रकृति में पद्मावत एक त्रासदी है..... शायद हिंदुस्तान या संभवतः एशिया की धरती पर लिखा हुआ एकमात्र ग्रंथ है जो यूनानियों की ट्रेजेडी के काफी निकट है।'[11]

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मलिक मोहम्मद जायसी ने तत्कालीन जनता के शुष्क होती आंतरिक भावना को शुष्क होने नहीं दिया था और हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया तथा उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। जायसी भक्तिकाल के सूफी कवियों में शिरोमणि एवं उनकी रचना पद्मावत ख्यातिलब्ध है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 18
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 20
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन. सत्रहवाँ संस्करण 2021 पृ. 66
4. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 20
5. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 49
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 36
7. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 460

8. अग्रवाल, वासुदेव शरण. पद्मावत. साहित्य सदन. चिरगाँव, झांसी द्वितीय संस्करण. 1961 पृ. 11
9. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. जायसी ग्रंथावली. लोकभारती प्रकाशन. तृतीय संस्करण 2020 पृ. 192
10. साही, विजय देवनारायण. जायसी. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद. 1983 पृ. 1
11. साही, विजय देवनारायण. जायसी. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद. 1983 पृ. 62

पता :–
निर्मला पटेल
श्रीराम केशर कुंज, नया दीपक नगर, जिंदल फर्नीचर के पास, दुर्ग (छ.ग.) 491001
मो. नं. 8959194722
ई.मेल – np65899@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 76-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाजारवादी संस्कृति में नारी

बेलमती पटेल, शोधार्थी (हिंदी)
डॉ. अभिनेष सुराना (सह–शोध निर्देशक), प्राध्यापक (हिंदी)
शास. वि. या. ता. स्नात. स्वशासी महावि. दुर्ग (छ.ग.)

प्रस्तावना :–

बदलते युग के बदलते सामाजिक स्वरूप में नित नए परिवर्तन दिखाई देते जा रहे हैं। चाहे यह परिवर्तन उन्नति के रूप में हो या ह्रांस के रूप में हो। बदलते युग के इसी क्रम में वर्तमान समय बाजारवाद का चल रहा है। इस बाजारवाद का जन्म उपभोगतावादी समाज द्वारा हुआ है। वास्तव में बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद एक–दूसरे के पूरक हैं। बाजारवाद एक ऐसी वृत्ति बन चुकी है जो भले ही आर्थिक दृढ़ता प्रदान कर रही हो, किंतु आदर्श जीवन मूल्यों को समाप्त करते जा रही है।

बाजार उस स्थान को बोला जाता है जहां वस्तुओं का क्रय–विक्रय होता है। अधिक विक्रय हेतु वस्तुओं को हर प्रकार से आकर्षित बनाया जाता है जिससे उपभोक्ता आकर्षित हो एवं बाजार का सुचारू रूप से निर्वहन हो सके। परंतु बाजारीकरण के इस युग ने अपनी सारी सीमाओं का उल्लंघन कर मानव तथा मानवीय मूल्यों को भी नहीं छोड़ा, उसे भी एक वस्तुमात्र बनाकर रख दिया है। बाजार तंत्र के इस सुनहरे जाल के आकर्षण में पूरा विश्व फंस चुका है, वह भी अपनी इच्छा से। प्रमुख रूप से– नारी वर्ग।

प्राचीन काल से महिलाएं पुरुष प्रधान समाज में चहार दीवारी के अंदर ही दोयम दर्जे का जीवन व्यतीत करते आ रही है। स्त्री क्या हो? कैसी हो? एवं क्यों हो? स्त्री के लिए सदैव इन सारे मापदंडों को पुरुष समाज ने ही तय किया। स्त्री को पुरुष की चाकरी करने वाली तथा केवल मनोरंजन का एक साधन मान लिया गया था। उनकी ऐसी दयनीय स्थिति का कारण नारी का शारीरिक गठन था जो पुरुष की दृष्टि में सदैव से ही आकर्षण का केंद्र रहा है। यह पुरुष समाज की दोषपूर्ण दृष्टि ही है जिसके कारण स्त्री घर की वस्तु बनकर रह गई एवं जीवन की प्रत्येक आधारभूत आवश्यकताओं के लिए उसे पुरुष समाज पर आश्रित होना पड़ता था। जीवन की ऐसी विवशता एवं परतंत्रता से नारी समाज सदैव से व्याकुल थी। वह स्वतंत्र होना चाहती थी जिसका अवसर बदलते युग एवं युगमूल्यों ने दिया, जिसमें बाजारवादी युग प्रमुख है।

हालांकि नारी की बाजार में सक्रियता उपभोक्तावादी समाज की दृष्टि में नारी चरित्र का अवमूल्यन ही है परंतु मुक्ति की इच्छा में सदियों से प्यासी नारी इस अवसर को अपना सौभाग्य एवं स्वतंत्रता का मार्ग समझ कर इसमें सक्रियता दिखाने लगी है। वह इस समाज में अपनी एक ऐसी छवि बनाना चाहती है जिसमें वह आत्मनिर्भर हो, उसका अपना एक अस्तित्व हो, अपनी एक पहचान हो। पुरुष समाज के कंधे से कंधा मिलाकर अबला से

सबला रूप की इच्छा करती है।

1950–60 के दसक में विश्व के पश्चिमी देशों में उपभोक्तावाद का उदय हुआ। इससे पहले की बाजारवाद में उपभोक्ताओं की धारणा मूक थी। भारत में यह उदारीकरण की नीति 1990 के पश्चात शुरू हुई। उदारीकरण की नीति तथा भूमंडलीकरण ने सम्पूर्ण विश्व को एक ग्राम बनाने की बात की। यहीं से विश्वभर की संस्कृति का आदान–प्रदान हुआ और भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियां अपने हक की लड़ाई लड़ने सामने आईं।

बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद पर हिंदी साहित्य में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। समय की गति के साथ ही साहित्य में भी सामाजिक अनुकरण की गति की क्रिया देखी जाती है। समाज में जो कुछ भी घट रहा होता है साहित्य उसे अपने में सहेज लेता है। बाजारीकरण के दौर में विज्ञापन एवं नारी के उपयोग को लेकर उपन्यास विधा में सर्वप्रथम चित्रा मुद्गल जी ने कदम बढ़ाया। इस विषय में उनका उपन्यास 'एक जमीन अपनी' तथा ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' लिखा गया। दौड़ उपन्यास आजीविकावाद, व्यावसायिकता, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, विज्ञापनबाजी आदि के मिश्रण से बने मनुष्यों की कहानी बहुत प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत करता है। ममता जी ने इस उपन्यास में बाजारवादी संस्कृति में लड़कियों को लड़कों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने भविष्य के लिए संघर्ष करते दिखाया है। स्टैला, शिल्पा काबरा, रोजविंदर जैसी महिलाएं इसके उदाहरण हैं। पुरुष वर्ग को टक्कर देती स्त्रियों के पहनावे उनके तौर तरीके तथा उनकी कार्यशैली भी इसमें स्पष्ट है। ममता जी कहती हैं "रोजविंदर कौर प्रदूषण पर प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार कर रही है। कंधे पर पर्स और कैमरा लटकाए कभी वह एलिस ब्रिज के ट्रैफिक जाम के चित्र उतारती है तो कभी बाजार में जेनरेटर से निकलने वाली धुएं का जायजा लेती है।"[1] कोई भी कार्य अब उसके लिए दुरूह नहीं रही। ये पुरुष का कार्य है तो नारी नहीं कर पाएगी, ऐसी अवधारणाएं अब समाप्त होती दिखाई दे रही है। स्टैला भी कंप्यूटर हार्डवेयर का कंपनी चलाती है। वह स्त्रियों के कार्य समझे जाने वाले घरेलू कार्यों के प्रति बिलकुल भी रुचि नहीं रखती बल्कि उसे पुरुषों की भांति बाहरी कामकाज से लगाव है।

बाजारवाद ने परिवार व्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित किया है। सभी को एक ऐसी नौकरी या व्यवसाय चाहिए जिसमें आर्थिक उन्नति हो चाहे कुछ भी करना पड़े। अच्छी वेतन वाली नौकरी अपने स्थाई निवास के पास ही मिल जाए ऐसा होना मात्र एक संयोग है। आज की युवा पीढ़ी इस अच्छी वेतन के पीछे विदेशों तक जाने के लिए तैयार है। आज की नारी वो नारी नहीं रह गई है जो जीवनभर पति और बच्चों की सेवा में लगी रहे। कई मायने में यह सही भी लगता है और गलत भी। क्योंकि इसमें जैसे–जैसे स्त्री स्वतंत्रता का अनुभव करते जा रही है वैसे–वैसे स्वच्छंद होकर स्त्रीत्व एवं मातृत्व की अवहेलना भी करती जा रही है। इन दोनों में उचित सामंजस्य न बना पाने के कारण तथा दोयम दर्जे से उठकर केंद्र में आने की चेष्टा में वह अपने वास्तविक मूल्यों को विस्मृत करते जा रही है तथा परिवार, रिश्ते, भावनाऐं अब दोयम दर्जे में शामिल हो रही है।

आधुनिक बाजारवादी समाज में अपनी स्वतंत्रता की चाह में स्त्री बच्चे लेना भी नहीं चाहती। इसे एक बंधन, मजबूरी या सजा के रूप में देखती है। दौड़ उपन्यास में इस संदर्भ में ममता जी राजुल के द्वारा संकेत करती हैं– राजुल अभिषेक से कहती है "मैंने तुम्हें पहले कहा था मैं अभी बच्चा नहीं चाहती। तुमको ही बच्चे

की पड़ी थी.....मेरा कितना हर्ज हुआ। अच्छी भली सर्विस छोड़नी पड़ी। मेरी सब कलिग्स कहती थीं राजुल शादी करके अपनी आजादी चौपट करोगी और कुछ नहीं।"[2] बाजार के चकाचौंध में आज की नारी ऐसे गुम हो चुकी है कि अपना ममत्व भी भूलती जा रही है। यह स्त्री का एक आक्रोश भी है क्योंकि पुरुष समाज ने इस विषय में सदा ही अपने को मुक्त रखा है।

सदियों से समानता और सम्मान की आकांक्षी नारी इस भ्रम में है कि वह पुरुष प्रधान समाज में अब सम्मान की अधिकारिणी हो गई है और रूढ़ियों से मुक्त हो चुकी है। परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। घर से बाहर निकलना मात्र ही मुक्ति नहीं कही जा सकती। पुरुष समाज की दृष्टि में नारी अब भी वही 'कामिनी' है। अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जहां उपभोक्ताओं को रिझाने के लिए नारी सौन्दर्य को माध्यम बनाया जाता है। उसका सौन्दर्य ही उसे बाजारवाद में स्थान देती है। इस उपन्यास में लेखिका ने इसकी भी चर्चा की है – "रोज ही इस क्षेत्र में नई लड़कियां आती जा रही थीं जो जोखम उठाने को तैयार थीं पर उन्हें मॉडल बनाए जाने का भी एक तंत्र था। अगर सब कुछ तय होने के बाद कैमरामैन उसे नापास कर दे तब भी उसे लेना मुश्किल था।"[3] नारी सौंदर्य आज एक बिकाऊ वस्तु बन चुकी है। लाभ प्राप्ति हेतु नारी सौंदर्य को बेचने के लिए कंपनियां नए–नए तरीके ढूंढ ले रही है। आर्थिक सशक्तिकरण के लोभ में स्त्री इस कार्य को अपमान नहीं सम्मान समझ लेती है।

तरह–तरह के उत्पादों की चाहे वह सौंदर्य उत्पाद हो, चाहे चिकित्सा उत्पाद हो, घरेलू सामान से लेकर वाहन तक, यहां तक की कामुकता से संबंधित उत्पादों की जानकारी विज्ञापन के माध्यम से उपभोक्ताओं तक पहुंचाई जाती है और इसके प्रदर्शन के लिए भी नारी को ही चुना जाता है। कहीं दंत मंजन का विज्ञापन बनाना हो तो आलिंगनबद्ध स्त्री–पुरुष के होठों को मिलाते हुए दिखाया जाता है। यदि पुरुषों के अंतर्वस्त्र का विज्ञापन बनाना हो तो इसमें स्त्रियों का क्या कार्य है? परंतु इसमें भी अधनंगे पुरुषों के साथ कामुक भाव में युगल जोड़े को दिखाया जाता है। इसके बिना भी उत्पाद का प्रचार हो सकता है किंतु नहीं। इससे उत्पाद को कितना लाभ होता है वो एक बात है पर इस तरह के विज्ञापन को देखकर समाज में अपराध बढ़ सकता है। इस संबंध में डॉ. ज्योति किरण कहती भी है कि "विज्ञापन की दुनिया में भी स्त्री आज उस वस्तु के विज्ञापन में दिखती है जिससे उसका कोई सरोकार नहीं होता है और उस रूप में दिखती है जिस रूप में नहीं दिखनी चाहिए।"[4] मॉडल बनने की चाह में जो लड़कियां घर से बाहर निकलती हैं वे अनेक अनकही दुर्घटनाओं का शिकार बनती हैं परंतु ये अपराधिक घटनाएं उनके लक्ष्य की प्राप्ति की संघर्ष का एक हिस्सा समझ कर दबा दी जाती हैं। आगे चलकर ऐसी घटनाएं सामान्य मान ली जाती हैं एवं प्रत्येक के लिए ये रूढ़ होती जाती है।

इसी तरह से समाचार चौनलों पर समाचार वाचन, इंटरव्यू, संवाददाता के रूप में महिलाओं को रखा जाता है, होटल में वेटर, दुकान में सेल्स गर्ल, किसी गाड़ी के शो रूम, मोबाइल या अन्य तरह के उत्पाद क्रय–विक्रय कंपनियों में कस्टमर केयर जैसे अनेक व्यवसायिक स्थानों पर महिला कर्मचारी की ही अधिकता आसानी से देखी जा सकती है। ये किसी के द्वारा महिलाओं के हित में सोचकर अवसर नहीं दिया जा रहा अपितु बाजारवाद की अवसरवादी प्रवृत्ति है जो इनका उपयोग एवं दुरुपयोग दोनों कर के केवल अपना लाभ देख रही है। इस बाजारवादी संस्कृति में अथवा विज्ञापनों में स्त्री की भूमिका या सहभागिता का होना गलत नहीं है अपितु प्रश्न यह बनता है कि किस प्रकार से होना चाहिए?

अखबार के पन्नों से लेकर टी. वी., रेडियो, मोबाइल, यहां तक कि घर में आने वाले सामानों के ऊपर लगे कवर में भी इस प्रकार के बेढंगे चित्र लगे होते हैं, जिसे देखकर एक अश्लीलता का अनुभव होता है। इसे एक छोटे बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक देखते हैं। "स्त्री के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि देह पर अधिकार एवं मस्तिष्क पर अपने नियंत्रण के बिना वह बाजार के नियमों को अपने अनुकूल नहीं ढाल सकती।"[5] समकालीन युग में बाजार उसे आर्थिक समृद्धि का सुखद सपना दिखाकर उसे एक देह के रूप में ही प्रस्तुत कर रहा है।

चित्रा मुद्गल अपनी रचना श्एक जमीन अपनीश में विज्ञापन की दुनिया में सफलता पाने आई नीता के माध्यम से भी इस बात को उजागर करती हैं तथा स्वतंत्रता की चाह में स्वछंदता तक पहुंचती स्त्रियों को रेखांकित करती हैं। नीता प्रसिद्धि प्राप्त करने हेतु किसी भी सीमा तक जाने को तत्पर है। उसको विज्ञापन में जिस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है वह भारतीय स्त्री की मर्यादित प्रतिमा को खंडित करती है। उपन्यास में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है – "देह पर है मात्र वक्षस्थल को ढंकता हुआ अंगोछे सा कपड़े का कोई टुकड़ा और घुटने के नीचे तक फैली हुई लहंगा स्कर्ट३लड़की की निर्वस्त्र पीठ कैमरे की आंखों में है....."[6] मॉडलिंग और प्रसिद्धि के आड़ में स्त्री सौंदर्य का नग्न प्रदर्शन किया जा रहा है।

रूढ़ियों से मुक्ति तथा चहार दीवारी से स्वतंत्रता की दुहाई देने वाली महिलाओं को इस उपन्यास में लेखिका स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ भी समझाती हैं। अंकिता जो विज्ञापन की दुनिया से ही जुड़ी हुई है वह कहती है– "स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए, उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए, जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है जो स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करती आ रही है।"[7] वह अपने स्त्रीत्व धर्म के प्रति सचेत है। जिस दिन स्त्री का देह पुरुष समाज के लिए मात्र कामुक वस्तु के रूप में नहीं रह जायेगी उस दिन स्त्री को कई मायनों में मुक्ति भी मिल जायेगी।

निष्कर्ष :-

नारी अस्तित्व के इतिहास को देखें तो जिन यातनाओं एवं स्थितियों को झेलकर अपने अस्तित्व और अस्मिता को खोजते हुए वह यहां तक आई है उन स्थितियों में बहुत सुधार हुआ है। परंतु ये सुधार पूर्ण रूप से सकारात्मक नहीं कही जा सकती। बाजारवादी व्यवस्था द्वारा नारी को प्राप्त यह सम्मान और स्वतंत्रता एक स्वांग है। समाज आज भी स्त्री को हीन बनाकर उसका वही रूप देखना चाहता है जो उसके मन को शुरू से भाता है। अवसरवादी उद्यमियों ने स्वतंत्रता, सम्मान, एवं समाज में प्रतिष्ठा का स्वप्न दिखाकर स्त्री को साधन बनाकर मुख्य रूप से अपने स्वार्थ को साधा है। ऐसा नहीं है कि इससे नारी वर्ग को कोई भी लाभ नहीं हुआ, लाभ हुआ, वह आर्थिक रूप से सक्षम हुई है। उन्हें सोचने समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। आर्थिक सक्षम होने के कारण वे घरेलू हिंसा का विरोध कर पा रही हैं, इसी के साथ शिक्षा में रुचि ले रही हैं। अब वे मात्र गृहणियां न होकर सक्रिय उपभोक्ता स्त्री के रूप में प्रत्यक्ष हैं परंतु सम्मान आज भी ढोंग ही लगता है। क्योंकि अगर सम्मान ही देना होता तो उसे अपने शरीर का प्रदर्शन नहीं करना पड़ता। आज भी नारी को बाजारवाद ने उपयोगी वस्तु के रूप में ही स्वीकार किया है। इस पर विचार करते हुए नारी को अपने सम्मान एवं स्वतंत्रता हेतु विवेक से निर्णय लेने की आवश्यकता है।

संदर्भ :-

1. कालिया, ममता. दौड़, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 18

2. कालिया, ममता. दौड़, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 28
3. कालिया, ममता. दौड़, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 34
4. ज्योति किरण, हिंदी उपन्यास और स्त्री जीवन (मेघा बुक्स, दिल्ली), पृष्ठ 30
5. hindi.feminisminindia.com
6. चित्रा मुद्गल, एक जमीन अपनी, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली 115
7. के. वनजा, चित्रा मुदगल एक मूल्यांकन (सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली) पृष्ठ 28

पता :–
बेलमती पटेल
श्रीराम केशर कुंज, नया दीपक नगर, जिंदल फर्नीचर के पास, दुर्ग (छ.ग.)
मो. नं. – 7000347913
ई मेल – shanti020581@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 81-85

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आमेर किले की प्राचीन जल संचयन प्रणाली : एक विस्तृत अध्ययन

बलराम सैनी

व्याख्याता इतिहास (गेस्ट फैकल्टी) राजकीय कन्या महाविद्यालय।

सार :-

इस शोध पत्र में आमेर किले की प्राचीन जल संचयन प्रणाली के संबंध में विशेष जानकारी प्रस्तुत की गई है। जैसा कि हम जानते हैं, कि भारत में जल संचयन की प्रणालियाँ और परम्पराएं प्राचीन काल से ही अपनाई जाती रही है। जिससे हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त साक्ष्य जैसे – कुओं, नहरों व बांधों का प्रयोग जल संचय के लिए किया जाता था। इसी प्रकार मौर्य काल में चंद्रगुप्त मौर्य के काल में निर्मित सुदर्शन झील भी जल संचय का कार्य करती थी।

प्राचीन काल से सीख लेते हुए मध्यकाल के आमेर शासक मानसिंह प्रथम ने जब आमेर दुर्ग का निर्माण कार्य करवाया। उस समय स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, किले में एक संगठित जल संचयन प्रणाली विकसित की गई, जिसमें प्रमुख जलाशय, बावड़ियाँ, भूमिगत टैंक, नहरें और झीलें शामिल थी। आमेर दुर्ग की जल संचयन प्रणाली ऐसी थी, कि गर्मी के मौसम में, अल्प वर्षा की स्थिति में और युद्धकालीन स्थिती में किले के अंदर जल की कमी नहीं आये। किले की जल संचयन में बावड़ियों व कुण्डों का अहम योगदान रहा है। जो वहां राजपरिवार के साथ–साथ आम जनता को शुद्ध जल की आपूर्ति करते थे। किले के अंदर व्यापक स्तर पर जल संचयन के कार्य किये गये हैं। जो पूरे वर्ष जल आपूर्ति बनाए रख सके।

हम हमारी वर्तमान की अधिकतर समस्याओं का निस्तारण इतिहास में खोजने का कार्य करते हैं। आमेर किले की जल संचयन व्यवस्था भी आधुनिक जल प्रबंधन के लिए प्रेरणा स्रोत हो सकती है।

प्रस्तावना :-

जल संसाधन प्रबंधन भारत के प्राचीन विज्ञान का अभिन्न अंग रहा है। विशेष रूप से राजस्थान जैसे शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में जल संरक्षण की उन्नत प्रणालियाँ विकसित की गईं। आमेर किला, जो जयपुर से लगभग 11 किलोमीटर उत्तर में स्थित है, न केवल अपनी भव्य वास्तुकला बल्कि अपनी जटिल जल संचयन प्रणाली के लिए भी जाना जाता है।

आमेर किले की जल संचयन प्रणाली को इस प्रकार विकसित किया गया था कि यह पूरे वर्ष जल आपूर्ति बनाए रख सके। इसमें वर्षा जल संचयन, भूमिगत जलाशय, नहरें, बावड़ियाँ और प्राकृतिक गुरुत्वाकर्षण–आधारित

वितरण प्रणालियाँ शामिल थीं। यह शोध आलेख आमेर किले की जल संचयन प्रणाली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, तकनीकी विश्लेषण, संरचनात्मक विशेषताओं और इसके संरक्षण की आवश्यकता पर केंद्रित है।

शोध पत्र के उद्देश्य :–

किसी भी शोध कार्य को बिना पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के पूर्ण नहीं किया जा सकता। किसी भी शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य शीर्षक के संबंध में नहीं जानकारी प्राप्त करना होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :–

1. किले निर्माण में जल प्रबंधन की व्यवस्था का अध्ययन करना।
2. किले में संरक्षित जल का विभिन्न प्रकार से उपयोग का अध्ययन करना।
3. राजस्थान के इतिहास में किले की जल संचयन प्रणाली की वर्तमान परिपेक्ष्य में प्रासंगिकता का विस्तृत अध्ययन करना।
4. किलो में जल को लिफ्ट करने की तकनीकी का विस्तृत अध्ययन करना।
5. आज के मानव समाज को जल संचयन, प्रबंधन एवं उचित उपयोग हेतु प्रेरित करना।
6. राजस्थान के पहाड़ी क्षेत्र के किलो में छिपे हुए तथ्यों एवं नए ज्ञान की खोज करना।
7. किले में जल संचयन के क्षेत्र में आयी कठिनाइयों का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करना।

आमेर किले का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

1. किले का निर्माण और विस्तार :

आमेर किले का निर्माण 1592 ईस्वी में राजा मान सिंह प्रथम द्वारा किया गया था और बाद में सवाई जय सिंह प्रथम द्वारा इसका विस्तार किया गया। यह किला 967 एकड़ भूमि में फैला हुआ है और अरावली पहाड़ियों के बीच स्थित है। यह अपने भव्य महलों, आंगनों और कक्षों के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन इसकी जल संचयन प्रणाली भी इसकी प्रमुख विशेषता है।

2. जल संचयन प्रणाली के निर्माण की पृष्ठभूमि :

राजस्थान के अधिकांश क्षेत्रों में जल की कमी एक बड़ी समस्या रही है। आमेर किला एक पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है, जहाँ वर्षा जल के प्राकृतिक स्रोत बहुत सीमित थे। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, किले में एक संगठित जल संचयन प्रणाली विकसित की गई, जिसमें बावड़ियाँ, जलाशय, भूमिगत टैंक, नहरें और झीलें शामिल थीं।

3. आमेर किले की जल संचयन प्रणाली की आवश्यकता :

1. **अल्प वर्षा** – जयपुर क्षेत्र में वार्षिक वर्षा केवल 400–600 मिमी होती है। यह जल आपूर्ति के लिए अपर्याप्त थी, इसलिए जल संरक्षण की उन्नत प्रणाली विकसित की गई।
2. **भूगर्भ जल की सीमित उपलब्धता** – आमेर पहाड़ियों में कठोर चट्टानें होने के कारण यहाँ प्राकृतिक जल स्रोतों की उपलब्धता सीमित थी।
3. **निवासियों और सैनिकों के लिए जल आपूर्ति** – किले में हजारों सैनिक और कर्मचारी रहते थे, जिनके लिए जल आपूर्ति आवश्यक थी।
4. **युद्धकालीन रणनीति** – युद्धकाल में बाहरी जल स्रोतों तक पहुँच सीमित हो सकती थी, इसलिए जल

संचयन प्रणाली विकसित की गई।

5. **गर्मी के मौसम में जल संरक्षण** – गर्मी के मौसम में जल स्रोत सूख जाते थे, इसलिए संग्रहित जल का उपयोग किया जाता था।

4. **आमेर किले की जल संचयन प्रणाली का तकनीकी विश्लेषण :**

आमेर किले में जल संचयन प्रणाली को मुख्य रूप से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

मावठा झील : जल संचयन का प्राथमिक स्रोत –

– मावठा झील, जो किले की तलहटी में स्थित है, जल संचयन प्रणाली का प्रमुख स्रोत थी।
– झील को गुरुत्वाकर्षण आधारित जल आपूर्ति प्रणाली के रूप में विकसित किया गया था।
– इसमें जल संरक्षण के लिए नहरों और चौनलों का जाल बिछाया गया था, जिससे वर्षा जल इसमें एकत्रित होता था।
– झील के किनारे बांध और फिल्टर सिस्टम लगाए गए थे, जिससे इसमें गाद का जमाव न्यूनतम होता था।

बावड़ियाँ और कुंड : जल भंडारण संरचनाएँ :–

बावड़ियाँ और जलाशय जल संचयन का एक प्रमुख हिस्सा थे।

सागर कुंड – यह मावठा झील से जुड़ा था और आपातकालीन जल आपूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता था।

चाँद बावड़ी – यह गहरी बावड़ी थी, जिसमें पानी ठंडा और शुद्ध बना रहता था।

राजमहल बावड़ी – इसका उपयोग शाही परिवार द्वारा किया जाता था।

गणेश पोल बावड़ी – यह आम जनता के लिए बनाई गई थी।

इन बावड़ियों को इस प्रकार डिजाइन किया गया था कि पानी का वाष्पीकरण कम हो और जल का दीर्घकालिक भंडारण संभव हो।

गुरूत्वाकर्षण आधारित जल आपूर्ति प्रणाली :–

– जल को ऊँचाई से निम्न स्तर पर भेजने के लिए पत्थर और तांबे की पाइपलाइनों का उपयोग किया गया था।
– किले में विभिन्न स्तरों पर जलाशय बनाए गए थे, जिनमें से जल स्वतः ही बहकर विभिन्न संरचनाओं तक पहुँचता था।

भूमिगत जलाशय और टंकियाँ :–

किले में कई भूमिगत जलाशय मौजूद थे, जो जल संचयन और संरक्षण के लिए उपयोग किए जाते थे। इन जलाशयों को इस प्रकार डिजाइन किया गया था कि पानी का वाष्पीकरण न्यूनतम हो।

5. **जल संचयन प्रणाली की विशेषताएँ :–**

1. **प्राकृतिक गुरूत्वाकर्षण आधारित जल आपूर्ति** – जल आपूर्ति के लिए बाहरी ऊर्जा स्रोत की आवश्यकता नहीं थी।

2. **वाष्पीकरण को रोकने की उन्नत तकनीक** – जल भंडारण संरचनाएँ इस प्रकार डिजाइन की गई थीं कि

वाष्पीकरण न्यूनतम हो।

3. **स्थायी जल संरक्षण प्रणाली** – यह प्रणाली पूरे वर्ष जल आपूर्ति बनाए रखने के लिए डिजाइन की गई थी।
4. **पर्यावरण अनुकूल तकनीक** – इस प्रणाली में आधुनिक ऊर्जा स्रोतों की कोई आवश्यकता नहीं थी और यह पूरी तरह से प्राकृतिक प्रक्रियाओं पर आधारित थी।

6. आधुनिक संदर्भ में आमेर किले की जल संचयन प्रणाली का महत्व :–

1. **वर्षा जल संचयन की आधुनिक आवश्यकता** – यदि पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों को आधुनिक संरचनाओं में अपनाया जाए, तो जल संकट से बचा जा सकता है।
2. **स्थानीय संसाधनों का प्रभावी उपयोग** – जल संरक्षण के लिए स्थानीय भूगोल के अनुरूप प्रणालियाँ विकसित की जानी चाहिए।
3. **सतत जल आपूर्ति तकनीक** – गुरुत्वाकर्षण–आधारित जल आपूर्ति प्रणाली आज भी प्रभावी हो सकती है।
4. **संरक्षण एवं बहाली की आवश्यकता** – आमेर किले की जल संचयन प्रणाली को संरक्षित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :–

आमेर किले की जल संचयन प्रणाली न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह आधुनिक जल प्रबंधन के लिए भी प्रेरणास्रोत हो सकती है। यदि इस प्रणाली के सिद्धांतों को आधुनिक जल प्रबंधन तकनीकों में अपनाया जाए, तो जल संकट की समस्या को प्रभावी रूप से हल किया जा सकता है। राजस्थान के अधिकांश किले पहाड़ियों पर तथा निर्जल क्षेत्र में बनाये गये थे। जहां किलों का पारिस्थितिकी तंत्र और मौसमी परिस्थितियां जल प्राप्ति के प्रतिकूल थी। किलों में पेयजल की उपलब्धता करना बहुत कठिन कार्य था, किंतु यहां के शासको व वास्तुकारों ने किले में विशेष जल प्रबंधन व संचयन प्रणाली को अपनाकर कभी भी किले में जल की कमी नहीं आने दी।

उपयुक्त अध्ययन से निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि राजस्थान के इतिहास में किलों के जल संचयन स्रोत तथा जल प्रबंधन के तरीके अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन ऐतिहासिक धरोहर को बचाना और संजोए रखना भी भावी पीढ़ी का एक कर्तव्य बनता है। यदि हमारी नई पीढ़ी ऐतिहासिक जल प्रबंधन तकनीकी को अपनाये तो निश्चित रूप से जल संकट की समस्या से निजात पाया जा सकता है।

8. संदर्भ सूची :–

1. ओझा, जी. एच. (1999). राजस्थान का इतिहास. जयपुर : राजस्थानी ग्रंथागार।
2. माथुर, ए. (2012). इंडियन वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम्स. नई दिल्ली : ओक्सफोर्ड प्रेस।
3. ASI. (2021). Water Management in Amer Fort. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण रिपोर्ट।
4. Bhattacharya, S. (2022). Ancient Water Management in Indian Forts. Oxford University Press.
5. Guha, R. (2014). The Architecture of Rajput Forts. Penguin Books.

6. खान, जफरुल्लाह, आमेर महल में रहट प्रणाली, पुरा संपदा, राज. पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर पृ. 059–061
7. मनोहर, राघवेंद्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1997
8. धामा, बी.एल., जयपुर एंड आमेर, अजंता प्रिंटर्स, जयपुर 1985
9. शर्मा, मोहनलाल, जल संरक्षण तकनीक : आमेर किले का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्।

बलराम सैनी
मौहल्ला सबलपुरा, वार्ड न. 06, बहरोड़, जिला कोटपुतली–बहरोड़
Email : brsaini.behror@gmail.com
Mob- – 9001767644

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 86-91

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

खेलों में लैंगिक असमानता : माध्यमिक विद्यालयों में खेल गतिविधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अनिल कुमार शुक्ला

प्राध्यापक, अष्टभुजा कालेज ऑफ एजुकेशन, मऊगंज, जिला मऊगंज (मध्य प्रदेश)

अनिल कुमार झा

शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

प्रस्तावना :-

यह शोध पत्र माध्यमिक विद्यालयों के संदर्भ में खेलों में लैंगिक असमानता का अध्ययन करता है, जिसमें बालकों और बालिकाओं के बीच प्रस्तावित खेल गतिविधियों और भागीदारी के आवृत्ती की तुलना की गई है। अध्ययन यह जांचता है कि विद्यालयों में विभिन्न खेलों की उपलब्धता, प्रचार और संस्थागत समर्थन के माध्यम से लैंगिक–आधारित असमानताएँ कैसे प्रकट होती हैं। मात्रात्मक सर्वेक्षण, गुणात्मक साक्षात्कार और प्रत्यक्ष कक्षा और घटना अवलोकन को मिलाकर मिश्रित–पद्धति दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए, यह शोध पत्र बालक और बालिकाओं के खेल अनुभवों में महत्वपूर्ण अंतरों की पहचान करता है। निष्कर्ष बताते हैं कि पारंपरिक लैंगिक मानदंड, सामाजिक–सांस्कृतिक कारक और विरासत संस्थागत प्रथाएँ असमान अवसरों और भागीदारी स्तरों में योगदान करती हैं। यह पत्र संदर्भ में इन कारकों पर चर्चा करता है और देश भर के माध्यमिक विद्यालयों में अधिक न्यायसंगत खेल कार्यक्रम बनाने के लिए सिफारिशें प्रदान करता है।

मुख्य शब्द :- लैंगिक असमानता, माध्यमिक विद्यालय, खेल गतिविधियाँ, मिश्रित–पद्धतियाँ, शैक्षिक नीति, खेल संस्कृति।

1. परिचय :-

भारत में, खेल शैक्षिक परिदृश्य का एक अभिन्न अंग हैं और छात्रों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हालाँकि, खेलो इंडिया कार्यक्रम जैसी सरकारी पहलों और खेल के बुनियादी ढाँचे में बढ़े हुए निवेश के बावजूद, माध्यमिक विद्यालय के खेलों में लैंगिक असमानता व्याप्त है। परंपरागत रूप से, भारतीय समाज ने लैंगिक भूमिकाओं को बनाए रखा है जो खेल गतिविधियों में चयन, पदोन्नति और भागीदारी को प्रभावित करती हैं। बालकों को अक्सर क्रिकेट, हॉकी और फुटबॉल जैसे प्रतिस्पर्धी टीम खेलों की ओर ले जाया जाता है, जबकि बालिकाओं को अक्सर बैडमिंटन, वॉलीबॉल और एथलेटिक्स जैसे कम प्रतिस्पर्धी या ष्नरमष् खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। ये असमानताएँ न केवल छात्रों के शारीरिक विकास

को प्रभावित करती हैं बल्कि लैंगिक भूमिकाओं के बारे में व्यापक सामाजिक रूढ़ियों को भी मजबूत करती हैं।

2. साहित्य समीक्षा :-

2.1 भारत में स्कूली खेलों का ऐतिहासिक विकास :

ऐतिहासिक रूप से, भारतीय शिक्षा प्रणाली में खेलों का एकीकरण काफी हद तक औपनिवेशिक विरासत और पारंपरिक सामाजिक मानदंडों से प्रभावित था। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में, खेलों को मुख्य रूप से बालकों में अनुशासन और राष्ट्रीय गौरव पैदा करने के साधन के रूप में देखा जाता था, जबकि बालिकाओं के लिए सीमित अवसर थे। समय के साथ, जबकि ध्यान समावेशी शारीरिक शिक्षा की ओर स्थानांतरित हो गया है, पहले के लैंगिक पूर्वाग्रहों के अवशेष माध्यमिक विद्यालयों में खेल कार्यक्रमों की संरचना और सामग्री को प्रभावित करना जारी रखते हैं।

2.2 लैंगिक संबंधी रूढ़िवादिता और खेल में भागीदारी :

कई अध्ययनों से पता चला है कि लैंगिक रूढ़िवादिता भारत में खेलों में भागीदारी को काफी प्रभावित करती है। बालकों को आमतौर पर शारीरिक रूप से कठिन और प्रतिस्पर्धी खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे कि क्रिकेट और हॉकी, जिन्हें ताकत और वीरता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, बालिकाओं को अक्सर ऐसे खेलों में धकेल दिया जाता है जिन्हें कम आक्रामक माना जाता है, जैसे कि बैडमिंटन, टेबल टेनिस या एथलेटिक्स। चटर्जी और बनर्जी (2018) इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि इन रूढ़िवादिताओं को स्कूलों और मीडिया चित्रण दोनों के माध्यम से मजबूत किया जाता है, जो प्रतिस्पर्धी खेलों में बालिकाओं के कम प्रतिनिधित्व के चक्र में योगदान देता है।

2.3 संस्थागत नीतियां और पाठ्यक्रम डिजाइन :

संस्थागत नीतियों और पाठ्यक्रम डिजाइन का खेलों में भागीदारी पैटर्न पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कई अध्ययनों से संकेत मिलता है कि जो स्कूल विभिन्न प्रकार के खेल प्रदान करते हैं और लैंगिक–तटस्थ पाठ्यक्रम पर जोर देते हैं, वे अधिक संतुलित भागीदारी दर प्राप्त करते हैं। हालाँकि, कई भारतीय माध्यमिक विद्यालय खेल शिक्षा के पारंपरिक, लैंगिक–पृथक मॉडल का पालन करना जारी रखते हैं जो बालिकाओं की तुलना में बालकों को तरजीह देते हैं। उदाहरण के लिए, शर्मा और गुप्ता (2017) ने पाया कि स्कूलों में संसाधन आवंटन अक्सर बालिकाओं के बीच अधिक लोकप्रिय खेलों की तुलना में क्रिकेट और फुटबॉल के लिए सुविधाओं को प्राथमिकता देता है।

2.4 भारत में लैंगिक और खेल पर सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव :

सामाजिक–सांस्कृतिक कारक जैसे माता–पिता की अपेक्षाएँ, सामुदायिक मानदंड और पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ भारत में खेलों के प्रति दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बालिकाओं को अक्सर सामाजिक दबावों का सामना करना पड़ता है जो प्रतिस्पर्धी खेलों में उनकी भागीदारी को सीमित करते हैं, सांस्कृतिक मानदंड अक्सर घर के बाहर उनकी सक्रिय भागीदारी को हतोत्साहित करते हैं। मेहता और रेड्डी (2019) द्वारा किए गए शोध से पता चलता है कि इन सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं के कारण बालिकाओं के लिए आत्म–सम्मान कम होता है और खेलों में उनके अवसर कम होते हैं, जिससे लैंगिक असमानता और भी बढ़ जाती है।

2.5 समावेशी खेल कार्यक्रमों के प्रति समकालीन दृष्टिकोण :

खेलो इंडिया जैसे सरकारी कार्यक्रमों और विभिन्न एनजीओ द्वारा संचालित परियोजनाओं सहित हाल की पहलों का उद्देश्य भारतीय स्कूलों में समावेशी खेल प्रथाओं को बढ़ावा देना है। ये कार्यक्रम मिश्रित–लैंगिक खेल आयोजनों, समान संसाधन वितरण और ऐसे खेलों की शुरूआत की वकालत करते हैं जो विविध हितों को पूरा करते हैं। इन पहलों के शुरुआती मूल्यांकन से पता चलता है कि जब स्कूल समावेशी नीतियों को अपनाते हैं और अपने खेल पाठ्यक्रमों में विविधता लाते हैं, तो बालिकाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय सुधार होता है। हालाँकि, प्रणालीगत चुनौतियाँ बनी हुई हैं, और स्कूली खेलों में लैंगिक समानता पर इन सुधारों के दीर्घकालिक प्रभाव को समझने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

3. अनुसंधान प्रक्रिया :–

यह अध्ययन मिश्रित–पद्धति दृष्टिकोण का उपयोग करता है जो भारतीय माध्यमिक विद्यालय के खेलों में लैंगिक असमानता का व्यापक विश्लेषण प्रदान करने के लिए मात्रात्मक और गुणात्मक शोध तकनीकों को एकीकृत करता है।

4. निष्कर्ष :–

4.1 भागीदारी दरें और गतिविधि प्राथमिकताएं :

मात्रात्मक विश्लेषण से खेलों में भागीदारी में महत्वपूर्ण लैंगिक असमानताएँ सामने आईं। लगभग 78% पुरुष उत्तरदाताओं ने क्रिकेट, फुटबॉल और हॉकी जैसे प्रतिस्पर्धी टीम खेलों में सक्रिय भागीदारी की सूचना दी। इसके विपरीत, केवल 52% महिला उत्तरदाताओं ने इन गतिविधियों में भाग लिया। इसके बजाय, बालिकाओं के एक बड़े अनुपात (68%) ने बैडमिंटन, एथलेटिक्स और टेबल टेनिस जैसे व्यक्तिगत या कम संपर्क–गहन खेलों के लिए अपनी प्राथमिकता का संकेत दिया। ये निष्कर्ष पहले के अध्ययनों को दोहराते हैं जिन्होंने भारतीय स्कूल संदर्भ में खेल वरीयताओं में एक मजबूत लैंगिक विभाजन को नोट किया है।

4.2 संस्थागत पेशकश और संसाधन आवंटन :

स्कूल प्रशासकों के साथ साक्षात्कार में यह बात उजागर हुई कि संसाधन आवंटन और पाठ्यक्रम पर जोर खेलों में भागीदारी को काफी हद तक प्रभावित करता है। कई स्कूल पारंपरिक रूप से पुरुषों की भागीदारी से जुड़े खेलों–विशेष रूप से क्रिकेट और फुटबॉल–के लिए सुविधाओं और कोचिंग में भारी निवेश करते हैं, जबकि बालिकाओं द्वारा अधिक पसंद किए जाने वाले खेलों को कम ध्यान और कम धन मिलता है। उदाहरण के लिए, कई स्कूलों ने फुटबॉल के लिए अत्याधुनिक क्रिकेट मैदान और विशेष कोचिंग स्टाफ बनाए रखा, जबकि वॉलीबॉल और एथलेटिक्स जैसे खेलों में अक्सर कम संसाधन होते थे।

4.3 लैंगिक भूमिकाओं की धारणाएँ :

फोकस समूह चर्चाओं से पता चला कि लैंगिक रूढ़िवादिता भारतीय छात्रों के खेल अनुभवों को दृढ़ता से प्रभावित करती है। कई बालकों ने प्रतिस्पर्धी खेलों में अपनी भागीदारी पर गर्व व्यक्त किया, इसे अपनी पहचान का एक महत्वपूर्ण घटक मानते हुए। इसके विपरीत, कई बालिकाओं ने प्रोत्साहन की कमी और, कुछ मामलों में, प्रतिस्पर्धी खेलों में भाग लेने से सीधे हतोत्साहित होने की बात कही। शिक्षकों और साथियों ने कभी–कभी इस धारणा को मजबूत किया कि उच्च संपर्क वाले खेल बालिकाओं के लिए 'उपयुक्त नहीं' थे, जिससे इन क्षेत्रों में

उनकी भागीदारी और आकांक्षाएं सीमित हो गईं।

4.4 शिक्षक और प्रशासक का दृष्टिकोण :

शारीरिक शिक्षा शिक्षकों और स्कूल प्रशासकों के साथ साक्षात्कार ने समावेशी खेल कार्यक्रमों को लागू करने की चुनौतियों को रेखांकित किया। जबकि कई शिक्षकों ने खेल शिक्षा में लैंगिक–तटस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता को स्वीकार किया, उन्होंने बजट की कमी, पारंपरिक पाठ्यक्रम ढांचे और प्रचलित सामाजिक दृष्टिकोण जैसी संरचनात्मक चुनौतियों की ओर भी इशारा किया। कई शिक्षकों ने स्वीकार किया कि प्रगतिशील विचारों वाले लोगों को भी पुरुष–प्रधान खेलों के पक्ष में स्थापित प्रथाओं और अपेक्षाओं पर काबू पाना चुनौतीपूर्ण प्रतीत होता है।

5. चर्चा :–

5.1 लैंगिक असमानताओं का विश्लेषण :

इस अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में खेलों में लैंगिक असमानता एक बहुआयामी मुद्दा है। प्रतिस्पर्धी खेलों में बालकों की उच्च भागीदारी दर काफी हद तक गहरे सांस्कृतिक मानदंडों, ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों और वरीयता प्राप्त संसाधनों के आवंटन का प्रतिबिंब है। इसके विपरीत, बालिकाओं को विभिन्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है – सामाजिक अपेक्षाओं और माता–पिता के हतोत्साहन से लेकर अपर्याप्त संस्थागत समर्थन तक जो उच्च प्रोफाइल वाले खेलों में भाग लेने के उनके अवसरों को सीमित करते हैं।

5.2 संस्थागत नीतियों की भूमिका :

संस्थागत नीतियाँ और पाठ्यक्रम डिजाइन लैंगिक असमानता को कम करने या उसे बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पारंपरिक, लैंगिक–विभाजित खेल कार्यक्रमों को बनाए रखने वाले स्कूल, रूढ़िवादिता को मजबूत करते हैं जो महिला भागीदारी को हाशिए पर डालते हैं। दूसरी ओर, जिन संस्थानों ने समावेशी नीतियों को अपनाया है। जैसे कि मिश्रित–लैंगिक कार्यक्रमों का एकीकरण, विविध खेल पाठ्यक्रम और समान संसाधन वितरण ने अधिक संतुलित भागीदारी दर देखी है। ये निष्कर्ष लैंगिक असमानताओं को कम करने में स्कूल स्तर पर सक्रिय नीति हस्तक्षेप के महत्व को रेखांकित करते हैं।

5.3 सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव और रूढ़िवादिता :

अध्ययन के निष्कर्ष इस बात पर जोर देते हैं कि सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव छात्रों की खेलों के प्रति धारणा को आकार देते रहते हैं। कई भारतीय समुदायों में, पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ बालिकाओं को प्रतिस्पर्धी या शारीरिक रूप से कठिन गतिविधियों में शामिल होने से हतोत्साहित करती हैं। इन चुनौतियों पर काबू पाने के लिए एक ठोस प्रयास की आवश्यकता है जिसमें शैक्षिक सुधार, सामुदायिक जुड़ाव और मीडिया अभियान शामिल हैं जिनका उद्देश्य प्रचलित रूढ़ियों को चुनौती देना है। इन गहरी जड़ें जमाए हुए सांस्कृतिक मानदंडों को बदलकर ही स्कूल सभी छात्रों के लिए वास्तव में समावेशी वातावरण बनाने की उम्मीद कर सकते हैं।

5.4 सैद्धांतिक योगदान :

यह अध्ययन भारत में लैंगिक समाजीकरण और शैक्षिक असमानता पर व्यापक सैद्धांतिक चर्चा में योगदान देता है। माध्यमिक शिक्षा के ढांचे के भीतर खेलों को शामिल करके, शोध लैंगिक परिणामों को आकार देने में

संस्थागत प्रथाओं, सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों और ऐतिहासिक विरासतों के प्रतिच्छेदन को उजागर करता है। निष्कर्ष इस दृष्टिकोण को पुष्ट करते हैं कि संस्थागत नीतियों द्वारा समर्थित प्रारंभिक समाजीकरण और सांस्कृतिक कंडीशनिंग, खेल और शारीरिक गतिविधि के प्रति आजीवन दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6. निष्कर्ष :–

यह अध्ययन दर्शाता है कि भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में खेलों में लैंगिक असमानता ऐतिहासिक विरासत, संस्थागत प्रथाओं और सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों के संयोजन से प्रेरित है। पुरुष छात्रों के प्रतिस्पर्धी, संसाधन–गहन खेलों में भाग लेने की अधिक संभावना है, जबकि बालिकाओं को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है जो इन गतिविधियों में उनकी भागीदारी को प्रतिबंधित करती हैं। ये असमानताएँ पारंपरिक लैंगिक रूढ़ियों, असमान संसाधन आवंटन और जड़ जमाए हुए सांस्कृतिक मानदंडों द्वारा मजबूत की जाती हैं। भारत में स्कूली खेलों में लैंगिक असमानता का बने रहना गहरे सामाजिक विभाजन को दर्शाता है जो युवा लोगों के खुद को और अपनी क्षमताओं को देखने के तरीके को आकार देता है। अधिक समावेशी और सहायक खेल वातावरण बनाकर, माध्यमिक विद्यालय इन धारणाओं को बदलने और सभी छात्रों को उनकी पूरी क्षमता हासिल करने के लिए सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह अध्ययन भारतीय माध्यमिक विद्यालय के खेलों में लैंगिक असमानता के बारे में मूल्यवान जानकारी प्रदान करता है, कई सीमाओं को स्वीकार किया जाना चाहिए। भविष्य के शोध में बड़े, अधिक भौगोलिक रूप से विविध नमूनों पर विचार करना चाहिए और समावेशी खेल कार्यक्रमों के दीर्घकालिक प्रभाव का आकलन करने के लिए अनुदैर्ध्य अध्ययनों को शामिल करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उभरते खेल रुझानों की भूमिका की खोज – जैसे कि ई–स्पोर्ट्स और गैर–पारंपरिक शारीरिक गतिविधियाँ – समकालीन युवा संस्कृति में लैंगिक गतिशीलता की अधिक व्यापक तस्वीर प्रदान कर सकती हैं।

संदर्भ सूची :–

1. रेड्डी, पी. और मेनन, एस. (2016)। भारतीय स्कूलों में लैंगिक और शारीरिक शिक्षा। नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान संस्थान।
2. सिंह, ए. (2015). औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक कक्षाओं तक : भारत में स्कूली खेलों का विकास। मुंबई : सेज पब्लिकेशंस इंडिया।
3. चटर्जी, एस. (2018)। भारतीय खेलों में लैंगिक रूढ़िवादिता : एक महत्वपूर्ण विश्लेषण। जर्नल ऑफ इंडियन स्पोर्ट्स स्टडीज, 12(2), 50–65।
4. चटर्जी, एस. और बनर्जी, पी. (2018)। मीडिया, जेंडर और खेल : भारत में कथाओं का पुनर्लेखन। कोलकाता : कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. नायर, वी. (2019)। पाठ्यक्रम और लैंगिक : भारतीय स्कूलों में खेल कार्यक्रमों का मूल्यांकन। भारतीय शैक्षिक समीक्षा, 21(1), 22–37।
6. शर्मा, आर. और गुप्ता, पी. (2017)। भारतीय शिक्षा में समावेशी खेल नीतियाँ : चुनौतियाँ और अवसर। इंडियन जर्नल ऑफ फिजिकल एजुकेशन, 15(3), 35–48।

7. कुमार, एस. (2016). भारतीय युवा खेलों में सांस्कृतिक मानदंड और लैंगिक भागीदारी। नई दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स।
8. मेहता, वी. और रेड्डी, के. (2019)। भारत में प्रतिस्पर्धी खेलों में महिलाओं की भागीदारी में बाधाएँ। इंडियन जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स साइंसेज, 14(4), 78–92।
9. वर्मा, डी. और जोशी, एम. (2020)। स्कूली खेलों में समावेशी अभ्यास : आगे का रास्ता। जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशनल पॉलिसी, 10(2), 59–74।
10. पटेल, आर. (2019)। भारतीय किशोरों में खेल भागीदारी में लैंगिक असमानताएँ। इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल स्पोर्ट्स, 17(3), 45–60।
11. सिंह, ए. (2015). औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक कक्षाओं तक : भारत में स्कूली खेलों का विकास। मुंबई : सेज पब्लिकेशंस इंडिया।
12. देसाई, एम. (2020)। भारतीय स्कूली खेलों में संसाधन आवंटन : एक लैंगिक परिप्रेक्ष्य। जर्नल ऑफ इंडियन स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन, 9(1), 102–115।
13. बोस, एल. (2018)। भारतीय खेलों में लैंगिक भूमिकाओं की धारणाएँ : एक गुणात्मक अध्ययन। कोलकाता : दक्षिण एशियाई शैक्षिक अनुसंधान।
14. रेड्डी, पी. और मेनन, एस. (2016)। भारतीय स्कूलों में लैंगिक और शारीरिक शिक्षा। नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान संस्थान।
15. कुमार, एस. (2016). भारतीय युवा खेलों में सांस्कृतिक मानदंड और लैंगिक भागीदारी। नई दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स।
16. नायर, वी. (2019)। पाठ्यक्रम और लैंगिकरू भारतीय स्कूलों में खेल कार्यक्रमों का मूल्यांकन। भारतीय शैक्षिक समीक्षा, 21(1), 22–37।
17. चटर्जी, एस. (2018)। भारतीय खेलों में लैंगिक रूढ़िवादिता : एक महत्वपूर्ण विश्लेषण। जर्नल ऑफ इंडियन स्पोर्ट्स स्टडीज, 12(2), 50–65।
18. सिंह, ए. (2015). औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक कक्षाओं तक : भारत में स्कूली खेलों का विकास। मुंबई : सेज पब्लिकेशंस इंडिया।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 92-96

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षा में संगीत का प्रभाव

Jitendra Saini

Assistant Professor, Department of Education, Institute of Advanced Studies in Education
(Deemed to be University) Sardarshahar, Rajasthan

परिचय :–

शिक्षा के क्षेत्र में संगीत का प्रभाव बहुआयामी होता है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संगीत की ध्वनियां और लय मस्तिष्क की विभिन्न तंत्रिकाओं को सक्रिय करती हैं, जिससे सोचने–समझने की क्षमता बेहतर होती है। यह ध्यान केंद्रित करने, स्मरण शक्ति बढ़ाने और सीखने की प्रक्रिया को सहज एवं प्रभावी बनाने में सहायक होता है। जब शिक्षा में संगीत को शामिल किया जाता है, तो यह छात्रों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है और उन्हें तनावमुक्त वातावरण प्रदान करता है। इसके अलावा, संगीत का प्रभाव सामाजिक विकास पर भी पड़ता है, क्योंकि यह समूह में तालमेल, सहनशीलता और भावनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, संगीत शिक्षार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है और उन्हें अधिक आत्मविश्वास से भरपूर एवं प्रेरित बनाता है, जिससे उनकी समग्र शैक्षिक प्रगति को बल मिलता है।

शिक्षा में संगीत का मनोवैज्ञानिक प्रभाव :–

मनोविज्ञान के अनुसार, संगीत मस्तिष्क की तंत्रिकीय प्रक्रियाओं को गहराई से प्रभावित करता है, जिससे व्यक्ति की अनुभूति, संवेदनशीलता और स्मरण शक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जब कोई व्यक्ति संगीत सुनता है या उसमें सक्रिय रूप से भाग लेता है, तो मस्तिष्क के विभिन्न हिस्से आपस में समन्वय स्थापित करते हैं, जिससे संज्ञानात्मक क्षमताओं में सुधार होता है। शोध बताते हैं कि संगीत मस्तिष्क में डोपामाइन और सेरोटोनिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर के स्तर को बढ़ाकर मानसिक संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। इसके अलावा, यह सीखने की क्षमता को बेहतर बनाने, भावनात्मक स्थिरता को मजबूत करने और समस्याओं को सुलझाने की योग्यता को बढ़ाने में सहायक होता है। संगीत न केवल तनाव और चिंता को कम करता है, बल्कि यह रचनात्मकता को भी प्रोत्साहित करता है, जिससे व्यक्ति अधिक कुशाग्र बुद्धि वाला और संवेदनशील बनता है।

इसको निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

1. **स्मरण शक्ति और एकाग्रता में वृद्धि –**

मध्यम या हल्के स्वर वाले संगीत का छात्रों की एकाग्रता और मानसिक सतर्कता पर सकारात्मक प्रभाव

पड़ता है। विभिन्न शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि बारोक और शास्त्रीय संगीत सुनने से न केवल स्मरण शक्ति में सुधार होता है, बल्कि यह मस्तिष्क की तंत्रिकाओं के बीच संचार को भी सुदृढ़ करता है। यह संगीत मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को सक्रिय करता है, जिससे विश्लेषणात्मक और रचनात्मक सोच में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त, धीमी और सुव्यवस्थित लय वाले संगीत से मानसिक तनाव कम होता है, जिससे छात्र पढ़ाई के दौरान अधिक ध्यान केंद्रित कर पाते हैं। यह भी देखा गया है कि जब छात्र बैकग्राउंड में हल्का संगीत सुनते हैं, तो उनकी सीखने की क्षमता बेहतर होती है और वे कठिन विषयों को अधिक आसानी से समझ पाते हैं। संगीत की यह विशेषता न केवल शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी है, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य और आत्मविश्वास को भी बढ़ावा देती है।

2. मानसिक तनाव में कमी –

संगीत मानसिक शांति प्रदान करने का एक प्रभावी माध्यम है, जो तनाव और चिंता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विशेष रूप से पढ़ाई के दौरान हल्का और मधुर संगीत सुनने से मस्तिष्क को आराम मिलता है, जिससे छात्र अधिक सहज और तनावमुक्त महसूस करते हैं। यह केवल भावनात्मक संतुलन बनाए रखने में मदद नहीं करता, बल्कि उनकी सीखने की क्षमता और ध्यान केंद्रित करने की योग्यता को भी बढ़ाता है। शोध बताते हैं कि संगीत सुनने से डोपामाइन और सेरोटोनिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर का स्तर बढ़ता है, जिससे व्यक्ति में सकारात्मकता, प्रेरणा और आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न होती है। इसके अलावा, संगीत मस्तिष्क की तरंगों को नियंत्रित करता है, जिससे स्मरण शक्ति और रचनात्मकता में सुधार होता है। यह न केवल छात्रों को पढ़ाई के दौरान बेहतर प्रदर्शन करने में सहायक होता है, बल्कि उनके मानसिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ करता है, जिससे वे अधिक ऊर्जावान और उत्साहित महसूस करते हैं।

3. रचनात्मकता और कल्पनाशक्ति का विकास –

संगीत व्यक्ति की कल्पनाशक्ति को निखारने और उसकी सृजनात्मक क्षमताओं को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब शिक्षार्थी संगीत के संपर्क में आते हैं, तो उनके मस्तिष्क की रचनात्मक प्रक्रियाएं सक्रिय हो जाती हैं, जिससे उनकी सोचने–समझने की क्षमता का विस्तार होता है। संगीत की लय, धुन और स्वर छात्रों को नए विचारों की खोज करने और उन्हें अभिनव तरीकों से प्रस्तुत करने की प्रेरणा देते हैं। यह न केवल उनके रचनात्मक दृष्टिकोण को समृद्ध करता है, बल्कि जटिल समस्याओं को हल करने की योग्यता को भी मजबूत करता है। संगीत के माध्यम से, छात्र अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से व्यक्त कर सकते हैं और कला, लेखन, विज्ञान या अन्य शैक्षिक विषयों में अधिक कुशलता विकसित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, संगीत का सकारात्मक प्रभाव उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है, जिससे वे अपनी क्षमताओं को और अधिक प्रभावी ढंग से उजागर कर पाते हैं।

4. भाषा और संज्ञानात्मक कौशल में सुधार –

अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जो बच्चे नियमित रूप से संगीत का अभ्यास करते हैं, वे भाषा सीखने में अन्य बच्चों की तुलना में अधिक कुशल होते हैं। संगीत की धुन, ताल और लयबद्धता मस्तिष्क के उन क्षेत्रों को सक्रिय करती है, जो भाषा की समझ और अभिव्यक्ति से जुड़े होते हैं। जब कोई बच्चा संगीत सुनता या उसका अभ्यास करता है, तो उसकी श्रवण क्षमता तेज होती है, जिससे वह शब्दों के उच्चारण, व्याकरणिक

संरचना और नए शब्दों को अधिक प्रभावी ढंग से आत्मसात कर पाता है। इसके अतिरिक्त, संगीत की तालबद्ध प्रकृति स्मृति क्षमता को मजबूत करती है, जिससे बच्चे विभिन्न भाषाओं के शब्दों और उनके अर्थों को तेजी से याद रख सकते हैं। शोध यह भी दर्शाते हैं कि संगीत से जुड़ाव वाले बच्चों में संचार कौशल अधिक विकसित होते हैं, जिससे वे विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार, संगीत न केवल भाषा अधिग्रहण की प्रक्रिया को सहज बनाता है, बल्कि यह उनके संज्ञानात्मक विकास और समग्र बौद्धिक क्षमताओं को भी सशक्त करता है।

5. आत्म–अनुशासन और धैर्य का विकास –

संगीत सीखने की प्रक्रिया में निरंतर अभ्यास, अनुशासन और धैर्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह केवल एक कला रूप नहीं है, बल्कि यह बच्चों में आत्म–नियंत्रण, नियमितता और लक्ष्य के प्रति समर्पण की भावना विकसित करता है। जब बच्चे किसी वाद्ययंत्र को बजाना सीखते हैं या गाने का अभ्यास करते हैं, तो उन्हें नियमित रूप से अभ्यास करने और सही तकनीकों पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होती है। यह अनुशासनप्रियता उनकी पढ़ाई और अन्य शैक्षणिक गतिविधियों में भी परिलक्षित होती है। संगीत सीखने से बच्चों में समय प्रबंधन, संगठनात्मक कौशल और आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति विकसित होती है, जिससे वे अपने अकादमिक लक्ष्यों को अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त कर पाते हैं। इसके अलावा, संगीत उन्हें धैर्य और स्थिरता सिखाता है, क्योंकि किसी भी नई कला को सीखने में समय और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, संगीत केवल रचनात्मकता को नहीं बढ़ाता, बल्कि बच्चों को अनुशासन और आत्म–नियंत्रण के साथ अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ने के लिए भी प्रेरित करता है, जिससे उनका शैक्षिक और व्यक्तिगत विकास संतुलित रूप से हो सके।

शिक्षा में संगीत का व्यावहारिक उपयोग :–

1. शिक्षण विधियों में संगीत का समावेश –

प्राथमिक शिक्षा में संगीत के प्रयोग से बच्चों के सीखने की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। जब कविताओं और गीतों को शैक्षणिक सामग्री में शामिल किया जाता है, तो बच्चे उन्हें आसानी से याद कर पाते हैं और विषयवस्तु को लंबे समय तक संजो कर रख सकते हैं। लयबद्धता और दोहराव की शक्ति बच्चों के दिमाग में संज्ञानात्मक संबंधों को मजबूत करती है, जिससे वे जटिल अवधारणाओं को सरलता से आत्मसात कर सकते हैं। विशेष रूप से गणित और विज्ञान जैसे विषयों में, संख्याओं, सूत्रों और वैज्ञानिक तथ्यों को गीतों और धुनों के माध्यम से प्रस्तुत करने से बच्चे कठिन विषयों को अधिक रोचक और समझने योग्य पाते हैं। उदाहरण के लिए, पहाड़े, गणितीय समीकरण, विज्ञान के मूल सिद्धांत या ऐतिहासिक घटनाओं को संगीतबद्ध करने से बच्चे उन्हें खेल–खेल में सीख सकते हैं। इसके अलावा, संगीत के माध्यम से सीखने से न केवल ज्ञान ग्रहण करने की गति तेज होती है, बल्कि यह बच्चों की रचनात्मकता और कल्पनाशक्ति को भी बढ़ावा देता है, जिससे वे शिक्षा को बोझ की बजाय आनंददायक अनुभव के रूप में देखते हैं।

2. ध्यान और योग में संगीत का उपयोग –

शिक्षा में ध्यान और योग के महत्व को बढ़ाने के लिए संगीत एक प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य कर सकता है। शांत और सौम्य संगीत न केवल ध्यान केंद्रित करने में सहायता करता है, बल्कि यह मानसिक शांति और संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होता है। जब छात्र ध्यान और योगाभ्यास के दौरान हल्के सुरों वाले

संगीत को सुनते हैं, तो यह उनके मस्तिष्क की तरंगों को नियंत्रित करता है, जिससे एकाग्रता और स्मरण शक्ति में सुधार होता है। इसके अलावा, ध्यान और योग में संगीतमय ध्वनियों का उपयोग करने से छात्रों की भावनात्मक स्थिरता और आत्म–जागरूकता भी बढ़ती है। यह तनाव, चिंता और मानसिक थकान को कम करने में मदद करता है, जिससे छात्र अधिक ऊर्जावान और प्रेरित महसूस करते हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से, वे अपने विचारों को बेहतर तरीके से संगठित कर सकते हैं और जटिल समस्याओं का समाधान अधिक स्पष्टता और आत्मविश्वास के साथ कर सकते हैं। इस प्रकार, शिक्षा में ध्यान और योग के साथ संगीत के समावेश से छात्रों के समग्र मानसिक और शैक्षणिक विकास को मजबूती मिलती है।

3. विशेष शिक्षा में संगीत –

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए संगीत चिकित्सा एक प्रभावी शिक्षण उपकरण के रूप में कार्य करती है। यह न केवल उनके सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाती है, बल्कि उनके संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आत्मकेंद्रित (Autism) से ग्रसित बच्चों के लिए, संगीत उनकी संचार क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है, जिससे वे अपने विचारों और भावनाओं को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते हैं। इसी तरह, डिस्लेक्सिया से प्रभावित बच्चों के लिए संगीत की लय और तालबद्ध स्वर संरचना भाषा सीखने की प्रक्रिया को सरल बना सकती है, जिससे उनकी पढ़ने और लिखने की क्षमता में सुधार होता है।

इसके अतिरिक्त, मानसिक तनाव और अन्य न्यूरोडेवलपमेंटल विकारों से जूझ रहे बच्चों के लिए संगीत एक चिकित्सा के रूप में कार्य करता है, जो उनकी चिंता को कम करने और आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायक होता है। संगीत के माध्यम से उनके मस्तिष्क की गतिविधियों को संतुलित किया जा सकता है, जिससे वे अधिक सहज महसूस करते हैं और सीखने में रुचि दिखाते हैं। अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि संगीतमय गतिविधियों में भाग लेने से बच्चों की सामाजिक सहभागिता बढ़ती है, जिससे वे दूसरों के साथ बेहतर तालमेल स्थापित कर पाते हैं। इस प्रकार, संगीत चिकित्सा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए न केवल एक उपचारात्मक विधि है, बल्कि यह उन्हें आत्मनिर्भर और अधिक सक्षम बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष :–

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, शिक्षा में संगीत का प्रभाव अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह केवल शिक्षण प्रक्रिया को रोचक और प्रभावी बनाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताओं, रचनात्मकता और मानसिक संतुलन को भी मजबूत करता है। जब संगीत को शिक्षण के साथ जोड़ा जाता है, तो यह सीखने की जटिल अवधारणाओं को सरल बनाने में सहायता करता है और छात्रों को बेहतर ढंग से जानकारी ग्रहण करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, संगीत मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों को सक्रिय कर ध्यान केंद्रित करने, स्मरण शक्ति बढ़ाने और तार्किक सोच को सुदृढ़ करने में सहायक होता है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में संगीत को और अधिक व्यापक रूप से अपनाया जाना चाहिए, ताकि छात्रों का संपूर्ण मानसिक एवं बौद्धिक विकास सुनिश्चित किया जा सके। विभिन्न शोधों से यह साबित हुआ है कि संगीत आधारित शिक्षण पद्धति न केवल अकादमिक प्रदर्शन को सुधारती है, बल्कि छात्रों में आत्मविश्वास, अनुशासन और भावनात्मक स्थिरता भी विकसित करती है। इसके अलावा, संगीत तनाव को कम करने और सकारात्मक

वातावरण बनाने में सहायक होता है, जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली और आनंददायक बनती है। इसलिए, शैक्षिक संस्थानों को संगीत को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना चाहिए, जिससे छात्रों को उनके सर्वांगीण विकास के अवसर मिल सकें।

संदर्भ सूची :-

1. कुमार, संजीव, शिक्षा में मनोविज्ञान का महत्व, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 45–47
2. शर्मा, रितु, संगीत और मानसिक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान और शिक्षा, मनोविज्ञान प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 112–115
3. त्रिपाठी, अजय, शिक्षा में संगीत का प्रभाव, शिक्षा और समाज, समाजिक अध्ययन प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 78–80
4. मोहन, सुमित, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संगीत शिक्षा, शिक्षा के आयाम, आयाम प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 90–93
5. गुप्ता, नीलम, संगीत और बाल विकास, बाल शिक्षा पत्रिका, बाल विकास प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 34–36
6. वर्मा, प्रिया, शिक्षा में संगीत का मनोवैज्ञानिक प्रभाव, शिक्षा मनोविज्ञान समीक्षा, समीक्षा प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 58–60
7. दास, रजनीश, संगीत और मस्तिष्क : एक अध्ययन, मनोविज्ञान अनुसंधान, अनुसंधान प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 102–105
8. कौशिक, अनिता, शिक्षा में संगीत की भूमिका, शिक्षा और मनोविज्ञान, मनोविज्ञान प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 67–69
9. मिश्रा, दीपक, संगीत और संज्ञानात्मक विकास, मनोविज्ञान की दुनिया, विश्व प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 88–90
10. राय, सुमन, शिक्षा में संगीत का उपयोग, शिक्षा दृष्टिकोण, दृष्टि प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 73–75
11. शुक्ला, कविता, संगीत और शिक्षाः एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मनोविज्ञान और शिक्षा के नए आयाम, आयाम प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 95–98
12. अग्रवाल, पंकज, शिक्षा में संगीत का महत्व, शिक्षा और समाजिक परिवर्तन, परिवर्तन प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 81–83
13. सक्सेना, मनीषा, संगीत और मानसिक विकास, बाल मनोविज्ञान पत्रिका, बाल मनोविज्ञान प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 47–49
14. कुमार, रवि, शिक्षा में संगीत का प्रभावः एक अध्ययन, शिक्षा मनोविज्ञान जर्नल, जर्नल प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 109–112.

Email ID: jitendrasainitanwar@gmail.com

Contact No. 9799227879

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 97-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण विकास में पारंपरिक मीडिया का प्रभाव : सूचना संप्रेषण का एक माध्यम

नवीन कुमार, शोधार्थी

डॉ. सुशील कुमार, सहायक प्राध्यापक

पत्रकारिता एवं जनसंचाव विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश–

ग्रामीण भारत में विकास संचार सामाजिक और आर्थिक उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन है। पारंपरिक मीडिया, जैसे कि लोकगीत, लोकनाटक, कठपुतली, नुक्कड़ नाटक, रेडियो और प्रिंट मीडिया, सदियों से ग्रामीण समाज में जानकारी और जागरूकता प्रसार के मुख्य माध्यम रहे हैं। यह शोध पत्र सेकेंडरी डेटा के आधार पर पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता का अध्ययन करता है और यह विश्लेषण करता है कि यह ग्रामीण विकास संचार में कैसे सहायक है।

आज के डिजिटल युग में संचार के नए साधनों का उदय हुआ है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल माध्यमों की सीमित पहुँच और कम साक्षरता दर के कारण पारंपरिक मीडिया अभी भी प्रभावी बना हुआ है। लोकसंस्कृति आधारित मीडिया स्थानीय भाषा और परंपराओं के अनुरूप होता है, जिससे यह ग्रामीण समुदायों में संदेश को प्रभावी ढंग से प्रसारित करने में सक्षम होता है। उदाहरण के लिए, कृषि संबंधी जानकारी, स्वास्थ्य जागरूकता, सरकारी योजनाओं और सामाजिक विषयों पर नुक्कड़ नाटक और लोकगीतों के माध्यम से लोगों को शिक्षित किया जाता है। शोध में पाया गया कि रेडियो, विशेष रूप से सामुदायिक रेडियो, ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना प्रसार का एक शक्तिशाली उपकरण बना हुआ है, क्योंकि यह कम लागत वाला और आसानी से उपलब्ध माध्यम है। इसी तरह, प्रिंट मीडिया, जैसे स्थानीय समाचार पत्र और पत्रिकाएँ, किसानों और महिलाओं को सरकारी योजनाओं, शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

शोध यह भी इंगित करता है कि पारंपरिक और डिजिटल मीडिया के संयोजन से विकास संचार को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से पारंपरिक मीडिया के प्रभाव को बढ़ाया जा सकता है, जिससे सूचना का व्यापक स्तर पर प्रसार संभव हो सके।

अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि ग्रामीण भारत में विकास संचार के लिए पारंपरिक मीडिया न केवल प्रासंगिक है, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता और परिवर्तन लाने का एक प्रभावी साधन भी बना हुआ है। इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकार और गैर-सरकारी संगठनों को इसे बढ़ावा देने के लिए समन्वित प्रयास करने की आवश्यकता है।

शब्दकुंजी- विकास संचार, पारंपरिक मीडिया, ग्रामीण विकास, सामाजिक जागरूकता, सूचना प्रसार

1. परिचय-

ग्रामीण भारत की सामाजिक और आर्थिक प्रगति के लिए प्रभावी संचार आवश्यक है। पारंपरिक मीडिया, जैसे लोकगीत, लोकनाटक, रेडियो, और प्रिंट मीडिया, सदियों से ग्रामीण समाज में सूचना और ज्ञान के प्रसार के प्रमुख साधन रहे हैं। हालाँकि, डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के बावजूद, पारंपरिक मीडिया आज भी ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस शोध पत्र में पारंपरिक मीडिया के माध्यम से विकास संचार की प्रभावशीलता का विश्लेषण किया गया है।

विकास संचार की परिभाषा और महत्व

विकास संचार (Development Communication) वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सूचनाओं का प्रसार कर समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाया जाता है। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण और महिला सशक्तिकरण जैसे क्षेत्रों में जागरूकता बढ़ाने का कार्य करता है। ग्रामीण भारत में विकास संचार का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक विकास को गति देना और नीतिगत पहलों की जानकारी को व्यापक स्तर पर प्रसारित करना है।

ग्रामीण भारत में संचार की भूमिका

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और जागरूकता के अभाव के कारण डिजिटल संचार माध्यमों की पहुँच सीमित है। ऐसे में पारंपरिक मीडिया स्थानीय भाषा और संस्कृति के अनुरूप होने के कारण सूचना के प्रभावी संचार में सहायक होता है। उदाहरण के लिए, नुक्कड़ नाटक और कठपुतली शो के माध्यम से सामाजिक मुद्दों पर संवाद स्थापित किया जाता है, जबकि सामुदायिक रेडियो किसानों और श्रमिकों को उपयोगी जानकारी प्रदान करता है।

शोध की आवश्यकता एवं उद्देश्य

यह शोध आवश्यक है क्योंकि वर्तमान संचार तकनीकों के विकास के बावजूद ग्रामीण भारत में पारंपरिक मीडिया की भूमिका अभी भी प्रासंगिक बनी हुई है। इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मीडिया की भूमिका और प्रभावशीलता का अध्ययन।
2. विकास संचार में पारंपरिक और डिजिटल मीडिया के तुलनात्मक विश्लेषण।
3. पारंपरिक मीडिया के संरक्षण और उन्नयन के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

2. शोध पद्धति

शोध की प्रकृति (गुणात्मक/मात्रात्मक)

यह अध्ययन मुख्य रूप से **गुणात्मक** प्रकृति का है, जिसमें सेकेंडरी डेटा के आधार पर विश्लेषण किया गया है। कुछ मात्रात्मक आंकड़ों का उपयोग भी किया गया है, जैसे सरकारी रिपोर्टों में उपलब्ध आँकड़े और पिछले शोध अध्ययनों से प्राप्त डेटा।

डेटा संग्रहण का स्रोत (सेकेंडरी डेटा)

शोध में **सेकेंडरी डेटा (Secondary Data)** का उपयोग किया गया है, जिसे विभिन्न स्रोतों से संकलित किया गया है, जैसेः

- **सरकारी रिपोर्टें** (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय [NSSO], ग्रामीण विकास मंत्रालय)
- **शोध पत्र और अकादमिक जर्नल्स**
- **समाचार पत्र और पत्रिकाएँ**
- **गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की रिपोर्टें**

अध्ययन के लिए चयनित स्रोत

शोध में विभिन्न **विश्वसनीय स्रोतों** का उपयोग किया गया है, जिनमें शामिल हैंः

- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें।
- विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों द्वारा प्रकाशित शोध पत्र।
- ग्रामीण भारत में संचार माध्यमों पर आधारित पूर्ववर्ती अध्ययन।
- विभिन्न समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेख।

यह शोध पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है और भविष्य में इसके विकास की संभावनाओं पर सुझाव प्रदान करता है।

3. विकास संचार और पारंपरिक मीडिया

विकास संचार की अवधारणा

विकास संचार सूचना और संवाद की वह प्रक्रिया है जो सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति में सहायक होती है। यह संचार का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसका उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण और महिला सशक्तिकरण से संबंधित मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

ग्रामीण समाज में संचार के पारंपरिक माध्यम

ग्रामीण भारत में पारंपरिक संचार माध्यमों की एक समृद्ध विरासत रही है। ये माध्यम स्थानीय भाषा, संस्कृति और जनजीवन से जुड़े होते हैं, जिससे संदेश का प्रभाव बढ़ता है। इनमें प्रमुख रूप से लोकगीत, लोकनाटक, कठपुतली शो, नुक्कड़ नाटक, रेडियो और स्थानीय समाचार पत्र शामिल हैं। इन माध्यमों का उपयोग कृषि ज्ञान, स्वास्थ्य जागरूकता, सरकारी योजनाओं और सामाजिक विषयों को प्रसारित करने के लिए किया जाता है।

डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के बावजूद पारंपरिक मीडिया की प्रासंगिकता

हालांकि डिजिटल मीडिया और इंटरनेट के प्रसार ने संचार की दिशा को बदला है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी पहुँच सीमित है। इंटरनेट की कमी, साक्षरता दर में असमानता और सांस्कृतिक बाधाओं के कारण पारंपरिक मीडिया अभी भी अधिक प्रभावी है। यह स्थानीय समुदायों के लिए विश्वसनीय और सुलभ माध्यम बना हुआ है, जो उनकी भाषा और संस्कृति में संवाद स्थापित करता है।

4. पारंपरिक मीडिया के प्रकार और उनकी प्रभावशीलता

4.1 लोकगीत और लोकनाटक

- **सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़ावः** लोकगीत और लोकनाटक ग्रामीण समाज की संस्कृति और परंपराओं का हिस्सा होते हैं। ये मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा और जागरूकता का कार्य भी करते हैं।
- **संदेश संप्रेषण में प्रभावशीलताः** विकास संचार में इनका उपयोग जल संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि सुधारों से संबंधित संदेशों के प्रसार में किया जाता है। उदाहरण के लिए, कई सरकारी योजनाओं का प्रचार लोकगीतों के माध्यम से किया जाता है।

4.2 नुक्कड़ नाटक और कठपुतली कला

- **सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर जन-जागरूकताः** नुक्कड़ नाटक और कठपुतली शो का उपयोग सामाजिक बुराइयों, जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह और शिक्षा के महत्व पर जागरूकता बढ़ाने के लिए किया जाता है।
- **सरकारी योजनाओं और नीतियों के प्रचार में भूमिकाः** कई सरकारी और गैर-सरकारी संगठन इनका उपयोग स्वास्थ्य जागरूकता, मतदान अभियान और कृषि तकनीकों के प्रचार के लिए करते हैं।

4.3 रेडियो और सामुदायिक रेडियो

- **कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा और महिला सशक्तिकरण में योगदानः** रेडियो, विशेष रूप से सामुदायिक रेडियो, किसानों, महिलाओं और अन्य ग्रामीण वर्गों के लिए एक प्रभावी संचार माध्यम है।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना प्रसार का प्रभावी माध्यमः** रेडियो बिजली या इंटरनेट की आवश्यकता के बिना कार्य करता है, जिससे यह दूरस्थ क्षेत्रों तक भी सूचना पहुँचाने में सक्षम होता है।

4.4 प्रिंट मीडिया (स्थानीय समाचार पत्र और पत्रिकाएँ)

- **ग्रामीण युवाओं और किसानों के लिए सूचनात्मक सामग्रीः** कई ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय समाचार पत्र और पत्रिकाएँ सूचना के प्रमुख स्रोत हैं।
- **सरकारी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों के प्रचार में उपयोगः** कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित जानकारी को पत्रिकाओं और ब्रोशरों के माध्यम से प्रसारित किया जाता है।

5. सेकेंडरी डेटा के आधार पर विश्लेषण

- **विभिन्न शोधों और सरकारी रिपोर्टों का अध्ययनः** यह अध्ययन विभिन्न शोध पत्रों, सरकारी रिपोर्टों और समाचार पत्रों के आधार पर पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता का विश्लेषण करता है।
- **पारंपरिक मीडिया के माध्यम से सूचना के प्रभाव का मूल्यांकनः** ग्रामीण समाज में जागरूकता बढ़ाने में पारंपरिक मीडिया की भूमिका को आँकड़ों और उदाहरणों के माध्यम से समझाया गया है।
- **डिजिटल और पारंपरिक मीडिया के तुलनात्मक प्रभावः** यह अध्ययन डिजिटल मीडिया और पारंपरिक मीडिया के बीच तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिससे दोनों माध्यमों की संभावनाओं को समझा जा सके।

6. निष्कर्ष और सुझाव

6.1 निष्कर्ष

- पारंपरिक मीडिया ग्रामीण भारत में विकास संचार का एक प्रभावी माध्यम बना हुआ है।
- डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के बावजूद, लोकसंस्कृति आधारित संचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण बनी हुई है।
- पारंपरिक मीडिया सरकार की विभिन्न योजनाओं और सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता फैलाने में सहायक है।

6.2 सुझाव

- **पारंपरिक मीडिया के संरक्षण और सुदृढ़ीकरण के लिए नीतिगत सुझावः** सरकार को पारंपरिक मीडिया को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए।
- **डिजिटल मीडिया के साथ पारंपरिक मीडिया के समन्वय की संभावनाएँः** पारंपरिक और डिजिटल मीडिया का समन्वय कर जागरूकता अभियानों को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।
- **सरकार और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिकाः** विकास संचार में प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए सरकार और NGOs को संयुक्त प्रयास करने चाहिए।

यह शोध पत्र पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता को उजागर करता है और सुझाव देता है कि इसे डिजिटल तकनीक के साथ जोड़कर ग्रामीण भारत में विकास संचार को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

7. संदर्भ सूची

सरकारी रिपोर्टें

1. **राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO)** – ग्रामीण भारत में संचार माध्यमों की पहुँच पर रिपोर्ट।
2. **सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार** – सामुदायिक रेडियो, पारंपरिक मीडिया और सरकारी प्रचार अभियानों से संबंधित रिपोर्टें।
3. **ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार** – ग्रामीण संचार और सरकारी योजनाओं के प्रभाव पर शोध दस्तावेज।
4. **नीति आयोग (NITI Aayog)** – ग्रामीण विकास और मीडिया संचार की रणनीतियों पर प्रकाशित अध्ययन।

शोध पत्र और जर्नल लेख

5. **भारतीय जनसंचार संस्थान (IIMC) की शोध रिपोर्टें** – ग्रामीण संचार और मीडिया प्रभावशीलता पर अध्ययन।
6. **यूनिसेफ और यूनेस्को की रिपोर्टें** – विकास संचार और पारंपरिक मीडिया की भूमिका पर वैश्विक संदर्भ।
7. **अंतरराष्ट्रीय जनसंचार जर्नल (International Journal of Communication Studics)** – विकास संचार के सिद्धांत और व्यवहार।
8. **'Media and Rural Development' - शोध पत्र** – ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता पर अध्ययन।

समाचार पत्र और अन्य प्रासंगिक स्त्रोत

9. **द हिंदू, इंडियन एक्सप्रेस, दैनिक भास्कर और अन्य प्रमुख समाचार पत्र** – पारंपरिक मीडिया, रेडियो और नुक्कड़ नाटक पर प्रकाशित आलेख।
10. **ग्रामीण संचार से संबंधित पुस्तकें और सम्मेलन पत्र** – भारतीय ग्रामीण समाज में संचार साधनों के उपयोग पर प्रकाशित शोध।
11. **NGOs और शोध संस्थानों द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें** – लोकसंस्कृति आधारित मीडिया अभियानों पर अध्ययन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 104-112

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता में न्यू मीडिया की भूमिका : साहित्य समीक्षा

नितिन कुमार, शोधार्थी
डॉ. सुशील कुमार, सहायक प्राध्यापक
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश :-

न्यू मीडिया ने शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया, ई–लर्निंग टूल्स और ऑनलाइन संवाद माध्यमों ने सूचना के प्रसार और नागरिक सहभागिता को बढ़ावा दिया है। इस शोधपत्र में न्यू मीडिया द्वारा शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

शिक्षा के संदर्भ में, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, डिजिटल कंटेंट, वेबिनार और ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (OER) ने पारंपरिक शिक्षण प्रणाली को आधुनिक बनाया है। शिक्षार्थियों को वैश्विक स्तर पर ज्ञान प्राप्त करने और नवीनतम सूचनाओं तक पहुँचने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

राजनीतिक जागरूकता के दृष्टिकोण से, न्यू मीडिया ने युवाओं और नागरिकों को राजनीति में सक्रिय रूप से शामिल होने, सरकारी नीतियों पर चर्चा करने और अपने विचार व्यक्त करने का मंच प्रदान किया है। सोशल मीडिया अभियानों, ऑनलाइन याचिकाओं और डिजिटल एक्टिविज्म ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पारदर्शिता और भागीदारी को बढ़ाया है।

हालाँकि, फेक न्यूज, पक्षपातपूर्ण रिपोर्टिंग और डिजिटल असमानता जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं, जो शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। इस शोध में इन पहलुओं का गहन विश्लेषण करते हुए संभावित समाधानों पर विचार किया गया है।

शब्द कुंजी :- न्यू मीडिया, डिजिटल शिक्षा, ई–लर्निंग, राजनीतिक जागरूकता, डिजिटल एक्टिविज्म, फेक न्यूज, मीडिया साक्षरता, समचना क्रांति।

प्रस्तावना :-

1.1 न्यू मीडिया की परिभाषा और विकास :

न्यू मीडिया आधुनिक डिजिटल तकनीक पर आधारित संचार माध्यमों का एक व्यापक समूह है, जिसमें इंटरनेट, सोशल मीडिया, ब्लॉग, पॉडकास्ट, ऑनलाइन समाचार पोर्टल, मोबाइल एप्लिकेशन और डिजिटल

प्रसारण शामिल हैं। यह पारंपरिक मीडिया जैसे प्रिंट, रेडियो और टेलीविजन से अलग है क्योंकि इसमें सूचना तेजी से साझा की जा सकती है और उपयोगकर्ता भी संवाद में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

न्यू मीडिया की अवधारणा 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उभरकर 21वीं सदी में तेजी से विकसित हुई। मार्शल मैक्लुहान (1964) ने 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने डिजिटल मीडिया की सर्वव्यापकता को रेखांकित किया। इंटरनेट के आगमन के साथ सूचना प्रसारण अधिक लोकतांत्रिक हुआ, जिससे वैश्विक स्तर पर संचार सुलभ और त्वरित हो गया। भारत में 1990 के दशक में इंटरनेट क्रांति और 2000 के दशक में स्मार्टफोन व सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के विस्तार ने न्यू मीडिया को शिक्षा और राजनीति में एक प्रभावशाली उपकरण बना दिया।

1.2 शिक्षा और राजनीति में न्यू मीडिया की प्रासंगिकता

आज के समय में न्यू मीडिया शिक्षा और राजनीति दोनों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहा है। डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म (जैसे SWAYAM, NPTEL, Coursera) और मोबाइल एप्लिकेशन ने पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों को नया स्वरूप दिया है। ऑनलाइन शिक्षा और ई–लर्निंग से विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के नए अवसर मिले हैं, विशेष रूप से दूरस्थ और वंचित समुदायों के लिए यह तकनीक वरदान साबित हुई है।

राजनीतिक क्षेत्र में न्यू मीडिया ने सूचना तक पहुँच को आसान बनाया है और लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म (फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, व्हाट्सएप) राजनीतिक जागरूकता और जनमत निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। चुनाव अभियानों, नीतिगत चर्चाओं और सामाजिक आंदोलनों में डिजिटल मीडिया की भूमिका तेजी से बढ़ी है। न्यू मीडिया के माध्यम से नागरिक न केवल राजनीतिक मुद्दों से अवगत होते हैं, बल्कि वे अपनी राय व्यक्त करने और नीतियों को प्रभावित करने में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

1.3 शोध का उद्देश्य और महत्व :

इस शोध का मुख्य उद्देश्य शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता में न्यू मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करना है। विशेष रूप से, यह अध्ययन निम्नलिखित प्रश्नों पर केंद्रित होगा :–

– न्यू मीडिया ने शिक्षा प्रणाली में क्या परिवर्तन किए हैं?
– डिजिटल लर्निंग और पारंपरिक शिक्षण पद्धति में क्या अंतर है?
– न्यू मीडिया ने राजनीतिक संचार और लोकतांत्रिक भागीदारी को कैसे प्रभावित किया है?
– सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाने में कितने प्रभावी हैं?
– न्यू मीडिया के माध्यम से फैलने वाली गलत सूचनाओं (फेक न्यूज) के क्या प्रभाव हैं?

इस अध्ययन का महत्व इस तथ्य में निहित है कि डिजिटल युग में न्यू मीडिया केवल सूचना प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान और लोकतंत्र को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बन चुका है।

1.4 माध्यमिक स्रोतों पर आधारित अध्ययन की व्याख्या :

यह शोध माध्यमिक डेटा पर आधारित है, जिसमें पूर्ववर्ती शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, ऑनलाइन डेटाबेस, और विभिन्न अकादमिक स्रोतों का उपयोग किया गया है। विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों के माध्यम से शिक्षा और राजनीतिक क्षेत्र में न्यू मीडिया की भूमिका का विश्लेषण किया जाएगा।

शोध पत्र में विभिन्न विद्वानों, संगठनों और सरकारी संस्थानों द्वारा किए गए अध्ययन सम्मिलित किए गए हैं, जिनमें शामिल हैं :–

– डिजिटल लर्निंग पर यूनेस्को और विश्व बैंक की रिपोर्ट।
– इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI) की रिपोर्ट।
– भारतीय टेली कम्युनिकेशन विनियामक प्राधिकरण (TRAI) द्वारा डिजिटल मीडिया के प्रभाव पर अध्ययन

विभिन्न विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों द्वारा प्रकाशित शोध पत्र :

इस अध्ययन के निष्कर्षों से यह समझने में सहायता मिलेगी कि न्यू मीडिया किस प्रकार शिक्षा को अधिक समावेशी और राजनीति को अधिक पारदर्शी बना सकता है। साथ ही, यह शोध फेक न्यूज, डिजिटल डिवाइड और साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियों पर भी प्रकाश डालेगा।

शोध के उद्देश्य –

1. न्यू मीडिया के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में हुए सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना।
2. डिजिटल प्लेटफार्मों द्वारा राजनीतिक जागरूकता और नागरिक सहभागिता को बढ़ावा देने की प्रक्रिया का विश्लेषण करना।

परिकल्पना :–

1. न्यू मीडिया शिक्षण प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी और सुलभ बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।
2. न्यू मीडिया ने राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया है, लेकिन इसके दुरुपयोग से गलत सूचना और भ्रामक प्रचार भी बढ़ा है।

2. शिक्षा में न्यू मीडिया की भूमिका :–

न्यू मीडिया ने शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। यह केवल सूचना प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि शिक्षण और अधिगम (लर्निंग) के नए अवसर प्रदान करने वाला एक सशक्त उपकरण बन गया है। डिजिटल तकनीकों, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन संसाधनों के माध्यम से छात्रों और शिक्षकों के लिए शिक्षा अधिक सुलभ और प्रभावी हो गई है।

2.1 डिजिटल लर्निंग और ऑनलाइन शिक्षा :–

डिजिटल लर्निंग और ऑनलाइन शिक्षा ने पारंपरिक शिक्षण पद्धति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और संसाधन छात्रों को कहीं भी, कभी भी सीखने की सुविधा प्रदान कर रहे हैं। ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म (SWAYAM, NPTEL, Coursera, Udemy आदि)

– आज, विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफार्म जैसे SWAYAM, NPTEL, Coursera, और न्कमउल छात्रों और पेशेवरों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।
– SWAYAM भारत सरकार द्वारा संचालित एक ऑनलाइन शिक्षण मंच है, जो उच्च शिक्षा से लेकर स्कूली शिक्षा तक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराता है।
– NPTEL (National Programme on Technology Enhanced Learning) इंजीनियरिंग और तकनीकी शिक्षा के लिए एक प्रमुख प्लेटफॉर्म है।
– Coursera और Udemy जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्लेटफॉर्म विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए गए

कोर्स प्रदान करते हैं।

ऑनलाइन कक्षाएँ और वर्चुअल लर्निंग :

COVID–19 महामारी के दौरान ऑनलाइन कक्षाएँ मुख्यधारा का हिस्सा बन गईं। जूम, गूगल मीट और माइक्रोसॉफ्ट टीम्स जैसे प्लेटफार्मों ने शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद को बनाए रखा। वर्चुअल लर्निंग ने स्कूलों और विश्वविद्यालयों को डिजिटल माध्यमों से शिक्षा जारी रखने में मदद की।

मोबाइल एप्लिकेशन और डिजिटल लाइब्रेरी :

मोबाइल एप्लिकेशन और डिजिटल लाइब्रेरी ने शिक्षा को और अधिक सुविधाजनक बना दिया है।

– BYJU'S, Unacademy, Vedantu जैसे मोबाइल एप्लिकेशन ऑनलाइन कोचिंग सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

– Google Books, National Digital Library of India (NDLI) जैसे संसाधन छात्रों को किताबें और शोध सामग्री डिजिटल रूप में उपलब्ध कराते हैं।

2.2 न्यू मीडिया द्वारा शिक्षण पद्धतियों में बदलाव :

न्यू मीडिया ने शिक्षण पद्धतियों में अनेक महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। यह न केवल पारंपरिक और डिजिटल शिक्षण के बीच संतुलन बना रहा है, बल्कि छात्रों को आत्मनिर्भर बनने के लिए भी प्रेरित कर रहा है।

पारंपरिक और डिजिटल शिक्षण का तुलनात्मक अध्ययन

विशेषता	पारंपरिक शिक्षण	डिजिटल शिक्षण
कक्षा आधारित	भौतिक उपस्थिति आवश्यक	कहीं से भी सीखने की सुविधा
संवाद	शिक्षक और छात्रों के बीच सीमित संवाद	इंटरैक्टिव वीडियो, चैट और फोरम के माध्यम से संवाद
संसाधन	पुस्तकें और नोट्स	ई–बुक्स, वीडियो लेक्चर, ऑनलाइन सामग्री
लचीलापन	निर्धारित समय और स्थान	समय और स्थान की स्वतंत्रता

शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद में वृद्धि :–

न्यू मीडिया ने शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद को बढ़ाया है। ऑनलाइन डिस्कशन फोरम, ई–मेल और सोशल मीडिया ग्रुप्स के माध्यम से शिक्षक और छात्र हर समय जुड़े रह सकते हैं।

आत्मनिर्भर शिक्षा और अनुसंधान को बढ़ावा :

न्यू मीडिया छात्रों को आत्मनिर्भर बनाता है। गूगल सर्च, यूट्यूब ट्यूटोरियल, वेबिनार और ऑनलाइन कोर्सेज के माध्यम से छात्र स्वयं अध्ययन कर सकते हैं। यह शोध और नवाचार को भी बढ़ावा देता है।

2.3 डिजिटल डिवाइड और शैक्षिक असमानता :

डिजिटल क्रांति के बावजूद, डिजिटल डिवाइड और शैक्षिक असमानता अभी भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से डिजिटल संसाधनों की पहुँच नहीं है।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में न्यू मीडिया की पहुँच :

– शहरी क्षेत्रों में इंटरनेट और स्मार्टफोन तक आसान पहुँच के कारण डिजिटल शिक्षा अधिक लोकप्रिय है।

– ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी डिजिटल सुविधाओं, इंटरनेट कनेक्टिविटी और तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण ऑनलाइन शिक्षा की पहुँच सीमित है।

आर्थिक और सामाजिक वर्गों के बीच डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता :

– उच्च आय वर्ग के लोग महंगे डिजिटल उपकरण और इंटरनेट सेवाएँ आसानी से वहन कर सकते हैं, जबकि निम्न आय वर्ग के लिए यह कठिन है।

– सरकारी प्रयासों जैसे 'डिजिटल इंडिया' और 'ई–लर्निंग योजनाओं' के बावजूद, समाज के सभी तबकों को समान अवसर नहीं मिल पा रहे हैं।

डिजिटल साक्षरता की आवश्यकता :

– डिजिटल शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए डिजिटल साक्षरता आवश्यक है।

– छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों को डिजिटल उपकरणों और संसाधनों के सही उपयोग के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए।

– साइबर सुरक्षा, फेक न्यूज और डेटा गोपनीयता से संबंधित ज्ञान भी डिजिटल साक्षरता का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

3. राजनीतिक जागरूकता में न्यू मीडिया की भूमिका :

न्यू मीडिया ने राजनीतिक संचार और जागरूकता को एक नई दिशा दी है। सोशल मीडिया, डिजिटल समाचार पोर्टल और ब्लॉगिंग ने आम नागरिकों को राजनीतिक मामलों में अधिक सक्रिय बनाया है। विशेष रूप से युवाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाने में न्यू मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हालाँकि, इसके साथ ही गलत सूचना, ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

3.1 न्यू मीडिया और राजनीतिक संचार :–

न्यू मीडिया ने राजनीति और नागरिकों के बीच संवाद को आसान और प्रभावी बनाया है। पारंपरिक मीडिया की तुलना में डिजिटल प्लेटफॉर्म अधिक इंटरएक्टिव और तीव्र संचार का माध्यम प्रदान करते हैं।

सोशल मीडिया (फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप) और राजनीतिक संवाद :

– फेसबुक और ट्विटर राजनीतिक नेताओं, दलों और नागरिकों के बीच संवाद स्थापित करने का महत्वपूर्ण मंच बन गए हैं।

– इंस्टाग्राम और यूट्यूब पर राजनीतिक अभियानों और बहसों के लिए लाइव स्ट्रीमिंग और वीडियो सामग्री उपलब्ध है।

– व्हाट्सएप ग्रुप्स के माध्यम से राजनीतिक दल अपने समर्थकों तक संदेश पहुँचाते हैं, हालाँकि इससे गलत सूचना भी तेजी से फैलती है।

डिजिटल समाचार पोर्टल और स्वतंत्र पत्रकारिता :–

– परंपरागत समाचार पत्रों और टीवी चैनलों के अलावा, डिजिटल समाचार पोर्टल जैसे The Wire, Scroll, Quint आदि स्वतंत्र पत्रकारिता को बढ़ावा दे रहे हैं।

– ऑनलाइन न्यूज पोर्टल अधिक त्वरित और व्यापक कवरेज प्रदान करते हैं, जिससे नागरिकों को राजनीतिक घटनाओं की जानकारी तुरंत मिलती है।

ब्लॉगिंग और वैकल्पिक मीडिया :

स्वतंत्र पत्रकार, विशेषज्ञ और आम नागरिक ब्लॉगिंग के माध्यम से राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा करते हैं।

मीडियम, वर्डप्रेस, लोकल ब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म राजनीतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के नए साधन बन गए हैं।

3.2 युवाओं की राजनीतिक भागीदारी पर प्रभाव :

न्यू मीडिया ने युवाओं को राजनीतिक रूप से अधिक जागरूक और सक्रिय बनाया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म युवाओं को अपनी राय व्यक्त करने, राजनीतिक अभियानों में भाग लेने और सरकार से सीधे संवाद करने के अवसर प्रदान करते हैं।

ऑनलाइन अभियान और डिजिटल पिटीशन :

- डिजिटल प्लेटफॉर्म पर Change.org, Avaaz जैसी वेबसाइटें नागरिकों को ऑनलाइन पिटीशन के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक बदलाव लाने का अवसर देती हैं।
- विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर ऑनलाइन अभियान (#MeToo, #SaveTheInternet) युवाओं की सक्रिय भागीदारी को दर्शाते हैं।

चुनावी अभियानों में सोशल मीडिया की भूमिका :

- राजनीतिक दल अब सोशल मीडिया पर बड़े पैमाने पर चुनाव प्रचार करते हैं।
- भारत में 2014 और 2019 के आम चुनावों में डिजिटल मीडिया का व्यापक उपयोग किया गया, जहाँ फेसबुक, ट्विटर और यूट्यूब अभियानों के प्रमुख माध्यम बने।

ई-गवर्नेंस और नागरिक सहभागिता :

- सरकारें डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से नागरिकों से सीधे संवाद स्थापित कर रही हैं, जैसे MyGov.पद, डिजिटल इंडिया पहल आदि।
- नागरिक सरकारी नीतियों पर प्रतिक्रिया दे सकते हैं और अपनी समस्याओं को सीधे प्रशासन तक पहुँचा सकते हैं।

3.3 फेक न्यूज और डिजिटल मीडिया की चुनौतियाँ :

न्यू मीडिया ने राजनीतिक संवाद को लोकतांत्रिक बनाया है, लेकिन इसके साथ ही गलत सूचना, दुष्प्रचार और साइबर अपराधों की चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

गलत सूचना और दुष्प्रचार :

- सोशल मीडिया पर अफवाहें, भ्रामक खबरें और छेड़छाड़ किए गए वीडियो तेजी से वायरल होते हैं, जिससे सामाजिक और राजनीतिक ध्रुवीकरण बढ़ता है।
- राजनीतिक दलों द्वारा डिजिटल मीडिया का उपयोग मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए किया जाता है, जिससे जनमत को गलत दिशा में मोड़ने की आशंका रहती है।

ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग :

- राजनीतिक विचारधाराओं के टकराव के कारण ट्रोलिंग और ऑनलाइन उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़ रही हैं।
- महिला पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और अल्पसंख्यक समूहों के खिलाफ डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अभद्र भाषा और धमकियाँ दी जाती हैं।

सूचना की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने की चुनौतियाँ :

– डिजिटल मीडिया में फैक्ट–चेकिंग का अभाव विश्वसनीयता की समस्या पैदा करता है।

– Alt News, BOOM Fact Check जैसे प्लेटफार्मों का उद्देश्य फेक न्यूज की पहचान करना और सटीक जानकारी प्रदान करना है।

4. पूर्ववर्ती अध्ययन की समीक्षा :

कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोधों ने शिक्षा और राजनीति में न्यू मीडिया की भूमिका पर गहराई से अध्ययन किया है। इन शोधों के निष्कर्ष न्यू मीडिया के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

4.1 शिक्षा में न्यू मीडिया के प्रभाव पर किए गए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोधों का विश्लेषण :

– मैकलुहान (1964) ने अपने 'ग्लोबल विलेज' सिद्धांत में बताया कि डिजिटल संचार माध्यम वैश्विक शिक्षा और सूचना को व्यापक रूप से प्रभावित कर सकते हैं।

– कास्टेल्स (2009) ने बताया कि सूचना युग में डिजिटल मीडिया शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी और प्रभावशाली बना रहा है।

– IAMAI (2023) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 75% से अधिक युवा इंटरनेट के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

4.2 राजनीतिक जागरूकता पर डिजिटल मीडिया के प्रभाव से संबंधित प्रमुख अध्ययन :

• Boyd (2014) ने अपने शोध में बताया कि सोशल मीडिया युवाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाता है।

• Pew Research Center (2021) की रिपोर्ट के अनुसार, 60% से अधिक युवा सोशल मीडिया के माध्यम से राजनीतिक जानकारी प्राप्त करते हैं।

• शर्मा (2021) के अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया राजनीतिक संवाद को लोकतांत्रिक बना रहा है, लेकिन फेक न्यूज भी एक बड़ी समस्या है।

4.3 भारत में डिजिटल शिक्षा और राजनीति पर किए गए शोधों की संक्षिप्त समीक्षा :–

– सिंह (2020) के शोध के अनुसार, भारत में डिजिटल शिक्षा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच एक डिजिटल डिवाइड पैदा कर रही है।

– कुमार (2019) ने अपने शोध में बताया कि भारत में डिजिटल मीडिया राजनीतिक जागरूकता को बढ़ा रहा है, लेकिन इसके साथ ही गलत सूचना का खतरा भी बढ़ गया है।

– TRAI (2022) की रिपोर्ट में डिजिटल मीडिया के उपयोग में वृद्धि को दर्शाया गया है, विशेष रूप से शिक्षा और राजनीति में।

5. प्रमुख निष्कर्ष और सुझाव

5.1 प्रमुख निष्कर्ष

इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आए हैं :–

1. शिक्षा में न्यू मीडिया की बढ़ती भूमिका :

– डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म (SWAYAM, NPTEL, Coursera, Udemy आदि) ने शिक्षा को अधिक सुलभ

बनाया है।

– ऑनलाइन कक्षाओं और वर्चुअल लर्निंग ने शिक्षण पद्धतियों में क्रांतिकारी बदलाव लाया है।

– आत्मनिर्भर शिक्षा (Self-learning) और अनुसंधान को बढ़ावा मिला है।

2. राजनीतिक जागरूकता में न्यू मीडिया की भूमिका :

– सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने नागरिकों, विशेषकर युवाओं, को राजनीतिक मुद्दों से जोड़ा है।

– ई–गवर्नेंस और डिजिटल अभियानों ने लोकतांत्रिक भागीदारी को मजबूत किया है।

– स्वतंत्र पत्रकारिता और ब्लॉगिंग ने राजनीतिक संवाद को व्यापक बनाया है।

3. फेक न्यूज और डिजिटल मीडिया की चुनौतियाँ :

– गलत सूचना (Misinformation) और दुष्प्रचार तेजी से फैल रहे हैं।

– ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग जैसी समस्याएँ राजनीतिक संवाद को प्रभावित कर रही हैं।

– सूचना की विश्वसनीयता सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।

4. डिजिटल डिवाइड और शैक्षिक असमानता :

– ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच न्यू मीडिया की पहुँच में असमानता बनी हुई है।

– आर्थिक और सामाजिक कारणों से डिजिटल संसाधनों तक समान रूप से पहुँच नहीं बन पाई है।

– डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण कई लोग इन संसाधनों का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

5.2 सुझाव :

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर न्यू मीडिया के प्रभाव को और अधिक सकारात्मक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :–

1. डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना :

– शैक्षिक संस्थानों और सरकारी पहल के माध्यम से डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएँ।

– युवाओं और बुजुर्गों दोनों को डिजिटल मीडिया के उचित उपयोग के लिए प्रशिक्षित किया जाए।

2. शिक्षा में न्यू मीडिया के संतुलित और न्यायसंगत उपयोग को सुनिश्चित करना :

– सरकारी और निजी संस्थानों द्वारा डिजिटल शिक्षा संसाधनों को सभी के लिए उपलब्ध कराया जाए।

– ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म को बहुभाषी बनाया जाए, ताकि भाषा की बाधा दूर की जा सके।

3. राजनीतिक सूचनाओं की सत्यता के लिए सख्त नियम बनाए जाएँ :

– फेक न्यूज और दुष्प्रचार पर रोक लगाने के लिए सख्त डिजिटल नीतियाँ लागू की जाएँ।

– सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर फेक्ट–चेकिंग तंत्र को मजबूत किया जाए।

– गलत सूचना फैलाने वालों पर कानूनी कार्रवाई की जाए।

4. सरकार और निजी संस्थानों द्वारा डिजिटल संसाधनों की पहुँच को बढ़ाने के प्रयास किए जाएँ :

– ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

– सस्ती और सुलभ डिजिटल तकनीक उपलब्ध कराई जाए।

– डिजिटल डिवाइड को कम करने के लिए सार्वजनिक डिजिटल केंद्रों की स्थापना की जाए।

6. निष्कर्ष :

न्यू मीडिया शिक्षा और राजनीति में सूचना के प्रवाह और भागीदारी को बढ़ाने का सशक्त माध्यम बन चुका है। डिजिटल लर्निंग और ऑनलाइन संसाधनों ने शिक्षा को अधिक समावेशी बनाया है, जबकि राजनीतिक संचार में सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्मों ने नागरिकों की भागीदारी को बढ़ावा दिया है।

हालाँकि, इसके साथ ही फेक न्यूज, दुष्प्रचार, ट्रोलिंग और डिजिटल डिवाइड जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इनसे निपटने के लिए डिजिटल साक्षरता बढ़ाने, सख्त नीतियाँ लागू करने और सभी नागरिकों के लिए डिजिटल संसाधनों की पहुँच सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

भविष्य में, न्यू मीडिया के प्रभाव का अध्ययन और अधिक व्यापक रूप से किया जाना चाहिए, विशेषकर ग्रामीण भारत और पिछड़े क्षेत्रों में इसके उपयोग और प्रभाव को समझने के लिए गहन शोध की आवश्यकता है।

7. संदर्भ सूची :

1. मैकलुहान, मार्शल (1964)। अंडरस्टैंडिंग मीडिया : द एक्सटेंशन्स ऑफ मैन। एमआईटी प्रेस।
2. कैस्टेल्स, मैनुअल (2009)। कम्युनिकेशन पावर। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. बॉयड, डेनाह (2014)। इट्स कॉम्प्लिकेटेड : द सोशल लाइव्स ऑफ नेटवर्क्ड टीन्स। येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. टीआरएआई (2022)। भारत में डिजिटल मीडिया का उपयोग। भारत सरकार की रिपोर्ट।
5. आईएएमएआई (2023)। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया रिपोर्ट।
6. प्यू रिसर्च सेंटर (2021)। सोशल मीडिया और युवाओं का व्यवहार।
7. सिंह, आर. (2020)। भारतीय युवाओं पर डिजिटल मीडिया का प्रभाव। सोशल रिसर्च जर्नल।
8. शर्मा, पी. (2021)। अर्ध–शहरी भारत में सोशल मीडिया और युवाओं का मानसिक स्वास्थ्य। इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी।
9. कुमार, ए. (2019)। ग्रामीण और शहरी भारत में डिजिटल विभाजन। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।
10. मिश्रा, एस. (2022)। युवाओं में राजनीतिक जागरूकता में नए मीडिया की भूमिका। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस।
11. गुप्ता, आर. (2023)। युवाओं की वास्तविकता की धारणा पर सोशल मीडिया का प्रभाव। एशियन जर्नल ऑफ मीडिया स्टडीज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 113-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. मनोज कुमार प्रीत की कहानियों में सामाजिकता का सन्देश

डॉ. यशवीर दहिया

सहायक प्राध्यापक, एस. के. डी. यूनिवर्सिटी, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना :-

डॉ. मनोज कुमार प्रीत हिन्दी साहित्य जगत में ऐसे विद्वान् हुए है जिन्होने सामाजिकता को केन्द्र बिन्दु रखते हुए अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक सुधार व मानवीय रिश्तों में अटूट संबंध पर जागरूकता फैलाई है इनका साहित्यिक दृष्टिकोण मानवीय रिश्तों व सामाजिकता में एक अटूट संबंध को लक्षित करता है।

समाज सेवा पर बल :- समाज सेवा का मतलब समाज के कमजोर वर्गों की मदद करना है। यह कार्य शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, बच्चों और वृद्धों की देखभाल, और पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों से जुड़ी कहानियाँ प्रमुख रूप से देखी जा सकती है।

समानता पर बल :- डॉ. प्रीत की कहानियाँ समाज में समानता को बढ़ावा देने वाली है। यह महिलाओं, बच्चों, श्रमिकों, और अन्य सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा करने को प्रेरित करती हैं।

कहानियों में शिक्षा व जागरूकता :- समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना और लोगों को सामाजिक मुद्दों के प्रति जागरूक करना सामाजिक सरोकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके माध्यम से समाज में बदलाव लाया जा सकता है।

जीवन स्तर में सुधार को प्रेरित :- समाज में बेहतर जीवन स्तर में सुधार करना भी सामाजिक सरोकार की श्रेणी में आता है। यह सरकार और एनजीओ द्वारा किए जाने वाले कार्यों के माध्यम से संभव होता है। "आजकल साहित्य की विभिन्न विधाओं में सामाजिक सरोकारों के उरेहन और निरूपण की और अधिक ध्यान दिया जा रहा है जो कि समय की मांग के दृष्टिगत प्रासंगिक और सामयिक पग माना जा सकता है"।

सामाजिक न्याय :- यह सुनिश्चित करना कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर, न्याय और अधिकार मिलें, और किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो।

सामाजिकता में मानवीय रिश्तों की भूमिका :- मानवीय रिश्ते समाज के संरचनात्मक और भावनात्मक पहलुओं को बनाए रखते हैं। रिश्ते केवल व्यक्तिगत सुख और संतुष्टि तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज में सामूहिक समझ, सहिष्णुता, और एकजुटता को बढ़ावा देते हैं। सामाजिकता में मानवीय रिश्तों की भूमिका को समझने के लिए हमें यह देखना होगा कि ये रिश्ते समाज के विकास, सुधार और स्थिरता में कैसे योगदान करते

हैं। "बुल्ली" कहानी की कथानिका जो आधुनिक विचारों की है तथा कथानक राज द्वारा बुल्ली को पत्नी के रूप में स्वीकार न करना भी कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति से जुड़े होने का संकेत है।[2]"

1. समाज में सामूहिकता और एकता का निर्माण :–

मानवीय रिश्ते समाज की बुनियाद होते हैं। परिवार, मित्र, शिक्षक–विद्यार्थी, पड़ोसी और अन्य सामाजिक संबंध समाज में एकजुटता और सामूहिकता को बनाए रखते हैं। इन रिश्तों के माध्यम से लोग एक–दूसरे की सहायता करते हैं, विचार साझा करते हैं, और सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हैं। यह समाज को एकसूत्री बनाता है, जो समाजिक और मानसिक स्थिरता का आधार होता है।

मानवीय रिश्ते सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देते हैं। जब लोग एक–दूसरे के दुख, खुशी और मुश्किलों को समझते हैं, तो वे एक–दूसरे की मदद के लिए तत्पर रहते हैं। यह समाज में सहयोग और समर्थन के माहौल को जन्म देता है, जो एक सकारात्मक सामाजिक वातावरण में परिवर्तित हो सकता है। "शिखा मुझे माफ कर दो, मुझे भूल जाओ, समझना जिन्दगी में तानीव नाम का कोई बेवफा ..... मैं पराजित हो गया ..... तुम अपनी और दुनिया स्थापित करने का प्रयत्न करना।[3]"

समाज में मानवीय मूल्य और विध्वंस :– यह दो विपरीत पक्ष हैं जो समाज के निर्माण और विकास पर गहरा प्रभाव डालते हैं। जहाँ मानवीय मूल्य समाज को सशक्त, समान और खुशहाल बनाने में मदद करते हैं, वहीं विध्वंस (नाश या विध्वंसक शक्तियाँ) समाज के ढांचे को तोड़ने और उसे नष्ट करने का कारण बनते हैं। "बुल्ली" कहानी की कथानिका जो आधुनिक विचारों की है तथा कथानक राज द्वारा बुल्ली को पत्नी के रूप में स्वीकार न करना भी कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति से जुड़े होने का संकेत है।[4]"

विध्वंश या नाशक शक्तियां समाज के विकास और सामंजस्य को नष्ट करने का कारण बन सकती हैं। यह व्यक्तिगत, सामाजिक और सामूहिक स्तर पर विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। आइए, इन दोनों के बारे में अधिक विस्तार से समझते हैं जब समाज में जातिवाद, लिंग भेद धर्म के नाम पर भेदभाव होता है, तो यह समाज को दो खेमों में बांट देता है, जिससे असहमति, संघर्ष और असमानता की भावना फैलती है। यह समाज के विकास को रोकता है और मानसिक शांति को भंग करता है।

सामाजिकता में प्रेम का सरोकार :– प्रेम मानवता के बुनियादी मूल्य को प्रकट करता है और समाज के अन्दर समझ, सहिष्णुता, और सहयोग का माहौल पैदा करता है। प्रेम केवल व्यक्तिगत संबंधों तक सीमित नहीं है बल्कि यह समाज के विभिन्न पहलुओं को जोडने, समाज मे सामूहिक जिम्मेदारी बढाने और सभी वर्गों के बीच एकता स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ''प्यार तो सौभाग्य से प्राप्त होता है जिसे तू मजाक समझकर ठुकरा रहीं है। विभिन्न बंधनों से बांध रही है, भला प्यार भी कभी बंधा है, ये तो ऐसी क्रिया है जिसमें तनिक रूकावट नहीं है बस निरंतर बहते जाना है।''[5]

समाज में बाहरी आडम्बरों का विरोध :– आंतरिक या बाहरी दिखावे, दिखावटी आदर्शों या शेखी बघारने वाली प्रवृत्तियों का विरोध जो समाज में अस्वाभाविक रूप से प्रचलित होती हैं। यह विरोध तब उत्पन्न होता है जब समाज में किसी बाहरी रूप में या दिखावे के लिए किसी विशेष संस्कृति, जीवन शैली या आदर्शों का अनुकरण किया जाता है, जो समाज के वास्तविक मूल्यों या आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होते हैं।''जीवन की विडम्बना को अभिव्यक्त करती उनकी कहानियां षिल्प के धरातल पर कुछ कमजोर होते हुए भी अपना प्रभाव

पाठकों पर छोड़ने में पूर्णतया सक्षम है''।[6] बाह्य आडम्बर समाज में असल जीवन की सच्चाईयों को छिपाकर केवल दिखावे को महत्व देता है ''देखो रिंकल मैने नारीत्व को नई चेतना सोंप दी है अपने प्यार के लिये..... .... और वह, वह भी झट से मुझे .....''।[7]

कहानियों में स्वतंत्रता :- स्वतंत्रता, अधिकार, और आत्मनिर्भरता के विचारों का प्रकट होना जो समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं। स्वतंत्रता केवल भौतिक या राजनीतिक संदर्भ में नहीं, बल्कि मानसिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक संदर्भों में भी महत्वपूर्ण है। कहानियाँ, विशेष रूप से साहित्य और लोककथाओं के माध्यम से, स्वतंत्रता की भावना को व्यक्त करती हैं और लोगों को अपने अधिकारों, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, और सामाजिक बदलाव की दिशा में प्रेरित करती हैं।'' परिवार से पृथक होकर जहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता व जीने की सजीव शैली होती है जहां जीवन का कठौर भाग रहस्य का किस्सा बना रहता है।''[8]

निष्कर्ष :- मनोज कुमार प्रीत की कहानियां टूटते बनते सपनों की कहानियां है। जो अपेक्षाओं की आंधी से पैदा होने वाली टूटन, रिश्तों की तड़पन तथा नारी मन की संवेदनाओं को भली प्रकार प्रकट करती है। जो भी यर्थाथ उन्होंने भोगा अथवा जैसा कथानक उन्होंने अपनी भीतरी संवेदना में ढूंढा वैसा कहानियों में बताया। इनकी सभी कहानियां समाज से जुड़ी हुई है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है उसी का वर्णन कहानियों में किया है। कहानियों में अपने सत्य और समाज के सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हारे हुए चेहरे – मनोज कुमार प्रीत।
2. यातनागृह – मनोज कुमार प्रीत।
3. स्मृतियों के खण्हर – मनोज कुमार प्रीत।
4. दर्पण अपना–अपना – मनोज कुमार प्रीत।
5. शून्य से निन्यानवें तक – मनोज कुमार प्रीत।
6. काल चक्र – मनोज कुमार प्रीत।
7. अपने–अपने बुत्त – मनोज कुमार प्रीत।
8. मैं राम नहीं हो सकता – मनोज कुमार प्रीत।
9. अनछुए सपनें – मनोज कुमार प्रीत।
10. जीवेम शरदः शतम् – मनोज कुमार प्रीत।
11. कुछ तो कहा होगा – मनोज कुमार प्रीत।

yashveer57@gmail.com
Mob : 9416377867

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 116-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

छायावादोत्तर कविता में लौकिक एवं अलौकिक पक्ष

डॉ. सोनम, एम.ए., पीएच.डी. (हिंदी)
सुपुत्री श्री राम प्रसाद श्योराण

शोध सार :-

छायावादोत्तर हिंदी काव्य के सर्जना काल में दे ा पराधीन था। परंतु महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम के रूप में जो अलौकिक पृश्ठभूमि बन गयी थी। वह भारतीय आत्मा के निकट होने के कारण सभी प्रबुद्ध भारतीयों को प्रभावित कर रही थी। कुछ आंदोलन ऐसे भी थे जिनमें हिंसा को प्रमुख स्थान प्राप्त था परंतु वे भी श्रीमद्भगवद्गीता के कर्म–योग में वि वास रखते थे और आत्मा के अमरत्व में उनकी दृढ़ निश्ठा थी। स्वदे ाी परिधान, स्वभाशा का प्रयोग और भारतीय अस्मिता का स्वीकरण सब अध्यात्म से ओत–प्रोत थे। उन दिनों संप्रदायवाद पीछे खड़ा हुआ था। मुसलमान और ईसाई हिंदुओं के साथ मिलकर आंग्ल–साम्राज्य को भारत वर्श से खदेड़ देने के लिए तत्पर हो गये थे। ऐसे विमल अलौकिक वातावरण में जिस हिंदी कविता ने भाव–भरित स्वर न गूँजे, यह कैसे अंचल में समाहित किये हुए हैं, उनका विवेचन रूचिकर ही नहीं, लाभदायक सिद्ध होगा।

मूल शब्द :- भारतीय अस्मिता, युग्म चतुर्दिक, चेतन जीवात्मा, नियामक, परब्रह्म।

प्रस्तावना :-

प्रत्येक अध्यात्मवादी की भाँति अज्ञेय भी इस रहस्यवादी राज पथ पर बढ़ते हुए यह सोचते जा रहे हैं कि उनकी यह यात्रा लक्ष्यहीन नहीं है। उनकी भी एक मंजिल है जो आलोक–सागर तक पहुँच कर प्राप्त हो जायेगी :–

चलने की यह प्रतिज्ञा
पहुँच सकूंगा मैं
प्रका ा के पारावार तक।[1]

महादेवी वर्मा ने भी प्रियतम के प्रति कौतूहल व्यक्त करते हुए कहा था ''कौन तुम मेरे हृदय में?'' और ''तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?'' जायसी ने भी ''प्रिय हिरदय महँ भेंट न होई'' लिखा है, कवि पंत जी लिखते हैं :–

''प्रिय तुम मेरे अंतर में
पर मैं खोया हूँ भीड़ में।''
तेरा चिंतन ही महामिलन है।[2]

अज्ञेय जी के मानस का अवलंबन भी सगुण और साकार न होकर अन्य अध्यात्मवादियों की तरह निर्गुण

और निराकार है। इस बात का प्रमाण निम्नांकित पंक्तियों में है :–

रूपों में एक अरूप सदा खिलता है
गोचर में एक अगोचर अप्रमेय
अनुभव में एक, अतीद्रिय
पुरूश के हर वैभव में ओझल
अपौरूशेय मिलता है।''[3]

यहीं से अज्ञेय की रूचियों में परिश्कार और समझ आने लगता है। सूफियों में जो ''हाल'' की द ा पाई जाती है, कहीं–कहीं वैसा आभास भी अज्ञेय की कविताओं में मिल जायेगा। कभी–कभी उनके रहस्यवादी अंतर में वहीं तन्मयता ज्वार–भाटे सी उमड़ आती है। जिसमें मग्न होकर महादेवी जी ने तप्त–सिकता में सलिल कण–सा अपने आपको विलीन कर देना चाहा था। अज्ञेय की कविता ''निरालोक'' में इसी अंतर्द ा का अवलोकन करके मंत्र मुग्ध होइये :–

''स्वर अवरूद्ध, कंठ है कुंठित
पैरों की गति रूद्ध, हाथों की बद्ध, भी ा भू लुंठित
उसकी और चेतना – सरणी को ही
बहने दो, बहने दो !''

अज्ञेय जी स्वयं खुले हाथों दान करने पर तुले हुये हैं, क्योंकि उनकी आस्था इसी बात में अंतर्निहित है कि भून्य के तिरमय होने पर भी आकाश अनुक्षण मुक्त रहता है। अतः वह उस परम तत्व को संबोधित करते हुए कहते हैं :–

''तुम पर्वत हो, अभ्रदभेदी ि ाला खण्डों के गरिश्ठ पुंज !
चापे इस निर्झर को रो, रहो
तुम्हारे रन्ध्र–रन्ध्र से
तुम्हीं को रस देता हुआ
फूट कर मैं बहूंगा !''

सृश्टि–रहस्य अध्यात्म का प्रमुख विशय है। अध्यात्मिकों के अनुसार संपूर्ण सृश्टि ब्रह्म को ही इच्छा का परिणाम है। संसार के सभी अध्यात्मिकों ने इस विशय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, किंतु स्वदे ाी वैदिक अध्यात्म के विचारों के समक्ष वे सभी प्रभावहीन प्रतीत होते हैं। बहुत से विचारक और दा ार्निक तो वैदिक अध्यात्म के ही सिद्धांतों को घुमा फिराकर प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं। सृश्टि रहस्य के अंतर्गत प्रमुख रूप से जीव, जगत और ब्रह्म पर विचार किया जाता है।

मनी ाी मैसमूलर का कथन है कि जब मनुश्य किसी दृ य को देखकर खड़ा हो जाता है कि यह क्या है? और क्यों है? तब मानों उसके अंदर छिपे दा ार्निक का उदय हो जाता है। इसी क्रिया को तत्व चिंतन का नाम दिया गया है। मैं प्रतिदिन जागृत अवस्था में कुछ न कुछ कार्य करता हूं, तो विश्राम की आकांक्षा होती है। इस क्रिया–कलाप में दो प्रकार के पदार्थ हमारे सामने रहते हैं जिनमें एक जड़ है और दूसरा चेतन। इन दोनों का युग्म चतुर्दिक फैला हुआ हैं जड़ में गति तो है परंतु क्रिया नहीं है। क्रिया के पीछे मनन–चिंतन रहता है, गति

के पीछे नहीं। गति निरपेक्ष है, क्रिया मन सापेक्ष हैं इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरी सत्ता और है जो इन दोनों का नियमन करती है।[4] जड़ प्रकृति है, चेतन जीवात्मा है और इन दोनों का परब्रह्म हैं यही तीन तत्व हैं जिनमें प्रकृति का प्रसार पृथ्वी का द्यावा तक है। जीवात्मा विविध जीवों में भ्रमण कर रहे हें तथा सुख और दुख के भागी बनते हैं। परब्रह्मको सच्चिदानंद कहा जाता है। वह सत् हे, वह ज्ञानमय है और वह आनंदमय है। जीवात्मा की ज्ञानमय सत्ता तो है, परंतु उसमें आनंदमयता नहीं है। इसी आनंद की खोज में वह उच्चावच जीवों में भटक रहा है और जब तक आनंद की प्राप्ति नहीं होती, तब तक भटकता ही रहेगा। तत्व चिंतन में सत्ता, ज्ञान और आनंद इन तीनों के चिंतन की ही प्रधानता है।

नरे ा मेहता कृत 'सं ाक की एक रात' में मानव मूल्यों में कर्म के साथ ही सत्य की सर्वोच्चता स्वीकार्य की गई है। प्रस्तुत रचना में राम सत्य की महत्ता को स्वीकार्य करते हैं,परंतु उनकी दृश्टि में सत्य ऐसा होना चाहिए–

मैं सत्य चाहता हूं
युद्ध से नहीं
खड़ग से नहीं
मानव से मानव का सत्या चाहता हूं।[5]

वि व त्रिगुणात्मक है, यही त्रिगुणात्मकता पंचभूतों में क्रम वि ोश के साथ प्रकट होती है। पंचीकरण की क्रिया प्रपंचको जन्म देती है। प्रपंच में पंच भाब्द पांच भूतों का द्योतक है। मूल में प्रकृति की साम्यावस्था है। सत्, रज और तम वैसे ही वह साम्यावस्था में न रहकर वै ा य ग्रहण कर लेती है। इसीको विकृति कहा जाता है जो प्रकृति के विपरीत है। विकृति में तीनों गुण असमान रूपमें नाना रूप ग्रहण करते जाते हैं। यह वैशम्य इतना अधिक फैल जाता है कि वह जीवात्माओंको अपनी ओर खींच लेता है। इसीको माया–जाल का नाम दिया गया है। माया में ग्रसित जीवात्मा सुख–दुख दोनों झेलता और कभी ऊंचा चढ़ जाता है तो कभी नीचा गिर जाता है। इसी भावको लेकर श्री राजाराम भुक्ल 'राश्ट्रीय आत्मा' में लिखते हैं–

''त्रिगुण पंच प्रपंचक वि व के
प्रकृति की प्रतिमा–सम इंद्रियां
बच सके इनके दृढ़ जाल से
सुलभ हो तब दुर्लभ राम भी।''

समाजवादी तर्क वितर्क करना प्रारंभ कर देता है। उसके चिंतन की एक वि ोशता यह है कि वह सिद्धि की अपेक्षा साधना की अनिवार्यताको महत्व देता है, साधना के न ो में वह चूर–चूर रहता है और रहस्यवादी पथ पर अग्रसर होता चला जाता है। कवि अज्ञेय प्राप्ति या सिद्धिको बहुत अधिक महत्व देते नहीं जान पड़ते।

प्राप्ति कृपा है वरदाता की
साधकको है सिद्धि निवेदन
छवि द ान तो दूर, मुझे
तेरा चिंतन ही महामिलन है।[6]

स्वतन्त्रता मिली और दे ा का विभाजन हुआ। राजनीतिक मूल्य फिर बदले। संविधान बना। नये

राजनीतिक दलों के उदय से राजनीति जटिल होती गई। अधिकां ा लेखक कवि वामपक्षी रहे तथा उन्हें प्रगति ील कहलाने का मोह रहा, आज भी है। वामपक्षी होने पर भी वे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानववादी मूल्यों से सम्पृक्त रहे। जनसंघ, स्वतन्त्र पार्टी, संयुक्त सो ालिस्ट तथा प्रजासो ालिस्ट जैसी राश्ट्रीय पार्टियां अस्तित्व में आयी तथा दूसरी ओर कांग्रेस केक विघटन से बंगला–कांग्रेस, केरल–कांग्रेस तथा उत्कल–कांग्रेस और जन–कांग्रेस जैसे प्रादे िक दल बने। बाद में आकर कांग्रेस नयी और पुरानी वि ोशणों में बंट गई। नये–पुराने का संघर्श राजनीति में व्यापक रूप से उभर कर आया। साठोतरी कविता ने एक ओर तो भारतीय द ार्नों की उपेक्षा की तथा दूसरी ओर वह विदे ी द र्न ाास्त्रियों एवं द ार्नों से प्रभावित और कहीं–कहीं आक्रांत हो गई। जिन विदे ी द ार्नों ने साठोतरी कविता को प्रभावित किया, उनमें प्रमुख हैं–सार्त्र का अस्तित्ववाद, मक्स पिकाड क्षणवाद, नीत ो का महामानववाद (सुपरमैन), हीगेल ओर काण्ट का प्रत्ययवाद, डार्विन का विकासवाद, मार्क्स एवं एंजिल्स का द्वंन्दात्मक भौतिकवाद, एम र्न का अध्यात्मवाद, बर्गसन का प्रगतिवाद (नेचुरलिज्म) तथा हेनरी जेम्स का प्राग्वाद (प्रागमैटिज्म)।[7]

इन सभी बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति राजनीतिक न होकर राजनीति का तत्वद र्ी होता गया। इसी बात की अभिव्यक्ति नयी कृतियों में होने लगी। 'नदी के द्वीप' का भुवन, 'सुरज का सातवां घोड़ा' का माणिक मुल्ला तथा 'अंधा–युग' का कृष्ण राजनीतिक न होकर राजनीति के तत्वद र्ी है। बदलते हुए राजनीतिक मूल्यों के अप्रत्यक्ष रूप से व्याख्याता है। वे उन समस्त मूल्यों और मर्यादाओं के प्रति जागरूक हैं, जिनके आधार पर किसी कालखण्ड की राजनीति का गठन होता है। वे राजनीतिक व्यवस्था को व्यापक मानवतावाद से संपृक्त करना चाहते है। इसीलिए 'अंधा–युग' का रचनाकार स्वीकार करता है–'एक धरातल ऐसा भी है, जहां 'निजी' और 'व्यापक' का बाह्य अंतर मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते। 'कहियत भिन्न न भिन्न'।

साठोतरी कविता राजनीतिक मूल्यों को संकीर्णता एवंसं ाय के साथ नहीं स्वीकारती, बल्कि उन्हें व्यापकता प्रदान करती है। स्वतंत्रता के बाद की राजनीति दलगत अव य हुई है, लेकिन उस वैविध्य में भी प्रजातन्त्रात्मक एकता है तथा समाजवादी तत्वों से राजनीतिक मूल्यों का निर्माण होता है। जब कवि यह कहता है कि 'हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता', तो वह राजनीति को मानव–कल्याण के निमित्त स्वीकार करता है। राजनीति भूखे आदमी की विव ाता का भरपूर लाभ उठाती है, लेकिन साठोतरी कविता इस धारणा का विरोध करती है। सर्वे वर की 'पीस–पैगौडा' विपिन अग्रवाल की 'लड़ाई के बाद' तथा अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' कविताएं मानव–वि ाश्टता को स्वीकार करती हुई राजनीति को निमित्त ही स्वीकार कर पाती हैं। भारतीय राजनीति प्रजातंत्रात्मक होते हुए भी ताना ाह जैसी रही। नेहरू जी ने जो भी किया, उस पर प्र न–चिन्ह लगाने वाला कोई भी नेता नहीं था, केवल राममनोहर लोहिया ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी दृश्टि रचनात्मक थी। उनकी दृश्टि में सरकारों का कोई महत्व न था। वे तो आधारभूत मानव–मूल्यों के अन्वे ी थे। इसलिये वह अपने जीवन–काल में यथास्थिति का हमे ाा विरोध करते रहे।

राजनीति को मोड़ना, बदलना उन चन्द व्यक्तियों के हाथ में था जो नेहरू जी को प्रभावित कर सकते थे। युवा कवियों के एक वर्ग ने तो यथास्थिति के साथ समझौता किया, लेकिन एक वर्ग ने बहुत बाद में लड़खड़ाते हुए दे ा पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए कहा –

में उस दे ा का क्या करूं

जो धीरे–धीरे लड़खड़ाता हुआ।
मेरे पास बैठ गया है।

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय राजनीति का आद र्ा गांधी जी थे। उन्होंने अपार जनसमूह को कु ाल नेतृत्व प्रदान किया, लेकिन उनके अनुयायियों द्वारा सत्ता संभालते ही गांधी जी का नाम तो भोश रहा, लेकिन उनके सिद्धांतों एवं आद ार्ों को धीरे–धीरे ताक पर उठा कर रख दिया गया। गांधीजी के आद ार्ों एवं सिद्धांतों का दुरूपयोग राजनीति में किस सीमा तक हुआ, उस पर व्यंग करते हुए नये कवि ने कहा–

मैं जानता हूं
क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाने के काम आ गई
भीड़ से बचकर
एक सम्मानित वि ोश द्वार से
आखिर वे उसी के सहारे ही तो जा सकते थे
और तुम्हारी लाठी?[8]

सौमित्र मोहन में सामाजिक विसंगतियां परिवेशजन्य विद्रूपताओं का विरोध और मध्यवर्गीय यौन कुंठा का चित्रण है आलोक धन्वा में सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था के प्रति गहरा कटाक्ष है। ज्ञानेंद्रपति जनवादी चेतना के कवि हैं लेकिन इनमें कहीं–कहीं मार्शल चित्रण परिलक्षित होता है कुमार विमल एक कविता के प्रमुख है विद्रोही कवि हैं इन्होंने मध्यवर्गीय मानसिकता के अंतर विरोधी चित्रों को प्रकट किया है अरुण कमल नहीं पीढ़ी के कवि है इन्होंने मानवीय सौंदर्य के साथ–साथ प्राकृतिक सौंदर्य को महत्व दिया है मध्यवर्गीय मानसिकता एवं जनवादी दृष्टि भी इनमें परिलक्षित होती है मंगलेश डबराल की कविताओं में मध्यवर्गीय जीवन की निराशाओं तत्कालीन स्थिति जीवन संघर्षों का चित्र पूर्ण रूप से स्पष्ट दिखाई देता है।

साठोतरी हिंदी के कवियों में डॉ. शंभू नाथ सिंह की यात्रा छायावादी उतर कालीन प्रणय गीत से आरंभ हुई थी फिर इनमें समाजवादी दृष्टि अस्तित्ववादी चित्रण एवं अंत में आधुनिकता बौद्ध प्रधान हो गया। राजनीतिक विसगंतियां वैज्ञानिक अनुभव और व्यक्ति के अंतरविरोधों को इन्होंने अपने गीतों में स्थान दिया है। उमाकांत मालवीय ने जीवन की कटु यथार्थ के साकारात्मक को भी गीतों में स्थान दिया है उनकी भाषा केंद्रीय बिंबो से संपन्न कहानी लक्ष्मिक और कहीं सीधी सरल है। देवेंद्र कुमार के नवगीतों में सिर्फ विशेष उल्लेखनीय है सामाजिक विसंगतियों को इन्होंने प्रति एवं विंबो में उभरा है इन्होंने संपूर्ण जिंदगी को अपने गीतों में बांधने की कोशिश की है। उनकी आरंभिक गीतों में सौंदर्य का सघनता और बाद के नवगीतों में समाज के अंतर विरोध है संख्या में अधिक न होते हुए भी अनुभव एवं वास्तु दिशा का विविध है दिखाई पड़ता है। मध्य वर्ग कथा का हर व्यक्ति यहां विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। आज के युवाओं के निठल्लेपन थकान उदासी इनके गीतों में विशेष प्रशिक्षित होता है। उमाशंकर तिवारी के गीतों में सौंदर्य और यथार्थ के साथ–साथ मानव मूल्यों आदर्शों और सामाजिक परिवेश के जीवंत चित्र दिखाई देते हैं। श्री कृष्णा तिवारी के गीतों में सांस्कृतिक सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति गहरी आस्था सौंदर्य के संदर्भों और आज के सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों के चरित्र प्रधान है। गांव

के गहने अनुभव गुलाब सिंह के गीतों में मुख्य आधार हैं। साठोतरी कविता में प्रगतिशील चेतना अधिकांश कवियों में दिखाई पड़ती है। प्रगतिशील चेतना का उद्‌भव हिंदी में बहुत पहले से हो गया था बाद में यह एक वाद के रूप में हिंदी में प्रतिष्ठित हुआ। प्रयोगवादी कवियों में भी कुछ रचनाकार प्रगतिशील चेतना से संपन्न थे। प्रगतिशील चेतना वाले कवियों में आर्थिक शोषण के प्रति विरोध का भाव प्रबल है यथार्थवाद उनकी कविताओं का मुख्य आधार है। यह समाज को रूढ़ि मुक्त करना चाहते हैं। प्रगतिशील चेतना वाले कवियों में श्री शोषण कुर्ती सांप्रदायिकता धर्माद्यंता वर्ग संघर्ष नौकरशाही और सामंतवादी प्रवृति के प्रति विरोध भाव पाया जाता है। इनमें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भों का समन्वय भी दिखाई पड़ता है। पुरानी प्रवृत्यिों के परिवर्तन और नए युग के निर्माण की आकांक्षा इन कवियों में है साम्राज्यवाद सामंतवाद पूंजीवाद व्यवस्था बाद आर्थिक शोषण आदि की प्रतिविरोध की भावना पहले से ही छठे दशक के पूर्व की कविताओं में विद्यमान थी। एक कंठ विषपायी' मिथकीय और युद्ध परम्परा का एक और प्रबंध–काव्य है जिसमें युद्ध परम्परा के भंजन के विपरीत प्राचीनता की अनवरत सत्ता कायम रखने का परिणाम व्यक्त हुआ है। 'चार अंकों की विभाजित पौराणिक कथा के प्रथम खण्ड में शंकर और उनकी पत्नी का परस्पर संवाद है जिसमें शंकर को अपनी मर्यादाओं को अपमानित करने के कारण दक्ष अपने गृह यज्ञ में आमंत्रित करना नहीं चाहते हैं। वीरिणी परिणय को नारी की परिणति मानकर दक्ष को समझाना चाहती हैं। दक्ष शंकर को अनाहूत रखकर परम्परा को खड़ित करना चाहते हैं। इस बीच अनाहूत होकर भी शंकर की पत्नी सती पार्वती उस यज्ञ में पहुँच जाती हैं।

दक्ष को यह स्थिति रवीकार नहीं होती किन्तु सती वीरिणी उन्हें समझा–बुझाकर शांत कर देती हैं। इस तरह यज्ञ में पार्वती शकर का सर्वोपरि स्थान चाहती हैं और दक्ष उन्हें युग–युग तक किसी भी यज्ञ में स्थान न पाने का उद्‌घोष करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सती अपने पति का तिरस्कार देखकर यज्ञ में कूदकर भरम हो जाती है...। दूसरे ठाक में यन्त्र स्थल का विखरा हुआ भाग है, यक्ष को ध्वस्तता का स्वरूप है और शंकर का अपने अनुगतों के प्रति रोष है। 'सर्वहत' दक्ष का अनुमत है फिर भी यज्ञ स्थल के दृश्य का तटस्थ दर्शक है। अतः यह समस्त प्रतिक्रियाओं के साथ आधुनिक वैवाहिकता की पुष्टि करता है..... तीसरे अंक में शंकर अपनी प्रिया के शव को लेकर तीनों लोकों में भटक रहे हैं। उनके मन में पार्वती के प्रति अपार मोह है। अतः वे किसी भी रूप में शव को अपने से अलग नहीं करना चाहते। शंकर प्राचीन परम्पराओं के सड़े–गले रूप के पोषक स्वरूप सती के शव को विछिन्न होने पर भी अपने वक्ष से चिपकाए घूम रहे हैं।

अंततः वरुण और कुबेर से मिलकर अपने मोहान्य को आक्रोश में परिवर्तित करके वे तीनों लोकों को भस्म कर देने का उपक्रम करते हैं। ये अपनी सेना को इस बात के लिए आमंत्रित करते हैं। ये सती के शोक से विह्‌वल स्वयं युद्ध में भाग न लेकर सती के शव को चंदन के लेप और पुष्प श्रृंगार से पूरित कर देना चाहते हैं। चौथे अंक में बुद्धारंभ की भूमिका है। इन्द्रब्रजा से युद्ध के लिए आदेश चाहते हैं। किन्तु इन्द्रवजा युद्ध को आत्मघाती बताकर सेना को शांत रखने का आदेश देते हैं और अन्ततः उद्‌घोषित प्रजा को संदेश देता है. ...कि महादेव शंकर की सेनाएं लौट गई।[9] सीमा पर रक्तपात नहीं हुआ। युद्ध समाप्त हो गया। सुने सब प्रजा। यह समाचार सुने।

निष्कर्ष :-

भारतीय द ान की परम्परा बड़ी समृद्ध रही है। आस्तिक द ानों में सांख्य, योग, वै ोि ाक, पूर्व मीमांसा,

उत्तर मीमांसा (वेदान्त) ने समय पर कविता को प्रभावित किया है तथा वि ाल मात्रा में उपलब्ध जैन और बौद्ध–साहित्य इस बात का प्रमाण है कि जैन–द ान और बौद्ध–द ान भी सर्व प्रचलित रहे हैं। इनके अतिरिक्त चार्वाक द ान ने भी प्राचीन संस्कृत कविता को प्रभावित किया है। ये तीनों द ान नास्तिक हैं। इस प्रकार से 'साठोतरी कविता को उत्तराधिकार के रूप में न अध्यात्मवादी विचारधारा प्राप्त हुई, न भौतिकवादी।' परम्परा से जो द ान नये कवि को प्राप्त थे, उनकी उसने उपेक्षा की। उपेक्षा इसलिए की कि आधुनिक जीवन में उनकी संगति नहीं बैठ पाई। नये कवि को कोई भी भारतीय द ान आकृश्ट नहीं कर पाया। इसके प्रमुखतः दो कारण रहे। पहला तो सम्भवतः यह कि इन द ानों के पीछे कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं और विज्ञान प्रसार ने इन द ानों को पूरी तरह से खण्डित किया, तथा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि नये कवि ने इन द ानों को अपना आधार बनाना पिश्टपे ाण समझा और उस पिश्टपे ाण की स्थिति को स्वीकार न करके नयी चुनौतियों का सामना किया।

संदर्भ सूची :-

१. संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृष्ठ–३८
२. संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृष्ठ–६०
3. रूमानियत के क्षेत्र में आधुनिकता की व्याख्या, डॉक्टर सूरज पृ0 55
4. नयी कविता, विलायती संदर्भ, डा० जगदीश कुमार, पृष्ठ– १२
5. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य, डॉक्टर रामगोपाल सिंह चौहान, पृष्ठ–६
6. धर्मवीर भारती का साहित्य, डा० चन्द्रमानु, पृष्ठ–४५
7. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डा० रघुवंश, पृष्ठ–२३३, २३४
8 मिथकीय कथा प्रसंग, नयी संवेदना और नया बोध, डा० महावीर सिंह चौहान, पृष्ठ– ११२, ११३
9. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार, पृष्ठ–१४

sonamdhandha11@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 123-132

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों के अनुप्रयोग – एक अध्ययन

डॉ. गोरधन जाटव
बी.कॉम, एम.कॉम, पीएच.डी, पीजीडीसीए
25/129, लक्ष्मी नगर, शाजापुर (म.प्र.)

सार :–

सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों का उपयोग एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत है, जो शोध प्रक्रिया की सटीकता, गति, और निष्पक्षता को नई ऊंचाइयों तक ले जा रहा है। यह अध्ययन विभिन्न तकनीकों जैसे बिग डेटा, मशीन लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, और डिजिटल सर्वेक्षणों का उपयोग करके सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य इन तकनीकों के विभिन्न पहलुओं को समझना और उनके प्रभावों का समग्र दृष्टिकोण प्रदान करना है।

मुख्य शब्द :–

सामाजिक शोध, आधुनिक तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा, मशीन लर्निंग, सांख्यिकीय विश्लेषण, डेटा संकलन, परिकल्पना परीक्षण, समाजशास्त्र आदि।

प्रस्तावना :–

वर्तमान समय में तकनीकी विकास ने हर क्षेत्र में क्रांति ला दी है, और सामाजिक शोध भी इससे अछूता नहीं है। पारंपरिक शोध विधियों की तुलना में आधुनिक तकनीकों का उपयोग शोध को और भी प्रभावी, सटीक, और व्यापक बना रहा है। इन तकनीकों का उपयोग न केवल शोध प्रक्रिया को आसान बनाता है, बल्कि इससे नए दृष्टिकोण और विचारों को भी प्रोत्साहन मिलता है। यह शोध पत्र इस बात पर केंद्रित है कि कैसे आधुनिक तकनीकें सामाजिक शोध अध्ययन को नए आयाम दे रही हैं और यह किस प्रकार से समाज के विकास और नीतियों के निर्धारण में योगदान दे सकती हैं।

शोध विषय का चयन :–

'सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों का अनुप्रयोग' विषय का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि यह विषय वर्तमान समय में अत्यधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है। समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तनों और नई चुनौतियों के कारण पारंपरिक शोध विधियों की सीमाओं का सामना करना पड़ता है। आधुनिक तकनीकें इन चुनौतियों का सामना करने में सहायक हो सकती हैं, जिससे शोध के परिणामों की सटीकता और

विश्वसनीयता में सुधार होता है।

शोध क्षेत्र एवं अवधि :-

यह अध्ययन भारत के विभिन्न राज्यों में किया गया है, जिसमें शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों को शामिल किया गया है। शोध की अवधि 2022 से 2024 तक रही है। इस अवधि में विभिन्न क्षेत्रों के सामाजिक पहलुओं का अध्ययन किया गया है, जिसमें विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक विकास के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

शोध के उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्नानुसार है।

1. सामाजिक शोध में आधुनिक तकनीकों के उपयोग की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
2. बिग डेटा, मशीन लर्निंग, और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी तकनीकों के प्रभाव को समझना।
3. पारंपरिक शोध विधियों की तुलना में आधुनिक तकनीकों के लाभ और चुनौतियों का विश्लेषण करना।
4. आधुनिक तकनीकों के माध्यम से सामाजिक प्रवृत्तियों और व्यवहारों का गहन अध्ययन करना।
5. सामाजिक शोध में नई तकनीकों के अनुप्रयोग के माध्यम से नीतिगत निर्णयों के लिए सटीक और विश्वसनीय डेटा प्रदान करना।

साहित्य की समीक्षा (Literature Review) - साहित्य की समीक्षा निम्नानुसार है।

1. Smith, J. (2019), The Role of Technology in Modern Sociology, Oxford University Press : इस पुस्तक में सामाजिक शोध में तकनीकी अनुप्रयोगों पर चर्चा की गई है और यह बताया गया है कि कैसे तकनीक ने समाजशास्त्र के अध्ययन को प्रभावित किया है।
2. Brown, A. (2021), Big Data in Social Research, Cambridge University Press: यह पुस्तक बिग डेटा के सामाजिक शोध में उपयोग पर केंद्रित है, जिसमें डेटा संकलन और विश्लेषण की आधुनिक तकनीकों का विवरण दिया गया है।
3. Sharma, P. (2020), Modern Techniques in Sociology, Sage Publications : इस पुस्तक में सामाजिक शोध के विभिन्न आधुनिक तकनीकों पर विशेष ध्यान दिया गया है, जो शोधकर्ताओं को इन तकनीकों के अनुप्रयोग के बारे में जानकारी प्रदान करती है।
4. स्मिथ, जे. (2015), "The Impact of Digital Technologies on Social Research," International Journal of Social Research Methodology : इस अध्ययन में, डिजिटल तकनीकों के सामाजिक शोध में अनुप्रयोग का व्यापक विश्लेषण किया गया है। इसमें बिग डेटा, ऑनलाइन सर्वेक्षण, और डेटा विश्लेषण के आधुनिक तरीकों का महत्व बताया गया है।
5. जॉनसन, ए. (2017), "Use of SPSS in Social Research", Journal of Statistical Methods : इस लेख में SPSS सॉफ्टवेयर का सामाजिक शोध में उपयोग और उसके विभिन्न तरीकों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है, जो सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए आवश्यक है।
6. कुमार, वी. (2018), "Sociological Perspectives on Technological Innovations", Indian Journal of Sociology: इस अध्ययन में सामाजिक दृष्टिकोण से तकनीकी नवाचारों के प्रभाव की समीक्षा की गई

है, जिसमें विशेष रूप से समाज में परिवर्तन के कारणों और प्रभावों पर ध्यान दिया गया है।

7. रॉबिन्सन, टी. (2016), "The Role of GIS in Social Research", Geographical Review : इस समीक्षा में GIS (Geographic Information System) का सामाजिक शोध में उपयोग और इसके लाभों का वर्णन किया गया है, विशेषकर भौगोलिक डेटा के संकलन और विश्लेषण में।
8. पटेल, आर. (2020), "The Evolution of Social Research Methodologies", Social Science Research : यह लेख सामाजिक शोध में पारंपरिक और आधुनिक विधियों की तुलना करता है, जिसमें आधुनिक तकनीकों का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखित है।
9. टेलर, एस. (2019), "Virtual Reality as a Tool for Social Research", Journal of Virtual Studies: इस अध्ययन में वर्चुअल रियलिटी के सामाजिक शोध में उपयोग का विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जिसमें इसका उपयोग सामाजिक अनुभवों और व्यवहार के अध्ययन में किया गया है।
10. एंडरसन, पी. (2021), "Data Privacy Concerns in Modern Social Research", Journal of Information Ethics: इस लेख में आधुनिक तकनीकों के उपयोग में डेटा गोपनीयता और सुरक्षा से संबंधित नैतिक चिंताओं की समीक्षा की गई है।
11. गुप्ता, ए. (2019), "Internet-Based Surveys in Social Research", International Journal of Online Research: इस समीक्षा में इंटरनेट आधारित सर्वेक्षणों का सामाजिक शोध में बढ़ता हुआ उपयोग और इसके परिणामों का विश्लेषण किया गया है।
12. मिश्रा, एस. (2020), "Role of Machine Learning in Social Research", Computational Social Science Journal: इस अध्ययन में मशीन लर्निंग तकनीकों का सामाजिक शोध में उपयोग और उसके द्वारा प्रदान किए गए नए दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है।
13. विलियम्स, जे. (2022), "Blockchain Technology for Data Security in Social Research", Journal of Advanced Research Methods: इस लेख में ब्लॉकचेन तकनीक के सामाजिक शोध में उपयोग और डेटा सुरक्षा के लिए इसकी क्षमता का विश्लेषण किया गया है।

शोध प्रविधि :–

इस शोध में मिश्रित शोध विधि (Mixed Methodology) का उपयोग किया गया है, जिसमें गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के आंकड़ों का संग्रह और विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में ऑनलाइन सर्वेक्षण, साक्षात्कार, फोकस ग्रुप चर्चा, आदि का प्रयोग किया गया है।

समंकों का संकलन :–

शोध के लिए आवश्यक आंकड़ों का संकलन विभिन्न ऑनलाइन स्रोतों, सरकारी डेटाबेस, और सर्वेक्षणों के माध्यम से किया गया है। इसके अलावा, सोशल मीडिया, इंटरनेट फोरम, और अन्य डिजिटल प्लेटफार्मों से भी डेटा एकत्रित किया गया है। आंकड़ों के संकलन के दौरान सटीकता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए मानक प्रक्रियाओं का पालन किया गया है।

शोध समस्या :–

यह अध्ययन इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करता है कि आधुनिक तकनीकों का उपयोग किस प्रकार

से सामाजिक शोध की गुणवत्ता और सटीकता को सुधार सकता है। इसमें यह भी अध्ययन किया गया है कि पारंपरिक शोध विधियों की तुलना में तकनीकी विधियां कैसे अधिक प्रभावी हैं और उनके क्या लाभ एवं सीमाएं हैं।

शोध विषय का विस्तृत परिचय :–

सामाजिक शोध का उद्देश्य समाज की संरचना, उसके कार्य, और उसके विभिन्न पहलुओं को समझना है। यह शोध सामाजिक परिवर्तनों, व्यवहारों, और संस्थानों का अध्ययन करता है। पारंपरिक शोध विधियों के साथ–साथ आधुनिक तकनीकों का प्रयोग सामाजिक शोध को और भी व्यापक और सटीक बना रहा है। आधुनिक तकनीकों के आने से शोधकर्ताओं के लिए सामाजिक परिघटनाओं का विश्लेषण करना और अधिक सहज और विस्तृत हो गया है। इन तकनीकों ने न केवल डेटा के संग्रहण और विश्लेषण की प्रक्रिया को बदल दिया है, बल्कि शोध के परिणामों की विश्वसनीयता और सटीकता को भी बढ़ाया है।

सामाजिक शोध के प्रकार :–

सामाजिक शोध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. **गुणात्मक शोध (Qualitative Research) :** इसमें व्यक्ति के अनुभवों, दृष्टिकोणों, और भावनाओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें गहन साक्षात्कार, मामला अध्ययन, और फोकस ग्रुप डिस्कशन का उपयोग किया जाता है।
2. **मात्रात्मक शोध (Quantitative Research) :** इसमें सांख्यिकीय आंकड़ों का उपयोग होता है। इस शोध में सर्वेक्षण, प्रश्नावली, और सांख्यिकीय परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

सामाजिक शोध अध्ययन की विधियां :–

सामाजिक शोध अध्ययन की विधियां निम्नलिखित है।

1. **सर्वेक्षण विधि (Survey Method) :** यह विधि बड़ी संख्या में लोगों से जानकारी एकत्रित करने के लिए प्रयोग की जाती है। इसमें प्रश्नावली और साक्षात्कार का उपयोग किया जाता है।
2. **केस अध्ययन विधि (Case Study Method) :** यह विधि विशिष्ट मामलों का गहन अध्ययन करने के लिए उपयोग की जाती है, जो किसी घटना या व्यक्ति की विशेषताओं को समझने में सहायक होती है।
3. **आंकड़ों का विश्लेषण (Data Analysis) :** आंकड़ों के विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इसमें SPSS, R, और अन्य सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाता है।
4. **गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis) :** इसमें इंटरव्यू, फोकस ग्रुप, और पाठ्य सामग्री का गहन विश्लेषण किया जाता है।
5. **प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct Observation) :** इसमें शोधकर्ता स्वयं समाज या समूह के भीतर जाकर उनके व्यवहारों का निरीक्षण करता है।

सामाजिक शोध अध्ययन की आधुनिक तकनीक एवं उनके अनुप्रयोग :–

1. **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) :** डेटा के पैटर्न को समझने और भविष्यवाणियों को बेहतर बनाने में सहायक।
2. **बिग डेटा एनालिटिक्स (Big Data Analytics) :** बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण कर समाज की

प्रवृत्तियों का अध्ययन।

3. **मशीन लर्निंग (Machine Learning) :** डेटा से सीखने और नई जानकारी उत्पन्न करने में सहायक।
4. **क्लाउड कम्प्यूटिंग (Cloud Computing) :** डेटा स्टोरेज और प्रोसेसिंग की सुविधा।
5. **डिजिटल सर्वेक्षण (Digital Surveys) :** ऑनलाइन प्लेटफार्मों के माध्यम से डेटा संकलन।
6. **सोशल मीडिया एनालिटिक्स (Social Media Analytics) :** सोशल मीडिया प्लेटफार्मों से डेटा का विश्लेषण।
7. **SPSS सॉफ्टवेयर (SPSS Software) :** आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए उपयोगी सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर, जो डेटा प्रबंधन और विश्लेषण की व्यापक क्षमता प्रदान करता है।
8. **आर. प्रोग्रामिंग (R- Programming) :** सांख्यिकीय विश्लेषण, ग्राफिक्स, और डेटा मॉडलिंग के लिए एक शक्तिशाली टूल।
9. **GIS तकनीक (Geographic Information System) :** समाज में विभिन्न भौगोलिक पहलुओं का अध्ययन करने के लिए इस्तेमाल की जाती है।
10. **इंटरनेट आधारित शोध (Internet-Based Research) :** ऑनलाइन डेटाबेस और संसाधनों से जानकारी प्राप्त करना।
11. **वर्चुअल रियलिटी (Virtual Reality) :** समाज के व्यवहारों और संरचनाओं का अनुभवजन्य अध्ययन।
12. **डिजिटल मानविकी (Digital Humanities) :** समाजशास्त्रीय शोध में डिजिटल उपकरणों का उपयोग।
13. **माइक्रोसोफ्ट एक्सेल (Microsoft Excel) :** डेटा विश्लेषण और प्रबंधन के लिए एक आसान और प्रभावी टूल।
14. **ब्लॉकचेन तकनीक (Blockchain Technology) :** डेटा की सुरक्षा और प्रामाणिकता सुनिश्चित करने के लिए उपयोगी।
15. **सेंटीमेंट एनालिसिस (Sentiment Analysis) :** टेक्स्ट डेटा में भावनाओं और दृष्टिकोणों का विश्लेषण।

परिकलनाओं के परीक्षण की विधियां :-

1. **टी-टेस्ट (t-Test) : t**–टेस्ट का उपयोग दो समूहों के बीच के औसत अंतर की सांख्यिकीय महत्वपूर्णता को मापने के लिए किया जाता है। यह परीक्षण यह निर्धारित करता है कि क्या दोनों समूहों के बीच पाया गया अंतर सिर्फ संयोग है या इसके पीछे कोई वास्तविक कारण है।
   उदाहरण : सामाजिक शोध में दो अलग–अलग जनसंख्या समूहों के दृष्टिकोणों की तुलना।
2- **ANOVA (Analysis of Variance) : ANOVA** का उपयोग तीन या अधिक समूहों के बीच औसत अंतर की महत्वपूर्णता का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। यह तकनीक यह निर्धारित करने में मदद करती है कि क्या विभिन्न समूहों के बीच अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है।
   उदाहरण : विभिन्न आयु समूहों के बीच सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन।
3. **काई वर्ग परीक्षण (Chi-Square Test) :** Chi-Square परीक्षण का उपयोग गुणात्मक डेटा में संघ या संबंध का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। यह परीक्षण यह निर्धारित करता है कि क्या दो वर्गीकृत चर के बीच कोई संबंध है।

उदाहरण : शिक्षा स्तर और सामाजिक दृष्टिकोण के बीच संबंध।

4. **पियरसन सहसंबंध (Pearson Correlation) :** पियरसन सहसंबंध का उपयोग दो निरंतर चरों के बीच संबंध की माप के लिए किया जाता है। यह 1 और –1 के बीच मान देता है, जहां 1 का मतलब है पूरी तरह सकारात्मक सहसंबंध, और –1 का मतलब है पूरी तरह नकारात्मक सहसंबंध।
उदाहरण : आय और शिक्षा स्तर के बीच संबंध।

5. **रिग्रेशन विश्लेषण (Regression Analysis) :** यह विधि एक या अधिक स्वतंत्र चरों के आधार पर निर्भर चर की भविष्यवाणी करने के लिए प्रयोग की जाती है। रिग्रेशन विश्लेषण सांख्यिकीय मॉडलिंग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।
उदाहरण : किसी व्यक्ति की शिक्षा और उसकी आय के बीच संबंध का अध्ययन।

6. **MANOVA (Multivariate Analysis of Variance) :** यह ANOVA का एक उन्नत संस्करण है, जिसमें एक साथ कई निर्भर चरों का परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण यह निर्धारित करने में मदद करता है कि क्या एक से अधिक निर्भर चर पर स्वतंत्र चर का कोई प्रभाव है।
उदाहरण : सामाजिक शोध में विभिन्न जनसंख्या समूहों के दृष्टिकोण और व्यवहार का समग्र विश्लेषण।

7. **फैक्टर एनालिसिस (Factor Analysis) :** फैक्टर एनालिसिस का उपयोग डेटा में छिपे कारकों को खोजने के लिए किया जाता है जो कई चरों को प्रभावित कर सकते हैं। यह विधि विशेष रूप से तब उपयोगी होती है जब शोधकर्ता डेटा के बीच के जटिल संबंधों को समझना चाहते हैं।
उदाहरण : विभिन्न सामाजिक चरित्रों के पीछे के मूलभूत कारकों की पहचान।

8. **लॉजिस्टिक रिग्रेशन (Logistic Regression) :** लॉजिस्टिक रिग्रेशन का उपयोग बाइनरी परिणामों की भविष्यवाणी के लिए किया जाता है, जैसे हाँ या नहीं, सफलता या विफलता। यह विधि सामाजिक शोध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायक हो सकती है।
उदाहरण : किसी विशिष्ट सामाजिक कार्यक्रम की सफलता की संभावना का पूर्वानुमान।

संमकों के प्रकार एवं संकलन की विधियां :–

1. **प्राथमिक संमक (Primary Data) :** यह डेटा सीधे स्रोत से संकलित किया जाता है, जैसे सर्वेक्षण, साक्षात्कार, और फोकस ग्रुप। यह डेटा शोधकर्ता के नियंत्रण में होता है और विशेष शोध प्रश्नों के उत्तर देने के लिए एकत्र किया जाता है।

2. **द्वितीयक संमक (Secondary Data) :** यह डेटा पहले से प्रकाशित स्रोतों से संकलित किया जाता है, जैसे सरकारी रिपोर्ट, जनगणना डेटा, और अन्य अनुसंधान। यह डेटा व्यापक और विस्तृत होता है, लेकिन इसमें कुछ सीमाएं हो सकती हैं।

3. **मात्रात्मक संमक (Quantitative Data) :** यह संमक संख्यात्मक रूप में होता है, जिसे मापने और सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी जनसंख्या का औसत आय स्तर।

4. **गुणात्मक संमक (Qualitative Data) :** यह संमक वर्णनात्मक होता है, जैसे किसी व्यक्ति के अनुभव, दृष्टिकोण, और विचार। इसे गुणात्मक शोध विधियों से एकत्र किया जाता है।

5. **आधिकारिक संमक (Official Data) :** यह डेटा सरकारी एजेंसियों और संस्थानों द्वारा संकलित किया जाता है और अक्सर राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध होता है।
6. **अनौपचारिक संमक (Informal Data) :** यह डेटा अनौपचारिक स्रोतों से आता है, जैसे सोशल मीडिया पोस्ट, ब्लॉग, और अन्य ऑनलाइन सामग्री।
7. **व्यवहारिक संमक (Behavioral Data) :** यह संमक व्यक्तियों के व्यवहार और क्रियाओं से संबंधित होता है, जिसे विभिन्न डिजिटल उपकरणों और सॉफ्टवेयर के माध्यम से संकलित किया जा सकता है।
8. **संवादात्मक संमक (Communicative Data) :** यह डेटा व्यक्तिगत और सामूहिक बातचीत से संकलित किया जाता है, जो साक्षात्कार और फोकस ग्रुप से प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट सामाजिक शोध अध्ययन की विशेषताएं :-

1. **सटीकता (Accuracy) :** शोध के परिणाम सटीक और विश्वसनीय होने चाहिए, ताकि उन्हें लागू करने में कोई समस्या न हो।
2. **नवीनता (Innovation) :** उत्कृष्ट शोध नए विचारों और दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित करता है, जिससे ज्ञान के क्षेत्र में नया योगदान होता है।
3. **गहनता (Depth Study) :** शोध विषय का गहन और व्यापक विश्लेषण किया जाना चाहिए, ताकि प्रत्येक पहलू का समग्र दृष्टिकोण से मूल्यांकन हो सके।
4. **प्रासंगिकता (Relevance) :** शोध का विषय और उसके निष्कर्ष समाज और नीतियों के लिए प्रासंगिक होने चाहिए।
5. **विश्वसनीयता (Reliability) :** शोध के परिणामों की पुनरावृत्ति करने पर भी वही परिणाम मिलने चाहिए।
6. **विवेकपूर्ण दृष्टिकोण (Critical Perspective) :** शोध में विभिन्न दृष्टिकोणों का विवेकपूर्ण विश्लेषण और मूल्यांकन होना चाहिए।
7. **संभाव्यता (Feasibility) :** शोध विधियां और प्रक्रिया व्यावहारिक और लागू करने योग्य होनी चाहिए।
8. **शोधनशीलता (Refinement) :** शोध की प्रक्रिया को लगातार सुधारा और संशोधित किया जाना चाहिए।
9. **पारदर्शिता (Transparency) :** शोध प्रक्रिया, डेटा संकलन, और विश्लेषण में पारदर्शिता होनी चाहिए।
10. **संपूर्णता (Comprehensiveness) :** शोध सभी आवश्यक पहलुओं को शामिल करे और किसी भी महत्वपूर्ण पहलू को न छोड़े।

शोध विषय का विश्लेषण :-

शोध विषय 'सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों का अनुप्रयोग' का विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया गया है।

1. **तकनीकी विकास :** तकनीकी विकास ने सामाजिक शोध को नई दिशा दी है, जिसमें डेटा संग्रहण, विश्लेषण, और प्रस्तुति में व्यापक सुधार हुए हैं।
2. **जटिलताएं :** समाज की जटिल संरचना को समझने के लिए पारंपरिक विधियों की तुलना में आधुनिक

तकनीकें अधिक सक्षम हैं।

3. **समय की बचत :** आधुनिक तकनीकों ने शोध प्रक्रिया को तेज और अधिक प्रभावी बना दिया है, जिससे समय की बचत होती है।
4. **डेटा की सटीकता :** आधुनिक तकनीकों का उपयोग डेटा की सटीकता और विश्वसनीयता को बढ़ाने में सहायक होता है। डिजिटल उपकरणों और सॉफ्टवेयर के माध्यम से डेटा संकलन और विश्लेषण में मानवीय त्रुटियों की संभावना कम हो जाती है।
5. **गहन विश्लेषण :** बिग डेटा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, और मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों ने शोधकर्ताओं को बड़ी मात्रा में डेटा का गहन विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान की है, जिससे सामाजिक मुद्दों का बेहतर समझ और समाधान हो सकता है।
6. **पारदर्शिता और नैतिकता :** तकनीकी उपकरणों का उपयोग शोध प्रक्रिया में पारदर्शिता और नैतिकता को बढ़ावा देता है। उदाहरण के लिए, ब्लॉकचेन तकनीक डेटा की सुरक्षा और उसकी प्रामाणिकता सुनिश्चित करने में मदद करती है, जिससे शोध की विश्वसनीयता में वृद्धि होती है।
7. **सामाजिक व्यवहार का पूर्वानुमान :** मशीन लर्निंग और अन्य भविष्यवाणी करने वाली तकनीकों का उपयोग सामाजिक व्यवहार के रुझानों और भविष्य के सामाजिक बदलावों का पूर्वानुमान लगाने में किया जा सकता है, जिससे नीतिगत निर्णयों को और अधिक सटीक बनाया जा सकता है।
8. **समाजशास्त्रीय अनुसंधान के नए दृष्टिकोण :** आधुनिक तकनीकों ने समाजशास्त्रीय अनुसंधान में नए दृष्टिकोण और विधियों का उदय किया है, जो पारंपरिक अनुसंधान विधियों से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, सोशल मीडिया एनालिटिक्स और सेंटीमेंट एनालिसिस जैसी तकनीकों का उपयोग समाज के विभिन्न समूहों के दृष्टिकोण और भावनाओं को समझने के लिए किया जा रहा है।
9. **नीति निर्माण में सहायक :** तकनीकी नवाचारों के माध्यम से संकलित और विश्लेषित डेटा नीति निर्माण की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी और सटीक बना सकता है। इससे समाज की समस्याओं का समाधान तेजी से और समग्र दृष्टिकोण के साथ किया जा सकता है।
10. **शोध की चुनौतियां :** हालांकि तकनीकी उन्नति ने सामाजिक शोध को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया है, फिर भी इसके साथ कुछ चुनौतियां भी जुड़ी हुई हैं, जैसे डेटा की गोपनीयता, तकनीकी उपकरणों का उच्च लागत, और उनके उपयोग में विशेषज्ञता की आवश्यकता। इन चुनौतियों का समाधान सामाजिक शोध के विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष निमानुसार हैं :–

1. **तकनीकी उन्नति का प्रभाव :** आधुनिक तकनीकों ने सामाजिक शोध की गुणवत्ता और सटीकता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये तकनीकें न केवल डेटा संग्रहण और विश्लेषण को आसान बनाती हैं, बल्कि वे समाज की जटिलताओं को भी अधिक सटीकता से समझने में सहायक होती हैं।
2. **समय और संसाधनों की बचत :** आधुनिक तकनीकों के उपयोग से शोध प्रक्रिया में समय और संसाधनों

की बचत होती है, जिससे शोधकर्ता अधिक व्यापक और गहन अध्ययन कर सकते हैं।

3. **भविष्य की संभावनाएं :** तकनीकी नवाचारों के साथ, सामाजिक शोध के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण और विधियों का विकास जारी रहेगा, जिससे समाज के विभिन्न पहलुओं की गहन समझ और समाधान मिल सकेगा।
4. **डेटा की सुरक्षा और नैतिकता :** तकनीकी उपकरणों का उपयोग शोध में डेटा की सुरक्षा और नैतिकता को बनाए रखने में सहायक होता है, जिससे शोध की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता बनी रहती है।
5. **शोध की पारदर्शिता :** आधुनिक तकनीकों के उपयोग से शोध प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता बनी रहती है, जिससे शोध परिणामों की विश्वसनीयता में वृद्धि होती है।
6. **सामाजिक व्यवहार के पूर्वानुमान :** मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी तकनीकों के माध्यम से सामाजिक व्यवहार के भविष्यवाणी में सुधार हुआ है, जिससे नीतिगत निर्णय अधिक सटीक हो सकते हैं।
7. **नवीन दृष्टिकोणों का उदय :** आधुनिक तकनीकों के आगमन के साथ सामाजिक शोध में नवीन दृष्टिकोण और विधियों का विकास हुआ है, जिससे शोधकर्ताओं को नए तरीके से समाज का अध्ययन करने का अवसर मिला है।
8. **नीति निर्माण में योगदान :** तकनीकी नवाचारों से प्राप्त डेटा नीति निर्माण प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होते हैं, जिससे समाज के विकास और समस्याओं के समाधान में बेहतर योगदान दिया जा सकता है।

सुझाव :–

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नानुसार सुझाव प्रस्तुत है :–

1. **तकनीकी विशेषज्ञता का विकास :** शोधकर्ताओं को आधुनिक तकनीकों का सही और प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए तकनीकी विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए।
2. **डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता :** शोध संस्थानों को अधिक डिजिटल उपकरणों और सॉफ्टवेयर की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए, ताकि शोध प्रक्रिया को और भी सरल और प्रभावी बनाया जा सके।
3. **डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा :** शोधकर्ताओं को डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए, ताकि शोध में नैतिकता और विश्वसनीयता बनी रहे।
4. **शोध विधियों का परिशोधन :** शोध विधियों को लगातार परिष्कृत और अद्यतन किया जाना चाहिए, ताकि वे नवीनतम तकनीकों के साथ मेल खा सकें और अधिक सटीक परिणाम प्रदान कर सकें।
5. **विविधता का समावेश :** शोध में विविधता और समावेशिता को प्राथमिकता देनी चाहिए, ताकि समाज के सभी वर्गों के दृष्टिकोणों और अनुभवों को शामिल किया जा सके।
6. **प्रासंगिक विषयों का चयन :** शोधकर्ताओं को समाज के प्रासंगिक और महत्वपूर्ण मुद्दों का चयन करना चाहिए, ताकि उनके शोध का समाज पर सकारात्मक प्रभाव हो।
7. **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग :** शोध संस्थानों और शोधकर्ताओं को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए, ताकि वैश्विक स्तर पर सामाजिक मुद्दों का समाधान खोजा जा सके।
8. **शोध परिणामों का प्रसार :** शोध परिणामों का व्यापक प्रसार सुनिश्चित किया जाना चाहिए, ताकि समाज

के विभिन्न क्षेत्रों में उनका लाभ उठाया जा सके और नीति निर्माण में उनका उपयोग हो सके।

उपसंहार :-

सामाजिक शोध अध्ययन में आधुनिक तकनीकों का अनुप्रयोग एक अत्यावश्यक पहलू बन गया है, जो समाज की बदलती जरूरतों और चुनौतियों के आधार पर सामाजिक संरचनाओं, व्यवहारों, और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने में सहायक है। वर्तमान समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तनों के कारण पारंपरिक सामाजिक शोध विधियों की प्रभावशीलता सिमित रह गई है। इंटरनेट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा, और मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों ने शोध के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया है।

इस शोध पत्र ने सामाजिक शोध में आधुनिक तकनीकों के महत्व को स्पष्ट किया है। यह स्पष्ट है कि भविष्य में सामाजिक शोध के क्षेत्र में तकनीकी अनुप्रयोगों का उपयोग और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्मिथ, जे. (2015). डिजिटल तकनीकों का सामाजिक शोध पर प्रभाव. अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक अनुसंधान कार्यप्रणाली पत्रिका, 18(4), 230–245.
2. जॉनसन, ए. (2017). सामाजिक शोध में SPSS का उपयोग. सांख्यिकीय विधियों की पत्रिका, 22(3), 98–112.
3. कुमार, वी. (2018). तकनीकी नवाचारों पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण. भारतीय समाजशास्त्र पत्रिका, 44(2), 123–138.
4. रॉबिन्सन, टी. (2016). सामाजिक शोध में GIS की भूमिका. भूगोलिक समीक्षा, 39(7), 78–95.
5. पटेल, आर. (2020). सामाजिक शोध प्रविधियों का विकास. सामाजिक विज्ञान अनुसंधान, 32(5), 205–220.
6. टेलर, एस. (2019). सामाजिक शोध के लिए वर्चुअल रियलिटी का उपकरण के रूप में उपयोग. वर्चुअल अध्ययन पत्रिका, 15(1), 56–71.
7. एंडरसन, पी. (2021). आधुनिक सामाजिक शोध में डेटा गोपनीयता चिंताएँ. सूचना नैतिकता पत्रिका, 29(2), 189–204.
8. गुप्ता, ए. (2019). सामाजिक शोध में इंटरनेट आधारित सर्वेक्षण. ऑनलाइन अनुसंधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 17(3), 142–158.
9. मिश्रा, एस. (2020). सामाजिक शोध में मशीन लर्निंग की भूमिका. संगणकीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 11(6), 78–93.
10. विलियम्स, जे. (2022). सामाजिक शोध में डेटा सुरक्षा के लिए ब्लॉकचेन तकनीक. उन्नत अनुसंधान कार्यप्रणाली पत्रिका, 24(8), 311–328.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 133-144

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Chams: Hindu's of Vietnam's Champa Kingdom

Dr. Deepak Kumar

Assistant Professor, History, NCWEB, University of Delhi, Delhi

Abstract :

The Champa Kingdom existed in present-day Vietnam from the 2nd to the 17th centuries. Hinduism arrived in the region via Indian maritime trade routes in the 4th century and became the state religion of Champa. Hinduism was patronized by various Champa rulers. Hinduism deeply influenced Champa's artistic and architectural style, creating a distinctive cultural blend of indigenous Southeast Asian and Indian traditions. Cham rulers built numerous Hindu temples that worshiped Shiva, Vishnu, Durga and other Hindu deities. Champa's political power eventually waned by the 17th century, but Hindu cultural and religious traditions left a deep mark on Vietnamese culture. This research paper covers the core ideas of Hinduism in the Champa Kingdom, its influence, and its cultural contributions.

Keywords: Hinduism, Cham civilization, Champa, South Asia, Vietnam

Introduction :

The Champa Kingdom (**Chiêm Thành** in Vietnamese) was an important and historical Hindu kingdom which was established in the 2nd century BC on the eastern coast of Vietnam and existed until 1832, when it was conquered by the Vietnamese Empire under its emperor **Minh Mạng**. This kingdom was known as Nagaracampa (Sanskrit: नगरचम्प; Vietnamese- Chím Thanh; modern Cham - Champa) and Champapura or Champenagari was its capital city.

This kingdom stretched from north to south along the east coast of Vietnam and was divided into several important regions such as Amaravati, Panduranga, Kauthara, Vijaya and Indrapura. The people here were known as Cham (**Người Chăm** in Vietnamese). Champa had important trade relations with South India in the Indian subcontinent. Due to this they were heavily influenced by Hinduism, Indian influence is clearly visible in its culture, religion, art and architecture.

The Cham people :

The Cham people lived a diversified and skilled life and their works enriched the Champa culture. They were farmers and fishermen who obtained resources from agriculture

and the sea. Their contribution to temple building and sculpture was also very significant. Cham craftsmanship, especially in their temples and sculptures, shows the influence of Indian art, but it also has its own distinctive Cham style. The Cham people were highly active in commerce and trade, and they established important trade networks between China, the Malay Archipelago, and the Annamite (Vietnam highlands). These trade relations made the Cham people very rich in cultural and economic terms. The main commercial route of the Cham people was by sea, and this was the reason why they had contact with distant countries, which also introduced external influences into their culture.

History and Ancestry of the Cham People :

The Cham people are said to be the descendants of the **Sa Huỳnh**, an ancient society that arrived by sea from the Malay Archipelago to the east coast of Vietnam around 1000 BC. Here they built a vigorous society and culture using the resources of the local land and sea. The Cham people had settled on the eastern coast of Vietnam for about thirteen hundred years. During this time, they developed a strong social and political structure and established their own independent political entity, the Cham Empire, from 150-1450 AD.

Sri Mara (**Khu Liên**) was the founder of the Champa Kingdom. Under his leadership, the Cham people struggled against the Eastern Han dynasty. After this struggle, Sri Mara declared himself king of **Lâm Ấp** (Champa - present-day central Vietnam). He is regarded as the first emperor of the first historically known dynasty of Champa. His empire became an important cultural and political power, occupying a significant place in the history of Southeast Asia. In 248 AD, the Champa ruler defeated China in a decisive sea invasion, which symbolized the power and expansion of the Champa Empire. After this, the struggle for territorial dominance between the Cham and the Chinese Empire continued for another decade. However, over time, China's influence in the region diminished and Champa maintained its independence and power.

Bhadravarman I (Phạm Hồ Đạt in Vietnamese) was the most notable ruler of the Cham dynasty from 380-413 AD. He ascended the throne as Dharmamaharaja Sri Bhadravarman I. He was the first king of Champa to use the title 'Varman'. The title was influenced by the Pallava dynasty of southern India. Bhadravarman borrowed it from the kings of Cambodia. He moved the capital of Champa to Singhapura (Today's **Trà Kiệu**) in Quảng Nam Province. The Cham people were introduced to Indian culture during Bhadravarman's rule and adopted Hinduism as their state religion. Bhadravarman himself was a scholar, well versed in the Vedas. He invited Indian scholars and Brahmins to settle in his kingdom. His efforts led to religious and cultural advancement in Champa.

He built many north-facing temples and palaces at **Mỹ Sơn** and **Trà Kiệu**. Inscriptions in Sanskrit language and Brahmi script are found here. The most famous is the Vo-Chanh inscription, which reveals the construction of a temple dedicated to Lord **Bhadresvaraswami** (Bhadreshwara - auspicious form of Shiva). More than 70 temples were built in Mỹ Sơn. Unfortunately, most of Mỹ Sơn's temples and structures were destroyed by American bombing in 1969 during the Vietnam War. However, My Son still remains an important historical site, and serves as a vital link to understanding the history and culture of Vietnam and Southeast Asia.

Bhadravarman's son **Gangaraja** founded the Gangaraja dynasty (Gangeśvara or Simhapura dynasty) and consolidated its power and influence. Gangaraja was a wise and brave man. He ruled for a short time, then abdicated the throne and went on a pilgrimage to the Ganges River in northeastern India. His long journey led to civil war in the country. He was succeeded by his nephew Manorathavarman. **Manorathavarman** ruled until about 420

CE. His next successor in the dynastic line was Rudravarman I (reigned 527–572), who came from Manorathavarman's sister lineage.

Rudravarman I, a matrilineal descendant of Gangaraja, became king of Champa in 529 AD. During his reign, the Bhadresvara temple complex was damaged by a great fire. He was succeeded by his son **Shambhuvarman** in 572AD. In 605, the Sui Empire invaded Lam Ap, defeated Sambhuvaraman and plundered the Cham capital Trà Kiệu. The Sui Empire's attempt to administer parts of Champa was short-lived. After the fall of the Sui Empire, the Cham quickly regained independence and Sambhuvaraman reestablished his power.

Shambuvarman again rebuilt the Bhadreshwara temple at My Son and re-established the deity as Shambu-Bhadreshwara. According to a pillar inscription of about 600 CE, The lord **Shambhu-Bhadreshwara** is the creator of the world and destroyer of sin, and Shambhuvarman expressed the wish that "Champa should be the cause of happiness in his kingdom. This makes it clear that Shambhuvarman worked for the religious and social prosperity of his kingdom. After the death of Sambhuvarman in 629, his son **Kandarpadharma** ascended the throne in 630-31.

Kandarpadharma was the first king of Champa who officially used the titles **Champāpṛthivībhuj** (Lord of the land of Champa) and **Srī champeśvara** (Lord of Cham) for himself; **Champādeśa** (Country of Cham) and **Champāpura** (City/State of Champa) for his kingdom. His efforts played an important role in establishing the Champa Kingdom as a stable and prosperous state.

Prabhasadharma I, son of Kandarpadharma, assumed the title of **Vikrantavarman** when he was crowned in 653. He expanded the Champa kingdom to the south and attempted to unify the region under one dynasty. During his reign he built many temples in Mỹ Sơn, especially dedicated to Shiva.According to an inscription from Mỹ Sơn, **Vikrantavarman II**, son of Vikrantavarman I, was coronatcd on 19 May 687 and is honourcd as a "lion among kings". According to this inscription, Vikrantavarman II installed a sheath and crown for his two favourite deities, Īśānesvara and Bhadreśvara, describing their religious rituals and beliefs.

The Champa Kingdom collapsed in the 7th century and the central authority of the empire weakened thereafter. During this time, lesser Hindu dynasties such as the **Bhrggu** and **Panduranga** established their dominance over various parts of the Champa Kingdom. The emergence of these small kingdoms brought regional dominance to the Champa Kingdom. This gradually led to the decline of the political and cultural glory of the empire. As a result, thc glory of Mỹ Sơn, which was carlicr an important rcligious and cultural ccntcr for Hinduism and royal families, also began to fade from the 8th century onwards.

During the **Panduranga dynasty, Prithvivindravarman** (758-770 AD) initiated the construction of the temple of Po Nagar at Nha Trang (Kauṭhāra) during the 8th century. This temple was built to worship Lady Po Nagar and her Indian form, Bhagavati. Bhagavati was an important goddess in Hinduism who symbolized land and fertility. In 774, during the rule of Prithvindravarman's nephew **Jaya Satyavarman** (770 – 787 AD), Javanese invaders from the south made a surprise seaborne invasion of Champa, plundered the cities, stole the golden

image of Bhagavati and burned the Po Nagar temple. Satyavarman promptly repelled the invaders and rebuilt the temple.

During the reign of **Satyavarman Indravarman I** (787-801) the Javanese plundered Panduranga's capital Virapura (Phan Rang), destroying the temples of Hòa Lai dedicated to hadrādhipatīśvara to thc wcst of Virapura. Thc Javancsc continucd to occupy Panduranga until they were driven out by Indravarman in 799. Indravarman renovated the temple.

The Bhrgu dynasty (800-986) rose to prominence during the reign of **Bhadravarman III**. His son **Indravarman III**, a prominent scholar and highly educated in Sanskrit writings and Buddhist philosophy, faced invasions from the Kambuja kingdom, which caused heavy losses to his kingdom. His son, **Parameswaravarman**, died in the conflict after being attacked by the Annamis (Northern Vietnam, **Dai Viet**). **Vijaya Sri Harivarman II** defeated the Annamese in 989 AD and subjugated the major part of the Champa Kingdom. In 991, Harivarman II rebuilt the temple of Ishanbhadresvara in Mỹ Sơn.

The Annamese people regained control over the Champa Kingdom in the 13th century. The invasion of the Mongols in the 16th century weakened the Annamese people, leading to conflict between the Champa Kingdom and the Annamese people. Thus, the balance of power between the kingdoms kept changing from time to time and the history of thc Champa Kingdom was full of such conflicts and political uphcavals.

The Champa Kingdom merged into Dai Viet/Vietnam in the 17th century. However, the Cham region in Vietnam remained a separate entity until 1883. The Vietnamese people prompted their own mass migration by the Cham community in the 17th century. Due to provocation and conflict, the Cham people migrated to countries such as the Malay Peninsula, Java, Hainan Island, Cambodia and Sumatra. Today, a small Cham community in Vietnam is still keeping its cultural identity and identity alive, but most Cham people have now settled in various countries.

Five principalities of Champa :

The Champa kingdom was part of a diverse cultural and political structure, consisting of five major principalities.

1. **Indrapura (875-1100 AD) :** Indrapura ("City of Indra", Phật thành) was the capital of Champa. It was located at the site of the modern village of Đồng Dương, near the modern city of Da Nang. This region was the major political and cultural center of Champa, known today as a site of important inscriptions and archaeological sites.

2. **Amaravati :** Amaravati was located in present-day Châu Sa citadel of Quảng Ngãi Proe. Amaravati was first mentioned in an inscription dated 1160 AD near Po Nagar. This inscription describes the deeds of King Jaya Indravarman I (reigned 960–972).

3. **Vijaya :** Vijaya was located in today's Bình Định Province (Tumpraukvijaya). Vijaya is mentioned in a 1160 AD inscription at Po Nagar. The archaeological site of Cha Ban has been recognised as the capital. Significant excavations have also been carried out at nearby Tháp Mắm, which may have served as a religious and cultural centre. Around the 1150s, Vijaya became the political and cultural hub of Champa. It was the

center of Champa until 1471 AD, when it was devastated by the Vietnamese and the headquarters of Champa were moved southward.

4. **Kauthara :** Kauthara was located in present-day Nha Trang (Aia Trang) in Khánh Hòa Province (Yanpunagara). Its religious and cultural hub was the temple of Po Nagar, the ruins of which can still be seen at Nha Trang. Kauthara is first mentioned in an inscription at Po Nagar in 784 AD.

5. **Panduranga :** Panduranga was located in Phan Rang–Tháp Chàm (Pan Rang) in present-day Ninh Thuận and Bình Thuận province. Panduranga, whose capital was Pariak, was the last Cham territory conquered by the Vietnamese. Panduranga is first mentioned in an inscription in Po Nagar around 817 AD.

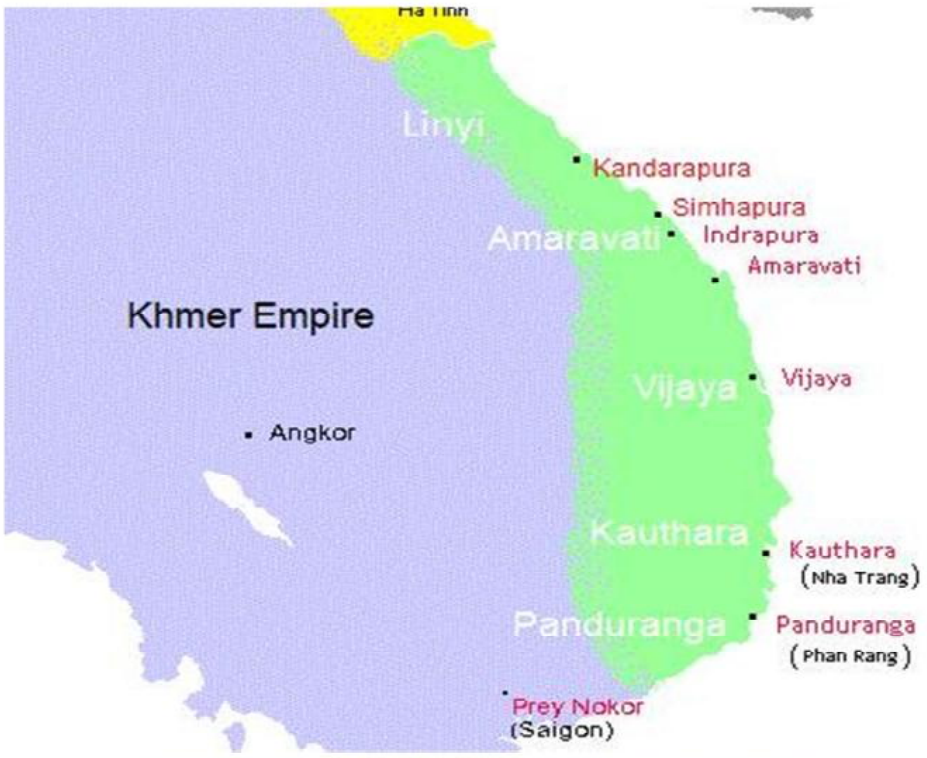

Figure 1: Champa during 1000 – 1100 CE (Source – Wikipedia)

Art and architecture of the Champa:

The unique architecture of Champa can be seen in their places of worship and religious structures. Cham temples had fine carvings, architecture and wonderful sculptures, which reflected their religious beliefs and their deep reverence for art. Even today, ruins of temples and architecture built by the Cham people exist in Vietnam and Cambodia, proving their high level of craftsmanship and art.

The art and architecture of the Cham bears remarkable similarities with the architectural styles of eastern India, particularly the Dravidian and Odisha Kalinga traditions. The Cham built temples with a unique architectural style with brick walls and spires, unlike the Khmer people of Cambodia (another Hindu monarchy) who used mostly stones to build temples. The ruins of Cham temples can still be seen in Vietnam and Cambodia.

Unfortunately, many Cham temples and their sculptures, and other artifacts were destroyed or damaged during the many conflicts that took place in the 20th century.

The Champa kingdom built huge temple complexes that are still an important part of their history and culture today. These temples mainly worshiped Lord Shiva, who was considered the patron of the Champa dynasty. The Mỹ Sơn temple complex was particularly important and at one time there were 70 temples in this complex, of which only 25 remain now. Sadly, the main tower of this complex was severely damaged by American aircraft during the Vietnam War in 1969.

The 6th century **Mỹ Sơn** Temple is the oldest surviving monument in Southeast Asia, which clearly shows the influence of Hinduism and Indian culture. A detailed examination of the temples and sculptures of the Champa Empire makes it clear that these were strongly influenced by the Pala Bengal style, Odishan Kalingan form, and Dravidian architectural styles.

Pala Bengal Style: The influence of the Pala style of Bengal can be clearly seen in the Cham temples, especially in the temples of the 10th to 12th centuries. Architectural similarities have been found between the temples of Deulghata (Purulia district) and Sonatpal village (Bankura district) in West Bengal and the temples of Bin-Dinh region of Champa kingdom. Besides, the parallel prevalence of Śākta (Shakti) and Tantra worship in Bengal and Champa kingdom is also an important indication of this influence.

Odisha Kalingan Form: The Kalingan style of Odisha, which is famous for its intricate and beautiful architecture, is also seen in Cham temples. A ten-armed Shiva idol in Thap Bánh Ít temple shows a typical form of Pala art, which clearly shows the influence of the art of Odisha and Bengal.

Dravidian Architectural Style: The influence of the Dravidian style also can be seen in the Cham temples of the 7th and 8th centuries. RC Majumdar has speculated that the origin of the Cham temples was influenced by the architectural style of the Pallava temples located in Mahabalipuram and Kanchipuram in Tamil Nadu. The 7th century rock-cut temples of Mahabalipuram and Champa have unique architectural similarities, which further makes this influence evident.

Figure 2: Mỹ Sơn Sanctuary (Source- https://whc.unesco.org/)

Figure 3: Bin-Dinh Temples (Source -Wikipedia)

Figure 4: Bánh Ít Tempels, Qui Nhon, Vietnam (Source- https://www.orientalarchitecture.com/)

Figure 5: The towers of Po Nagar, Cù Lao Mountain (Source - Wikipedia)

Figure 6: Tháp Hòa Lai, Ninh Thuận, (Source - Wikipedia)

Artifacts

Many important Hindu artifacts have been discovered in Vietnam, which bear testimony to the ancient Hindu culture and religion of the region. The Hinduism of Champa was primarily Shaivite, incorporating aspects of local religious cults such as the worship of the earth deity Lady Po Nagar. In 2001, 320 gold plates were found, decorated with Hindu deities such as Shiva, Garuḍa, Narasiṃha, Kūrma, and Durgā. Some of these statues were in human form, while some were in the iconic liṅga form, characteristic of the Cham Shaivite tradition. The importance of these artifacts lies not only in their religious context, but they also reflect the ancient influence of Hinduism in the region.

Figure 7: Black Granite Statue of Po Nagar (earth deity) in Nha Trang (Source- Wikipedia)

Figure 8: Vishnu lying at the bottom of the ocean with a lotus plant growing from his navel and Brahma being born from the lotus. 7th century, Mỹ Sơn (Source Wikipedia)

Figure 9: 10th century statue of dancing Shiva, Museum of Cham Sculpture. (Da Nang) (Source- Wikipedia)

Figure 10: Hindu goddess Bhagavati (Durga), 15 AD, Po Nagar towers in Nha Trang (Source Wikipedia)

Figure 11: Vishnu Mounted on Garuda, Da Nang province, 9th Century, (Source- https://www.metmuseum.org/)

Figure 12: Ganesha, 7th–8th century, Da Nang, Vietnam (Source- https://www.metmuseum.org/)

Liṅga

The liṅga (or liṅgam) is an important religious and cultural symbol in Hinduism, it had deep significance in the Shaivite tradition of Champa. The liṅga, usually made of black stone, was a symbol of the god Shiva. It was installed as a sacred symbol in Cham royal temples. Cham rulers personally sanctified lingas and gave them religious and official identity by prefixing the suffix - "Ishwar" - to their names.

Mukhaliṅga: The Lukhaliṅga, a linga engraved with the image of the human or humanoid face of Shiva was an important symbol. The linga represented Shiva's personality and his human form.

Jaṭāliṅga: The Jataliṅga has a stylized image of Shiva's chignon (braid) hairstyle. The liṅga represented Shiva's distinctive form and glory, especially his head.

Segmented liṅga: The segmented liṅga is a special type of liṅga pillar that is divided into three segments, representing the three elements of the trinity of Hindu divinity. It consists of three parts:

1. The lower part, which represents Brahma and is square in shape.
2. The middle part, which represents Vishnu and is octagonal in shape.
3. The top part, which represents Shiva and is circular in shape.

Kośa: The kosha, a cylindrical basket of precious metal, was used to cover the liṅga. It was an important part of the decoration of the liṅga and was characteristic of Cham

Shaivism. Cham kings named these koshas in the same way they named lingas, reflecting their religious beliefs.

Figure 13: Liṅga, Mỹ Sơn, 10th Century (Source- Wikipedia)

Figure 14: Mukhaliṅga, Mỹ Sơn, 10th Century (Source- https://tamilandvedas.com/)

Figure 17: Cham Kosa - Shiva Head Metal Sleeve Fitted to a Liṅgam 800 AD, Champa Kingdom, Vietnam (Source- http://www.covatvietnam.info/)

Figure 18: Shivliṅga, 10th century (Source Wikipedia),

Thus, the linga had great religious and cultural significance in Cham culture, and it symbolized their reverence for Lord Shiva and the power of their imperial empire.

Language and Script

The **Võ Cạnh inscription**, one of the oldest known inscriptions in the region, is an important example from the hundreds of inscriptions discovered in today's Vietnam. These inscriptions used Sanskrit language and are found in the central region of Vietnam, particularly the **Da Nang** River valley.

Cham script (known as "Chăm chữ" in Vietnamese) was used by the Cham people of the Champa Kingdom. The Cham script evolved from the **South Indian Brahmi** script, which was used in ancient India. Over time, it developed unique features to suit the linguistic and cultural needs of the Cham people. The script shares some common elements with other Southeast Asian scripts, such as the scripts of Cambodia and Thailand, which were influenced by Indian writing systems. Sanskrit verses were found in stone sculptures and temple carvings in Hindu temples in Champa, which emphasize the evolution of this script.

The Cham people adopted the Latin script during the French colonial period in Southeast Asia. As a result, the Cham script gradually weakened. Sanskrit was once widely used, and it was an important language used not only in India, but also in Vietnam and other Southeast Asian countries. This proves that Sanskrit-based Hindu culture was never constrained by ethnic or regional boundaries.

Figure 19: Figure17: Sanskrit, Võ Cạnh, Nha Trang, Khanh Hoa, Vietnam National Museum of Vietnamese History (Source-Wikipedia)

The Cham People Today

The Cham people are still struggling to preserve their cultural and religious heritage and face various difficulties, while their existence and traditions are still alive today. Currently the Cham are spread across East Asia. They are Sunni Muslims in Cambodia, Shia Muslims in China, and followers of Buddhism in Thailand. A small minority of Vietnamese Cham (also known as Eastern Cham) follow Islam, and a small number follow Mahayana Buddhism, but most are Hindu. They are known as **Balamon** (Brahmin) Cham or **Balamon Hindu**. Cham Hindus believe that when they die, the sacred bull Nandi comes to take their soul to the holy land of India.

The Cham Hindus still follow their ancient Hindu traditions. Their religious ceremonies, such as marriage, birth and death rites, are performed according to Hindu customs. The Cham temples, which were once the centre of their religious life, still stand and reflect their glory. However, due to the influence of modernity and materialism, today's youth are less committed to these traditions, and it is becoming difficult to maintain the traditional cultural lifestyle.

Ho Chi Minh City now has 4,000 Indian (Tamil) Hindus. The major Hindu temples here include **Mariamman** Temple, Sri **Thendayuthapani** Temple, and **Subramanya Swamy** Temple. These temples are not only considered sacred by the local Vietnamese and Chinese community but also have deep connections with Indian Hindu traditions. These temples and their rites are signs of the preservation of old traditions of Hinduism in Vietnam.

Figure 20: Mariamman Hindu Temple in Ho Chi Minh City (Source: Collected)

Figure 21: Kate Festival, Po Klong Garai Temple, Ninh Thuan, Vietnam, (Source- https://vietnamnet.vn/)

Conclusion

The history of the Champa Kingdom has shaped the cultural and religious flow of not only Vietnam, but also Southeast Asia. Despite the disintegration of this prosperous empire, the Cham people have managed to keep their culture, religion and traditions alive, which can still be seen in Vietnam and surrounding areas today. The temples and architecture they built are a testament to the deep religiosity and unique craftsmanship of the Cham culture.

It is a challenge for the Cham Hindu people to preserve their cultural and religious identity in today's times. Globalization and modernity have influenced Cham traditions. However, some efforts are being made to preserve their customs, religious rituals and cultural heritage. This is challenging for the Cham Hindu community, as they lack the resources and organization to keep traditional customs alive.

References:

- Hall, D.G.E. *A History of Southeast Asia*. St. Martin's P, 1968.
- Haque, Z.M. *The Champa Kingdom: Trade, Culture, and Religion*. Columbia University Press, 2017.
- Majumdar, R.C. *Hindu Colonies in the Far East*. Asiatic Society, 1944.
- Majumdar, R.C. *Champa: History and Culture of an Indian Colonial Kingdom in the Far East (2nd–16th Century A.D.)*. Manohar Publishers & Distributors, 2024.
- Maspero, G. *The Champa Kingdom: The History of an Extinct Vietnamese Culture*. White Lotus Press, 2002.
- Nakamura, R. *A Journey of Ethnicity: In Search of the Cham of Vietnam*. Cambridge Scholars Publisher, 2023.
- Sarkar, H.B. *Cultural Relations Between India and Southeast Asian Countries*. Firma K.L. Mukhopadhyay, 1985.
- Phương, Trần Kỳ, and Bruce M. Lockhart. *The Cham of Vietnam: History, Society and Art*. National University of Singapore Press, 2011.Sidwell, M. *The Languages and Linguistics of Mainland Southeast Asia: A Comprehensive Guide*. De Gruyter Mouton, 2021.
- Swami, S. *Champa: A Short Sketch of Her Historical Evolution Based on Architectural Ruins*. Suhrid Kumar, Calcutta University, 1938.
- Tran, K.P. *The Cham of Vietnam: History, Society, and Art*. NUS Press, 2011.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 145-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तराखण्ड विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व : एक विवेचनात्मक अध्ययन

श्रीमती भगवती टम्टा, असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान),
श्रीमती दीपिका नेगी, असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र)
स्व० चन्द्र सिंह शाही रा० स्ना० महाविद्यालय कपकोट (बागेश्वर)

शोध सार :–

स्त्री और पुरूष समाज के दो प्रमुख अंग है। एक संतुलित राष्ट्र के निर्माण में दोनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गये। सन् 1950 में सार्वभौमिक मताधिकार द्वारा उन्हें मत देने का अधिकार प्रदान किया गया परंतु राजनीतिक भागीदारी शब्द केवल मतदान तक सीमित नहीं है। इसमें मतदान के अधिकार के साथ–साथ निर्णय, नेतृत्व, राजनीतिक जागरूकता और सक्रियता सम्मिलित है।

कुंजी शब्द :– राजनीतिक भागीदारी, महिलाएं, महिला प्रतिनिधित्व।

प्रस्तावना :–

एक संतुलित राष्ट्र के निर्माण के लिए महिला और पुरुष की समान भागीदारी आवश्यक है। स्वामी विवेकानंद का कथन है कि "स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाए बिना विश्व का कल्याण संभव नही है"। कोई भी राष्ट्र तब तक सशक्त नहीं हो सकता, जब तक कि उस देश की आधी आबादी अर्थात् महिलाएं सशक्त नहीं हो जाती है। सशक्तिकरण से आशय उस क्षमता से है, जिसमें महिलाएं अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वयं ले सके। भारतीय समाज प्रारंभ से ही पुरूषप्रधान तथा पितृसत्तात्मक रहा है, जिसमें महिलाओं की स्थिति पुरूषों की अपेक्षा निम्न रही है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गये। भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार तथा नीति–निर्देशक तत्वों में लैंगिक समानता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सन् 1950 में सार्वभौमिक मताधिकार द्वारा उन्हें मत देने का अधिकार प्रदान किया गया परंतु राजनीतिक भागीदारी शब्द केवल मतदान तक सीमित नहीं है। इसमें मतदान के अधिकार के साथ–साथ निर्णय, नेतृत्व, राजनीतिक जागरूकता और सक्रियता सम्मिलित है।

महिलाएं और राजनीतिक प्रतिनिधित्व :-

संविधान के 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज व्यवस्था तथा नगर निकायों में 33 प्रतिशत आरक्षण से स्थानीय स्वशासन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ा है। परंतु आजादी के 75 वर्षों के बाद भी संसद तथा राज्य विधानमण्डलों में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। संसद तथा राज्य विधानमण्डलों में पुरूष प्रतिनिधित्व तथा महिला प्रतिनिधित्व के अनुपातों में बहुत अधिक अंतर है। 9 दिसम्बर, 2022 कों विधि और न्याय मंत्री किरेन रिजिजू द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार देश की 19 विधानसभाओं में महिला विधायकों का प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत से कम है तथा पूरे देश की विधानसभाओं में महिला विधायकों का औसत मात्र 8 प्रतिशत है, जिसमें उत्तराखण्ड राज्य की विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व 11.43 प्रतिशत है।

उत्तराखण्ड राज्य का निर्माण 9 नवम्बर, 2000 को हुआ। राज्य निर्माण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। रोजगार के लिए अधिकतर पुरूषों के पलायन के कारण घर–परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारी महिलाओं के कंधों पर है। कृषि और पशुपालन यहां आजीविका के मुख्य साधन है। महिलाएं अर्थव्यवस्था की धुरी है। साथ ही महिलाओं की सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भूमिका रहीं है।

महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने हेतु उत्तराखण्ड राज्य द्वारा 2008 में पंचायती राज व्यवस्थाओं में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को अपनाया गया। परिणामस्वरूप 2008–09 के पंचायती चुनावों में और 2014 के पंचायती चुनावों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 50 प्रतिशत से अधिक रहा। परंतु यह प्रतिनिधित्व विधानसभा तक पहुंचते–पहुंचते बहुत कम हो जाता है।

तालिका –1

वर्ष	कुल महिला प्रत्याशी	विजयी महिला प्रत्याशी
2002	72	4
2007	56	4
2012	63	5
2017	62	5
2022	63	8

स्रोत– दैनिक जागरण

तालिका –2

वर्ष 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकड़े-

आंकड़े	महिला	पुरूष	कुल
जनसंख्या	4948089	5138203	10086292
साक्षरता प्रतिशत	70.01%	87.39%	78.82%
लिंगानुपात			963

स्रोत – जनगणना 2011

उपरोक्त तालिका – 1 से विदित है कि राज्य निर्माण से अब तक संपन्न हो चुके पाँच विधानसभा चुनावों

में महिला विधायकों की संख्या कभी भी दहाई का आंकड़ा नहीं छू पाई है। वर्ष 2002 तथा 2007 विधानसभा चुनावों में महिला प्रतिनिधित्व 5.71 रहा है। जबकि वर्ष 2012 तथा 2017 विधानसभा चुनावों में महिला राजनीतिक दलों 7.14 प्रतिशत रहा है। जो वर्ष 2022 के चुनावों में तुलनात्मक रूप से बढ़कर 11.42 प्रतिशत हो चुका है।

तालिका –2 से विदित है कि राज्य की कुल आबादी मे महिलाओं की आबादी लगभग आधी है और 70 सीटों वाली विधानसभा में महिला विधायकों का अधिकतम प्रतिनिधित्व प्रतिशत 11.42 है। मजबूत लोकतंत्र के लिए राजनीतिक भागीदारी के साथ निर्णय निर्माण में उनकी मौजूदगी बढ़नी चाहिए।

महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में कमी के प्रमुख कारण :–

1. **राजनीतिक दलों द्वारा प्रत्याशी के रूप में महिलाओं को प्राथमिकता न देना** – विधानसभा में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व का एक कारण प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा महिला प्रत्याशी को टिकट न देना है। 2022 के विधानसभा चुनाव में प्रमुख राजनीतिक दल कांग्रेस तथा बीजेपी द्वारा मात्र 13 महिला प्रत्याशियों (18.57 प्रतिशत) को टिकट दिया गया, जिसमें से 8 महिला प्रत्याशी (18.57 प्रतिशत) विधानसभा में पहुंचने में सफल रही है महिलाओं को टिकट देने में राजनीतिक दलों की उदासीनता महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व का कारण हैं।
2. **घर–परिवार की जिम्मेदारी** – समाज में व्याप्त परंपरागत लिंग आधारित श्रम विभाजन के कारण महिलाओं को पुरूषों की तुलना में घर–परिवार को अधिक समय देना होता है। यही कारण है कि महिलाएं अपने घरेलू उत्तरदायित्वों के कारण राजनीतिक गतिविधियों में कम सक्रिय रह पाती है।
3. **पितृसत्तामक तथा रूढ़िवादी समाज** – पुरूषप्रधान तथा रूढ़िवादी समाज भी महिलाओं की न्यून राजनीतिक सक्रियता का कारण है। महिलाओं के जीवन के सभी निर्णय आज भी उनके परिवार के पुरूषों द्वारा ही लिये जाते है।
4. **पुरूष वर्चस्व वाली राजनीति** – महिलाओं की न्यून राजनीतिक प्रतिनिधित्व का एक प्रमुख कारण पुरूष वर्चस्व वाली राजनीति भी है, जिसके कारण महिलाओं को राजनीति में प्रतिनिधित्व करने हेतु पुरूषों की अपेक्षा कम अवसर प्राप्त होते है।

उपरोक्त सभी कारणों के अतिरिक्त शैक्षणिक पिछड़ापन, रूचि न होना , राजनीतिक जागरूकता अथवा चेतना की कमी तथा कमजोर सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि भी महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में कमी के प्रमुख कारण है।

संसद तथा विधानमण्डल, जहां शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय होते है। इन निर्णयों में आधी आबादी को शामिल न करना लोकतंत्र के लिए निराशाजनक है। एक स्वस्थ तथा सुदृढ़ लोकतंत्र में सभी वर्गो। तथा समूहों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। वर्तमान समय में महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए उपलब्धियां हासिल कर स्वयं की स्थिति को मजबूत किया है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक कदम और बढ़ाते हुए महिला आरक्षण विधेयक 2008 जिसमें लोकसभा तथा विधानमण्डलों में महिलाओं के लिए एक–तिहाई सीटों का प्रावधान है, उसे संसद में पारित करवाने की आवश्यकता है। इसके लिए सभी राजनैतिक दलों को सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर विश्व के स्वीडन, कनाडा, यू0 के0 तथा फ्रांस जैसे कई देश जहां राजनैतिक दलों में महिला आरक्षण का प्रावधान है। महिलाओं के शैक्षणिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त

अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। शिक्षा के माध्यम से ही महिलाएं अपने राजनैतिक अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक हो सकती है। लैंगिक भेदभाव सहभागी लोकतंत्र के विकास में एक प्रमुख बाधा है, जिसका निराकरण समाज तथा राष्ट्र के सामूहिक प्रयासों द्वारा ही किया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

एक सशक्त लोकतंत्र हेतु सभी की समान प्रतिभागिता आवश्यक है। राजनैतिक सशक्तिकरण के अभाव में महिला का पूर्ण सशक्तिकरण की बात करना व्यर्थ है। राजनीतिक क्षेत्र में पर्याप्त अवसर मिलने पर महिलाएं नई ऊर्जा के साथ सकारात्मक ढंग से कार्य कर सकती है तथा महिलाओं से संबंधित समस्याओं को सुलझाने में अपना पूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उत्तराखण्ड ईयर बुक (2011), बिनसर पब्लिकेशन, पृष्ठ सं0–447.
2. दीवान, आर. एम. (2008). उत्तरांचल की राजनीति में महिलाओं का योगदान. पृष्ठ सं0–447. रिट्रीव्डफ्रॉम https://sodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/223838
3. रानी, अंजू (2012). महिलाओं में राजनीतिक चेतना के विकास के संदर्भ में महिला संगठनों की भूमिका. पृष्ठ सं0–240. रिट्रीव्ड फ्रॉम https://sodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/229269
4. उत्तराखण्ड में महिलाओं की स्थिति और भूमिका. हिमालय प्रिन्टर्स, 2014, पृष्ठ सं0– 165–181.
5. www.jagran.com रिट्रीव्ड ऑन 27–11–2013.
6. punjab.in रिट्रीव्ड ऑन 11–12–2022.
7. www.jagran.com रिट्रीव्ड ऑन 11–03–2013.
8. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/women-representation-in-parliament
9. https://www.epw.in/hi/journal/2019/18/editorials/edit-2.html
10. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/need-to-increase-the-representation-of-women-in-parliament
11. https://www.livehindustan.com/national/story-representation-of-women-decreased-in-assembly-and-local-bodies-increased-share-in-lok-sabha-6730818.html
12. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/status-of-women-in-india
13. https://www.jagran.com/jharkhand/ranchi-10892491.html
14. http://ignited.in/I/a/293305
15. https://www.livehindustan.com/national/story-representation-of-women-decreased-in-assembly-and-local-bodies-increased-share-in-lok-sabha-6730818.amp.html
16. https://www.punjabkesari.in/national/news/less-than-10-women-mlas-in-19-state-assemblies-of-the-country-1731842

17. https://www.amarujala.com/dehradun/women-seat-possibility-in-uttarakhand-assembly
18. https://www.jagran.com/uttarakhand/dehradun-city-uttarakhand-election-result-2022-maximum-eight-women-won-in-uttarakhand-assembly-elections-22535067.html
19. https://jansankhya.itshindi.com/rajya/uttarakhand

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 150-157

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में शारीरिक शिक्षा का महत्त्व

Chandra Shekhar Bharti

Assistant Professor, Department of Education, Institute of Advanced Studies in Education
(Deemed to be University) Sardarshahar, Rajasthan

प्रस्तावना :–

शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक फिटनेस और खेल–कूद तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण व्यक्तित्व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ रखती है, बल्कि मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से भी उसे सशक्त बनाती है। नियमित रूप से शारीरिक गतिविधियों में भाग लेने से व्यक्ति में अनुशासन, आत्मनियंत्रण और आत्मविश्वास विकसित होता है, जो जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक गुण हैं। शारीरिक शिक्षा केवल बाहरी मजबूती तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह मानसिक विकास में भी सहायक होती है। खेल–कूद और व्यायाम व्यक्ति के मस्तिष्क को सक्रिय रखते हैं और एकाग्रता, निर्णय लेने की क्षमता तथा समस्या समाधान कौशल को बढ़ाते हैं। विभिन्न खेलों में रणनीतिक सोच की आवश्यकता होती है, जो व्यक्ति को तर्कसंगत और विश्लेषणात्मक बनने में मदद करती है। इसके अलावा, शारीरिक गतिविधियां तनाव और चिंता को कम करने में सहायक होती हैं, जिससे व्यक्ति मानसिक रूप से अधिक संतुलित और खुशहाल रहता है। शारीरिक शिक्षा से व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का भी विकास होता है। खेलों के माध्यम से व्यक्ति ईमानदारी, निष्पक्षता और अनुशासन का महत्त्व समझता है। खेल भावना व्यक्ति को यह सिखाती है कि हार–जीत जीवन का हिस्सा है, और हार को स्वीकार कर उसे सुधार का अवसर मानना चाहिए। इससे व्यक्ति में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है, जो उसे जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार करता है।

सामाजिक दृष्टि से भी शारीरिक शिक्षा का विशेष महत्त्व है। यह व्यक्ति को टीम वर्क, सहयोग, नेतृत्व और दूसरों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करने में मदद करती है। टीम गेम्स में भाग लेने से व्यक्ति में दूसरों की राय सुनने और सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है। इसके अलावा, खेलों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों से मिलने–जुलने का अवसर मिलता है, जिससे समाज में सद्भाव और एकता की भावना मजबूत होती है।

शारीरिक शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाती है। जब व्यक्ति किसी खेल में मेहनत

करता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है, तो उसमें आत्म–संतोष और आत्म–विश्वास बढ़ता है। यह आत्म–निर्भरता केवल खेलों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देती है। नियमित रूप से व्यायाम और खेलों में भाग लेने वाले व्यक्ति निर्णय लेने में अधिक सक्षम होते हैं और कठिन परिस्थितियों में भी धैर्यपूर्वक सोचने में सक्षम होते हैं।

शारीरिक शिक्षा का प्रभाव व्यावसायिक जीवन में भी देखा जा सकता है। कार्यस्थल पर अनुशासन, समय प्रबंधन, टीम वर्क और लक्ष्य प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करने की प्रवृत्ति वही व्यक्ति विकसित कर सकता है जो शारीरिक शिक्षा से लाभान्वित हुआ हो। खेल–कूद से सीखने वाले नेतृत्व कौशल और आत्म–प्रेरणा कार्यस्थल पर सफलता प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार, शारीरिक शिक्षा केवल शरीर को मजबूत और स्वस्थ बनाने का साधन नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का आधार है। यह व्यक्ति को मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक रूप से मजबूत बनाती है, जिससे वह जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अधिक प्रभावी ढंग से संभाल सकता है। अनुशासन, नेतृत्व, टीम वर्क, आत्मनिर्भरता और नैतिकता जैसे गुणों का विकास शारीरिक शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। इसलिए, इसे शिक्षा प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि समाज में जिम्मेदार, आत्मनिर्भर और नैतिक रूप से सशक्त नागरिकों का निर्माण हो सके।

1. अनुशासन और आत्म–नियंत्रण का विकास :–

शारीरिक शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य अनुशासन विकसित करना है, जो व्यक्ति के चरित्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नियमित रूप से व्यायाम करना, निर्धारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का पालन करना और खेलों के नियमों एवं नैतिक मूल्यों का पालन करना आत्म–नियंत्रण, समर्पण और जिम्मेदारी की भावना को विकसित करता है। ये आदतें न केवल शारीरिक प्रदर्शन को बेहतर बनाती हैं, बल्कि व्यक्ति में धैर्य और प्रतिबद्धता का भी विकास करती हैं। शारीरिक शिक्षा के माध्यम से सीखा गया अनुशासन खेल के मैदान तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई देता है। यह विद्यार्थियों को अपने समय का सही प्रबंधन करने, यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित करने और उन्हें प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करने की प्रेरणा देता है। नियमित अभ्यास और अनुशासित दिनचर्या अपनाने से पढ़ाई में एकाग्रता, संगठन क्षमता और दबाव झेलने की क्षमता में वृद्धि होती है। कार्यक्षेत्र में, अनुशासित व्यक्ति अधिक विश्वसनीय, समयनिष्ठ और जिम्मेदार होते हैं, जिससे वे अपने पेशेवर जीवन में अधिक सफल बनते हैं।

इसके अलावा, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से विकसित अनुशासन आत्म–प्रेरणा की भावना को भी बढ़ाता है। जब व्यक्ति अपने फिटनेस लक्ष्यों को प्राप्त करने या किसी खेल में निपुणता हासिल करने के लिए प्रयास करता है, तो वह धैर्य और निरंतर प्रयास की आदत विकसित करता है। यह गुण उसे व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में आने वाली चुनौतियों को स्वीकार करने, असफलताओं से सीखने और सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने में मदद करता है। अंततः, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से विकसित अनुशासन जीवनभर सफलता की नींव रखता है। यह व्यक्ति को जिम्मेदार, लक्ष्य केंद्रित और मानसिक रूप से मजबूत बनाता है, जिससे वह जीवन के विभिन्न पहलुओं को संतुलित रूप से प्रबंधित कर सकता है और सतत विकास एवं आत्म–विकास की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

2. सामाजिक कौशल और टीम वर्क को बढ़ावा देना :–

खेलों और समूहगत गतिविधियों में भाग लेना सार्थक सामाजिक संपर्क को प्रोत्साहित करता है, जिससे व्यक्ति मजबूत संबंध बना सकते हैं और सामुदायिक भावना विकसित कर सकते हैं। विशेष रूप से टीम आधारित खेल सहयोग, संवाद और परस्पर समर्थन पर जोर देते हैं, क्योंकि खिलाड़ियों को एक साथ मिलकर साझा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करना होता है। यह सामूहिक वातावरण धैर्य, सक्रिय रूप से सुनने की क्षमता और विविध दृष्टिकोणों का सम्मान करने का महत्त्व समझने में सहायता करता है। टीम वर्क के अलावा, ऐसी गतिविधियों में भाग लेने से समस्या समाधान और संघर्ष निपटान की क्षमताओं में भी सुधार होता है। खेलों में असहमति और चुनौतियाँ आम होती हैं, लेकिन उन्हें सकारात्मक रूप से संभालना व्यक्ति को संघर्ष प्रबंधन, समझौता करने और दबावपूर्ण परिस्थितियों में समाधान खोजने की कला सिखाता है। ये कौशल वास्तविक जीवन में, चाहे वह शिक्षण संस्थान हों, कार्यस्थल हों या व्यक्तिगत संबंध, अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

इसके अलावा, समूह खेलों में संलग्न होने से व्यक्ति में जिम्मेदारी और जवाबदेही की भावना विकसित होती है। प्रत्येक टीम सदस्य की एक विशिष्ट भूमिका होती है, और उनकी सहभागिता टीम की सफलता को सीधे प्रभावित करती है। यह अनुभव व्यक्ति को विश्वसनीय, अनुशासित और अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पित बनने के लिए प्रेरित करता है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अत्यंत लाभदायक सिद्ध होते हैं। अंततः, दूसरों के साथ सहयोग करने, विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनने और सामंजस्यपूर्वक कार्य करने की क्षमता एक संतुलित और भावनात्मक रूप से बुद्धिमान व्यक्तित्व को आकार देती है। ये गुण न केवल सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देते हैं, बल्कि व्यक्ति को नेतृत्व भूमिकाओं, पेशेवर सफलता और सार्थक व्यक्तिगत संबंधों के लिए भी तैयार करते हैं।

3. नेतृत्त्व क्षमता का विकास :–

शारीरिक शिक्षा न केवल नेतृत्व क्षमताओं को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम है, बल्कि यह व्यक्ति में आत्म–अनुशासन, समस्या–समाधान कौशल और निर्णय लेने की क्षमता को भी मजबूत करता है। खेलों और शारीरिक गतिविधियों में नेतृत्व की भूमिका निभाने से व्यक्ति में कार्य कुशलता, समायोजन और प्रेरणा देने की योग्यता विकसित होती है, जो उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक प्रभावशाली व्यक्तित्व बनाने में सहायक सिद्ध होती है। जब कोई व्यक्ति टीम का नेतृत्व करता है, तो उसे अपने साथियों की क्षमताओं को समझना, उनकी कमजोरियों को दूर करने में सहायता करना और सामूहिक सफलता के लिए रणनीतियाँ तैयार करना आवश्यक होता है। यह गुण व्यक्ति को एक परिपक्व और दूरदर्शी नेता बनने में मदद करते हैं। इसके अलावा, नेतृत्व कौशल केवल खेलों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि ये शैक्षिक, व्यावसायिक और सामाजिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शारीरिक शिक्षा में सीखे गए संगठनात्मक कौशल, समय प्रबंधन, और अनुशासन कार्यस्थल पर टीम प्रबंधन, परियोजना योजना और लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होते हैं। एक अच्छा खेल कप्तान या आयोजक अपने अनुभवों से नेतृत्व की रणनीतियाँ सीखता है, जो उसे अपने करियर में एक सफल प्रबंधक, मार्गदर्शक या उद्यमी बनने में मदद कर सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, शारीरिक शिक्षा व्यक्ति में आत्मनिर्भरता और आत्म–विश्वास की भावना को विकसित करने में भी सहायक होती है। जब व्यक्ति नेतृत्व की जिम्मेदारी उठाता है, तो वह कठिन परिस्थितियों का सामना

करना, त्वरित निर्णय लेना और अपनी टीम को प्रेरित करना सीखता है। यह मानसिक दृढ़ता और साहस, जीवन की कठिनाइयों से जूझने और सही निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाता है। साथ ही, यह व्यक्ति को सहिष्णुता, निष्पक्षता और निष्कपटता जैसे गुणों को अपनाने के लिए प्रेरित करता है, जो किसी भी सफल नेता के लिए आवश्यक होते हैं। शारीरिक शिक्षा के माध्यम से विकसित नेतृत्व कौशल व्यक्ति को समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाते हैं। जब कोई व्यक्ति खेलों के माध्यम से टीम भावना और सहयोग को आत्मसात करता है, तो वह समाज में एक जागरूक नागरिक के रूप में उभरता है। वह अपने आस–पास के लोगों को प्रेरित करने, सामूहिक प्रयासों में योगदान देने और समाज के कल्याण के लिए कार्य करने में रुचि दिखाता है। अतः यह स्पष्ट है कि शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक फिटनेस को बढ़ावा देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आत्म–विश्वास, उत्तरदायित्व, समस्या–समाधान क्षमता और समायोजन जैसे गुणों को विकसित करने में सहायक होती है, जो व्यक्ति को एक सशक्त, प्रभावशाली और समाज के प्रति उत्तरदायी नागरिक बनाने में मदद करते हैं।

आत्मविश्वास को बढ़ावा देना :–

शारीरिक गतिविधियों में भाग लेना और फिटनेस लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना आत्मविश्वास बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब व्यक्ति अपनी शारीरिक क्षमताओं को परखते हैं, चुनौतियों को पार करते हैं और अपनी प्रगति को देखते हैं, तो उनमें आत्म–विश्वास की गहरी भावना विकसित होती है। चाहे वह प्रतिस्पर्धात्मक खेल में उत्कृष्टता प्राप्त करना हो, कोई नया कौशल सीखना हो या व्यक्तिगत फिटनेस लक्ष्य हासिल करना हो, प्रत्येक उपलब्धि उनके आत्म–विश्वास और संकल्प को मजबूत करती है। लक्ष्य निर्धारित करने, निरंतर प्रयास करने और अंततः उन्हें पूरा करने की क्षमता व्यक्ति में अनुशासन, धैर्य और अपनी क्षमताओं पर अटूट विश्वास को विकसित करती है। इसके अतिरिक्त, शारीरिक गतिविधियाँ व्यक्तियों को अपने आरामदायक क्षेत्र (कम्फर्ट जोन) से बाहर निकलने, नई चुनौतियों का सामना करने और विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप ढलने के लिए प्रेरित करती हैं, जिससे उनके प्रतिकूलताओं से निपटने की क्षमता मजबूत होती है। खेल और फिटनेस प्रशिक्षण में आवश्यक प्रतिबद्धता और दृढ़ता जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लाभकारी साबित होती है, जिससे व्यक्ति शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत बाधाओं का आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ सामना कर पाते हैं। असफलताओं का सामना करने, रणनीति बनाने और अपने प्रदर्शन में सुधार करने की प्रक्रिया समस्या–समाधान की मानसिकता को विकसित करती है, जो जीवन के विभिन्न पहलुओं में सहायक होती है।

इसके अलावा, नियमित व्यायाम न केवल शारीरिक क्षमता को बढ़ाता है, बल्कि यह व्यक्ति की मुद्रा (पोश्चर), शारीरिक भाषा और आत्म–छवि को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। जब व्यक्ति ताकत, सहनशक्ति और लचीलेपन (फ्लेक्सिबिलिटी) का विकास करते हैं, तो वे अपने बारे में अधिक सकारात्मक महसूस करने लगते हैं, जो सीधे उनके सामाजिक और व्यावसायिक व्यवहार में परिलक्षित होता है। टीम खेल और समूह फिटनेस गतिविधियाँ विशेष रूप से सामाजिक चिंताओं को दूर करने, संचार कौशल विकसित करने और एक सामूहिक भावना को बढ़ावा देने के अवसर प्रदान करती हैं, जिससे आत्म–विश्वास और अधिक मजबूत होता है। शारीरिक लाभों से परे, खेल और फिटनेस मानसिक कल्याण को भी बढ़ावा देते हैं। शारीरिक गतिविधि एंडोर्फिन हार्मोन का स्राव करती है, जो तनाव को कम करता है और मनोदशा (मूड) में सुधार करता है, जिससे जीवन

के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है। जब व्यक्ति इस मानसिक सशक्तिकरण (मेंटल अपलिफ्टमेंट) को अनुभव करते हैं, तो वे अधिक प्रेरित, सक्रिय और नए अवसरों को अपनाने के लिए तैयार हो जाते हैं, असफलता के डर को पीछे छोड़कर। अंततः, शारीरिक शिक्षा और फिटनेस के माध्यम से प्राप्त आत्मविश्वास जीवन के सभी पहलुओं में विस्तार पाता है। यह व्यक्ति को पहल करने, विकास की मानसिकता विकसित करने और जीवन की चुनौतियों का आशावाद और दृढ़ संकल्प के साथ सामना करने में सक्षम बनाता है। आत्म–विश्वास, अनुशासन और निरंतरता को बढ़ावा देकर, शारीरिक शिक्षा व्यक्तियों को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और संतुलित समाज के सदस्य बनने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भावनात्मक स्थिरता को मजबूत बनाना :–

नियमित शारीरिक गतिविधि मानसिक कल्याण को बढ़ाने का एक शक्तिशाली साधन है, जो त्वरित और दीर्घकालिक दोनों तरह के लाभ प्रदान करता है। एंडोर्फिन, जिसे मस्तिष्क के प्राकृतिक मूड बूस्टर के रूप में जाना जाता है, के स्राव से आराम और संतोष की अनुभूति होती है, जिससे तनाव, चिंता और अवसाद की भावनाएँ कम होती हैं। इसके अतिरिक्त, व्यायाम डोपामाइन और सेरोटोनिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर के उत्पादन को उत्तेजित करता है, जो मनोदशा और भावनात्मक स्थिरता को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संगठित व्यायाम, योग या यहां तक कि हल्की सैर जैसी शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होने से संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली में सुधार होता है, जिससे एकाग्रता, स्मरण शक्ति और निर्णय लेने की क्षमता बेहतर होती है। यह मानसिक स्पष्टता व्यक्तियों को दैनिक दबावों को बेहतर ढंग से प्रबंधित करने, असफलताओं को धैर्यपूर्वक सहने और विकासोन्मुख मानसिकता विकसित करने में सक्षम बनाती है।

मनोवैज्ञानिक लाभों के अलावा, नियमित शारीरिक गतिविधि बेहतर नींद की गुणवत्ता को भी प्रोत्साहित करती है, जिससे शरीर को पुनः ऊर्जा प्राप्त करने में मदद मिलती है और थकान कम होती है, जो अक्सर तनाव से जुड़ी होती है। कोर्टिसोल, जो शरीर का प्रमुख तनाव हार्मोन है, के स्तर को कम करने से आंतरिक संतुलन और भावनात्मक स्थिरता प्राप्त करने में सहायता मिलती है। एक सक्रिय जीवनशैली बनाए रखने के लिए आवश्यक अनुशासन और निरंतरता, उपलब्धि की भावना को विकसित करती है और आत्मविश्वास को बढ़ाती है, जिससे व्यक्ति की आत्म–छवि अधिक सकारात्मक बनती है। सामूहिक व्यायाम या खेलों में भाग लेने से सामाजिक जुड़ाव भी बढ़ता है, जिससे सहयोग और समर्थन की भावना विकसित होती है। समय के साथ, ये सभी प्रभाव मिलकर एक स्वस्थ, अधिक आशावादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं, जिससे व्यक्ति जीवन की चुनौतियों का मजबूती और आत्मविश्वास के साथ सामना कर सकता है।

स्वस्थ जीवनशैली को बढ़ावा देना :–

शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक और भावनात्मक सेहत से गहराई से जुड़ा हुआ है, जिससे सक्रिय जीवनशैली समग्र कल्याण का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन जाती है। नियमित शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होने से मांसपेशियों और अस्थियों की मजबूती बढ़ती है, हृदय स्वास्थ्य में सुधार होता है और लचीलेपन को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा, व्यायाम तनाव प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे कोर्टिसोल स्तर कम होता है और एंडोर्फिन का स्राव बढ़ता है, जो मनोभाव को बेहतर बनाते हैं और चिंता तथा अवसाद को दूर करने में सहायता करते हैं। शारीरिक शिक्षा लोगों को जीवनभर स्वस्थ रहने की आदतें अपनाने के लिए प्रेरित करती है,

जैसे नियमित व्यायाम, पौष्टिक आहार और पर्याप्त विश्राम। ये आदतें न केवल आदर्श शरीर का वजन बनाए रखने में सहायक होती हैं, बल्कि प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करती हैं और मोटापा, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप और मधुमेह जैसी गंभीर बीमारियों के जोखिम को भी कम करती हैं। इसके अतिरिक्त, सक्रिय जीवनशैली पाचन तंत्र को बेहतर बनाती है, रक्त शर्करा के स्तर को संतुलित करती है और चयापचय क्रियाओं को बढ़ावा देती है, जिससे पूरे दिन ऊर्जा का स्तर बना रहता है।

इन आदतों को प्रारंभिक अवस्था में विकसित करने से लंबे समय तक लाभ मिलता है, जिसमें बेहतर मुद्रा, मजबूत प्रतिरक्षा तंत्र और उच्च गुणवत्ता वाली नींद शामिल है। उचित विश्राम और पुनरावृत्ति से शरीर स्वयं को पुनः ऊर्जावान बनाता है, थकान को कम करता है और सतर्कता बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होने से आत्म–अनुशासन, समय प्रबंधन और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है, जो एक अधिक उत्पादक और संतोषजनक जीवन में योगदान करती है। यदि शारीरिक शिक्षा को दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बनाया जाए, तो व्यक्ति दीर्घकालिक स्वास्थ्य और लंबी उम्र प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही एक सक्रिय और ऊर्जावान जीवनशैली का आनंद ले सकते हैं।

संज्ञानात्मक क्षमता और मानसिक तीक्ष्णता को बढ़ाना :–

विस्तृत शोध से यह प्रमाणित हुआ है कि शारीरिक गतिविधि और संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली के बीच गहरा संबंध होता है। व्यायाम, खेल और अन्य गतिशील गतिविधियों में नियमित रूप से भाग लेने से मस्तिष्क का कार्य बेहतर होता है, क्योंकि यह रक्त संचार को बढ़ाता है और मस्तिष्क को आवश्यक ऑक्सीजन और पोषक तत्व प्रदान करता है। यह सुधार न्यूरॉन्स की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, तंत्रिका तंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाता है और स्मरण शक्ति, एकाग्रता तथा सीखने की क्षमताओं को तेज करता है। शारीरिक गतिविधियां डोपामाइन, सेरोटोनिन और नॉरएपिनेफ्रिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर के स्राव को उत्तेजित करती हैं, जो मानसिक स्पष्टता, भावनात्मक संतुलन और संज्ञानात्मक लचीलापन बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। ये रसायन मानसिक थकान को कम करने, निर्णय लेने की क्षमता को सुधारने और रचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करने में सहायक होते हैं। एरोबिक व्यायाम, योग, नृत्य और टीम स्पोर्ट्स जैसी गतिविधियां समस्या–समाधान की क्षमता को बढ़ाती हैं और व्यक्तियों को बदलते हुए हालात के अनुरूप ढलने तथा प्रभावी प्रतिक्रिया देने के लिए प्रेरित करती हैं।

इसके अतिरिक्त, शारीरिक शिक्षा समय प्रबंधन और आत्म–अनुशासन में सुधार करती है, जो शैक्षणिक और व्यावसायिक सफलता के लिए आवश्यक कौशल हैं। शोध से पता चला है कि जो छात्र नियमित रूप से शारीरिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, वे बेहतर ध्यान केंद्रित कर पाते हैं और कम तनाव महसूस करते हैं, जिससे उनकी शैक्षणिक उपलब्धि बेहतर होती है। इसी तरह, जो पेशेवर फिटनेस को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाते हैं, वे अधिक उत्पादक, नवाचारशील और उच्च दबाव वाले कार्य वातावरण में अधिक दृढ़ रहते हैं। विभिन्न जीवन परिस्थितियों में मानसिक रूप से तेज और अनुकूल रहने की क्षमता एक बहुमूल्य कौशल है, जिसे नियमित शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से विकसित किया जा सकता है।

लचीलापन और दृढ़ता विकसित करना :–

शारीरिक गतिविधियां, विशेष रूप से खेल और फिटनेस प्रशिक्षण, व्यक्तियों को शारीरिक और मानसिक रूप से चुनौती देते हैं, जिससे उन्हें असफलताओं का सामना करना, कठिनाइयों को सहना और अपनी सीमाओं

से आगे बढ़ना सिखाया जाता है। खेलों में पराजय, चोटों और कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना व्यक्तियों के भीतर लचीलापन विकसित करता है– जो कठिनाइयों से उबरने और निरंतर आत्म–विकास की भावना बनाए रखने की क्षमता को मजबूत करता है। नियमित रूप से शारीरिक चुनौतियों का सामना करने से व्यक्ति यह मानसिकता विकसित करते हैं कि बाधाएं विकास के अवसर हैं। चाहे यह थकावट से पार पाना हो, किसी खेल में कठिन तकनीक को सुधारना हो, या किसी चोट से उबरना हो–ये अनुभव दृढ़ता और मानसिक शक्ति को बढ़ाते हैं। ध्यान बनाए रखने, प्रतिबद्ध रहने और लगातार सुधार के लिए प्रयास करने की क्षमता अन्य जीवन क्षेत्रों में भी सकारात्मक प्रभाव डालती है, जैसे कि शिक्षा, करियर और व्यक्तिगत विकास।

इसके अलावा, खेलों में भाग लेने से टीम वर्क, अनुशासन और नेतृत्व कौशल का विकास होता है। खिलाड़ी दबाव को संभालना, रचनात्मक आलोचना को स्वीकार करना और सामूहिक लक्ष्यों की दिशा में काम करना सीखते हैं। यह वातावरण धैर्य और भावनात्मक संतुलन को बढ़ावा देता है, जिससे व्यक्ति उच्च तनाव वाली परिस्थितियों में भी शांत और केंद्रित रह सकते हैं। खेल और फिटनेस प्रशिक्षण के माध्यम से सीखे गए पाठ एक सकारात्मक मानसिकता को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे यह विश्वास मजबूत होता है कि असफलताएं सफलता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम हैं। लचीलापन और दृढ़ता को आत्मसात करके, शारीरिक शिक्षा व्यक्तियों को आत्मविश्वास के साथ जीवन की अनिश्चितताओं का सामना करने, कठिनाइयों को पार करने और अपने लक्ष्यों को अटूट संकल्प के साथ प्राप्त करने के लिए तैयार करती है। प्रेरित रहने, बदलाव को अपनाने और निरंतर लक्ष्य की ओर बढ़ने की क्षमता एक दीर्घकालिक सफलता और व्यक्तिगत संतुष्टि का मजबूत आधार बनाती है।

निष्कर्ष :–

शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक फिटनेस बनाए रखने तक सीमित नहीं हैय यह व्यक्ति के व्यक्तित्व और समग्र चरित्र को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नियमित शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होने से अनुशासन, दृढ़ संकल्प, टीम वर्क, नेतृत्व और आत्मविश्वास जैसी आवश्यक जीवन कौशल विकसित होती हैं। संरचित खेल, फिटनेस दिनचर्या और समूह अभ्यासों के माध्यम से व्यक्ति प्रतिबद्धता, समय प्रबंधन और लक्ष्य निर्धारण के महत्त्व को सीखते हैं, जो व्यक्तिगत और पेशेवर सफलता दोनों के लिए आवश्यक हैं। इसके अलावा, शारीरिक शिक्षा भावनात्मक मजबूती को बढ़ावा देती है, जिससे व्यक्ति तनाव प्रबंधन, दबाव को संभालने और असफलताओं से सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ उबरने की कला सीखते हैं। खेल और फिटनेस गतिविधियों में भाग लेना आत्म–अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है, आत्म–सम्मान को बढ़ाता है और व्यक्ति को उपलब्धि की भावना विकसित करने में मदद करता है। प्रशिक्षण सत्रों या प्रतियोगिताओं के दौरान आने वाली चुनौतियाँ धैर्य, अनुकूलन क्षमता और समस्या–समाधान क्षमताओं को विकसित करने में सहायता करती हैं, जो व्यक्तिगत विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

इसके अतिरिक्त, टीम वर्क और सहयोग शारीरिक शिक्षा के मूल तत्व हैं। टीम खेलों में एक सामान्य लक्ष्य की ओर मिलकर काम करना संचार कौशल, आपसी सम्मान और सहयोग को मजबूत करता है। ये अनुभव वास्तविक जीवन में भी सहायक होते हैं, जिससे व्यक्ति मजबूत पारस्परिक संबंध बना सकते हैं और पेशेवर एवं सामाजिक परिस्थितियों में कुशलता से कार्य कर सकते हैं। नेतृत्व कौशल भी विकसित होते हैं क्योंकि व्यक्ति

जिम्मेदारियाँ लेते हैं, रणनीतिक निर्णय लेते हैं और दूसरों को प्रेरित करते हैं, जिससे वे विभिन्न क्षेत्रों में मार्गदर्शन और प्रेरणा देने में सक्षम होते हैं। शारीरिक शिक्षा को दैनिक जीवन में शामिल करने से व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में भी महत्त्वपूर्ण सुधार होता है। नियमित शारीरिक गतिविधि मूड को संतुलित करने, संज्ञानात्मक कार्यों को बढ़ाने और समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में सहायक होती है, जिससे अधिक संतुलित और संतोषजनक जीवनशैली विकसित होती है। शारीरिक शिक्षा से प्राप्त पाठ केवल खेल के मैदान तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे व्यक्ति को आत्मविश्वास, अनुशासन और समग्र रूप से संतुलित व्यक्तित्व विकसित करने में मदद करते हैं, जिससे वे जीवन की चुनौतियों का साहस और दृढ़ संकल्प के साथ सामना कर सकें।

सन्दर्भ :-

1. सिंह, रमेश, शारीरिक शिक्षा और व्यक्तित्व विकास, शिक्षा दर्पण, 2018, 45–47
2. शर्मा, अनिल कुमार, विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा का प्रभाव, भारतीय शिक्षा समीक्षा, 2019, 112–115
3. गुप्ता, सुमन, शारीरिक शिक्षा : एक समग्र दृष्टिकोण, शिक्षा विमर्श, 2020, 78–81
4. वर्मा, प्रीति, शारीरिक शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा संवाद, 2017, 33–36
5. चौधरी, मोहनलाल, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से नेतृत्व कौशल का विकास, शिक्षा ज्योति, 2021, 90–93
6. मिश्रा, आर. के, शारीरिक शिक्षा और सामाजिक समरसता, शिक्षा भारती, 2016, 55–58
7. कुमार, दीपक, शारीरिक शिक्षा : छात्रों के लिए आवश्यकता, शिक्षा प्रबोधिनी, 2018, 102–105
8. पांडे, सुनील, शारीरिक शिक्षा और नैतिक मूल्यों का संवर्धन, शिक्षा निकेतन, 2019, 67–70
9. सक्सेना, राधिका, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से आत्मविश्वास का विकास, शिक्षा सुधा, 2020, 48–51
10. जोशी, मनीष, शारीरिक शिक्षा और अनुशासन, शिक्षा दीपिका, 2017, 29–32
11. अग्रवाल, नीतू, शारीरिक शिक्षा : एक आवश्यक घटक, शिक्षा सारथी, 2021, 85–88
12. दास, सुरेश, शारीरिक शिक्षा और व्यक्तित्व का समग्र विकास, शिक्षा प्रभा, 2016, 40–43
13. कौशिक, अंजलि, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से तनाव प्रबंधन, शिक्षा रश्मि, 2018, 95–98
14. सिंह, विकास, शारीरिक शिक्षा और नेतृत्व विकास, शिक्षा किरण, 2019, 60–63
15. शुक्ला, कविता, शारीरिक शिक्षा : छात्रों के लिए लाभ, शिक्षा मंजरी, 2020, 72–75

Email ID: csbharti1978@gmail.com

Contact No. 8619849085

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 158-161

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं शताब्दी के साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में दलित विमर्श

डॉ. प्रियंका कुमारी

कार्यरत, S.A.K.N.D. College, Madhepura

शोध-सारांश:-

इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक परिप्रेक्षय में दलित साहित्यकारों ने सदियों से दमन चक्र के शिकार दलित वर्ग को उजागार किया है, साथ-ही-साथ दलितों के साथ हुए स्वाभिमान एवं आत्म-विश्वास को भी झंझोड़ कर जगाया है। आज 21 वीं सदी में, वर्तमानयुग में दलित साहित्य का भविष्य उज्जवल नजर आता है, उत्तरोतर परिवर्तन की लहर का निमार्ण हो रहा है। एक बड़े वर्ग की उपेक्षित एवं विरस्कृत वर्ग अपने वक्त से लड़तें हुए आने वाले कल की बेहतर जिन्दगी के लिए पूर्ण रूप से आशावादी है और प्रयासरत भी।

आज साहित्यकारों द्वारा दलित समाज के साहित्य पर आज दलित विमर्श विषय का प्रवेश समग्रता और व्यग्रता से हो रहा है। दलित शब्द का अर्थ है दबाया हुआ, गिराया हुआ, अपमानित किया हुआ, दलित पिड़ित तथा सताया हुआ। संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भषाओं अंग्रेजी सहित विभिन्न शब्दोंकोशों में दलित शब्द की उपस्थिति दर्ज है जिसका अर्थ, टूटा हुआ, पिसा हुआ, तथा कटा हुआ, स्पष्ट किया गया है। अंग्रेजी में दलित के लिए ' डिप्रेस्ड ' शब्द का प्रयोग हुआ है तो मराठी में विनिष्ट बताया गया है। शाब्दिक आप में दलित वह है जिसका दलन किया गया है। या फिर जिसे दबाया या कुचला गया है।

21 वीं सदी दलित साहित्य की होने वाली है। आज अम्बेडकर की विचार धारा को अपना मूल स्त्रोत मानती है जिसका मूल में मनुष्य था, जिसके दायरे में सम्पूर्ण मानवता समाहित हो जाती है। आज उसे दलित साहित्य के दायरे का विस्तार हो रहा है।

बीज शब्द :- दलित, विमर्श, दलन, दमन, उत्पीड़ित, शोषित, दबाया हुआ, उपेक्षित, कुचला हुआ, रौंदा हुआ, मसला हुआ, उपेक्षित, घृणित, प्रताड़ित, विनिष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित, सताया हुआ, छुआ-छूत, असृरचता, बलात्कार, आडम्बर, संक्रमण, संकल्पना आदि।

प्रस्तावना :-

इक्कीसवीं सदी सभ्यता के विकास संग विज्ञान और तकनीकी के विकास के चरामेत्कर्स को प्रदर्शित करती है,वहीं मानवीय जीवन में संवेदनाओं, अनुभूतियों और वैभवित्तक नीतियों का पतन भी समाज में साफ-साफ दिखाई देता है, 21 वीं सदी का साहित्य इन विसमताओं को उजागर करने में भरसक प्रत्यनशील नजर आता है ताकि विषमता की भयावह और गहरी खाड़ी को पार कर एक कठिन समस्या का समाधान खोजा जा सके। 21 वीं सदी आज बहिष्कृत जिन्दगी जीने वाले समाज के लोगों की बेबसी, मजबूरी और गुलामी की संघर्ष के स्वर रूप में उजागार कर उन्हे मुक्त कर सके।

अधुनिकता शब्द सानेक्ष भावों की अभिव्यक्ति को दर्शाता है। प्राचीन सिद्वातों की सापेक्ष में वर्तमान नये मूल्य निश्चय ही अधुनिक है, जबकि भविष्य की पीढ़ी वर्तमान मूल्यों को प्राचीन मूल्य की संज्ञा प्रदान कर उनकी अवहेलना का भरसक प्रयास कर सकती है। आधुनिक जीवन की प्रगतिशील अवधारणा है तथा रूढ़ि परम्परा की प्रगति भी है। आधुनिकता को सिर्फ और सिर्फ नवीनता न समझकर देशकाल की जीवन्ताहा के संग विवेक विकास भी समझना आवश्यक है। हमारी आधुनिकता सदैव ही सर्वव्यापकता एवं स्थयीत्व का बोध कराती रही है जिसमें वक्त के साथ-साथ नवीन दृष्टीकोण विचार धाराओं के साथ विभिन्न विमर्शों की पहचान होती रही है।

साहित्य के वर्णित प्रसंग में विमर्श संकल्पना आधुनिक काल की देन है। आज दलित-वि-

प्रदान कर उनकी अवहेलना का भरसक प्रयास कर सकती है। आधुनिक जीवन की प्रगतिशील अवधारणा है तथा रूढ़ि परम्परा की प्रगति भी है। आधुनिकता को सिर्फ और सिर्फ नवीनता न समझकर देशकाल की जीवन्ताहा के संग विवेक विकास भी समझना आवश्यक है। हमारी आधुनिकता सदैव ही सर्वव्यापकता एवं स्थयीत्व का बोध कराती रही है जिसमें वक्त के साथ-साथ नवीन दृष्टीकोण विचार धाराओं के साथ विभिन्न विमर्शों की पहचान होती रही है।

साहित्य के वर्णित प्रसंग में विमर्श संकल्पना आधुनिक काल की देन है। आज दलित-विमर्श,सत्ता-वमर्श आदी किसी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि संकल्पनाएँ काफी रूद प्रतित होती है। विमर्श शब्द मूलतः गहन सोच-विचार, विचार-विनिमय तथा चिंतन-मनन को प्रकाशित करता है अर्थात 'विमर्श' से प्रत्यक्ष अभिप्रायः सोच-विचार विनिमय तथा विवेचना से है। डॉ भोलानाथ तिवारी के शब्दों में विमर्श का तात्पर्य है- तबादला -ए-ख्याल, 'परामर्श' मशविरा, राय-बात, विचार-विनिमय सोच- विचार"

मुकुन्दी लाल श्रीवास्त्व के अनुसार, " विमर्श का अर्थ है-विचार, विवेचना, परीक्षण, समीक्षा, तर्क ज्ञान गोविन्द चाटके के शब्दों में, " विमर्श का अर्थ विचार, विवेचना, परीक्षण, समीक्षा, तर्क ज्ञान है।" आधुनिक हिन्दी कोश के अनुसार विमर्श का अभिप्रायः है- " सोच-विचार कर तथ्य या वास्तिवकता का पता लगाना किसी विष्य पर कुछ सोचना-समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांस करना, विचार-विनिमय, सोच, विचार, परीक्षण, तर्कना, जाँचना और परखना किसी से परामर्श या सलाह लेना, ज्ञान, नाटक की पाँच सन्धियों में से एक है।" 3

दलित शब्द को जब साहित्य से मिला दिया जाता है तो वह जिस साहित्यिक प्रद्धति की ओर इंगित करता है वह विधान मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं से साक्षात्कार करवाता दृष्टिगोचर होता है। 'दलित' शब्द साहित्य के साथ जुड़कर पीड़ा के साहित्य के रूप में हमारे समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता प्रतीत होता है उस स्थिति में साहित्य सिर्फ पीड़ा के साथ मुक्ति की कामना करने वाला साहित्य उभर कर सामने आता है। दलित विमर्श ' दो शब्दों से मिलकर बनाउ है जिसमें दलित का अर्थ है- टूटा हुआ, विखरा हुआ, अछूत एवं बहिष्कृत निचले तक के लोग जिन्हें हरिजन भी कहा जाता है। विमर्श अर्थात बहस, वाद-विवाद, सोच-विचार, विचार-विमर्श, सलाह-मंत्रणा इत्यादी। अतः दलित-विमर्श से तात्पर्य दलित के बारे में सोच-विचार, समाज में उसकी स्थिति क्या है, कैसी है उसके विषय में सलाह-मशविरा करना ही दलित-विमर्श माना गया है।" 4

शरणकुमार लिंबाले दलित साहित्य के विष्य में कहते हैं," हजारों वर्गों से दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। दलित इस व्यवस्था के विरूद वगावत न करें, इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है ऐसा सिद्धांत प्रति पादित किया गया है। दलितों की हजरों पीढ़ियाँ यह अन्याय सहन करते हुए जी रहीउ है। अपनी जिन्दगी के जीने के संघर्ष में दलितों ने अपने यथार्थ को भोगा है उसका प्रतिविम्ब ही दलित साहित्य की अभिव्यकित का जीता जागता प्रमाण है उसके अनेक वर्गों की नाटकीय जीवन की अभिव्यक्ति है। 5

दलित शब्द का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हए साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है " जिस -का दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है। उत्पीड़ित, शोसित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदए हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट मर्दित, पस्त हिम्मत हतोत्साहित, वंचित इत्यादी। प्रकाश जी की भाँति ही अवन्तिका प्रसाद भरमट ने दलित की इस प्रकार व्याख्या क्या है जिसकी दलन हुआ है। अथवा जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो, जिसे ध्वस्त या नष्ट किया गया हो।" 7

उपरोक्त विचारकों की दलित सम्बंधि परि भषाओं का आकलन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि दलित वास्तव में उन लोगों को स्वीकारा जा सकता है जिनका शोषण हुआ हो और जिनकी जिन्दगी का लेवल अत्यन्त निम्नस्तर का होता है।

वर्तमान में दलित विमर्श को साहित्य के केन्द्र में रखकर इसे मह-

त्व प्रदान किया जा रहा है। सदियों से उपेक्षित, शोषित, प्रताड़ना, द्वेष और भेदभाव का शिकार दलित समाज अब अपने अधिकारों की खातिर सचेता दृष्टिगोचर होता नजर आ रहा है क्योंकि उसने अकल्पनीय पीड़ा के दर्द की भोगा है उस अन्याय के प्रति उसका हृद्रय विरोधत्मक आक्रोशों की ज्वाला से धधक रहा है। वह अब उस पीड़ा से मुक्ति की सशक्त आभिलाशा की सार्थकता को पूर्ण करने की चाह रखता है। उसके मन में अपने हक के प्रति चेतना भी है जागरूकता भी, जो दलित चेतना के नाम से साक्ष्यि हो गई है।

राजाराम जी अपने एक आलेख में दलित चेतना के यथार्थ को स्पष्ट करते हैं, दलित चेतना का उद्देश्य वर्गवादी व्यवस्था एवं जाति-प्रथा को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना करता है। एक ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति की पहचान उसके गुण एवं योग्यता के आधार पर हो न कि जाति के आधार पर" 8

जगदीश चन्द्र ने अपने उपन्यास धरती धन न अपनों में दलितों की आर्थिक रूप से कमजोरी के एवज में गाँव का चौधरी उनके साथ किस प्रकार से निन्दनीय अमानवीय व्यवहार करता है, सीधा करना ही पड़ेगा" 9 आगे बेलदार और चौधरी हरनाम सिंह छज्जू शाह की दुकान पर लेन-देन की बात में मंगू के थोड़ा सा बोटों पर भी चौधरी हरनाम सिंह गर्जकर क्रोधित होकर कहता है। " कुत्ते की औलाद चुप बैठ कुत्ता चमार अपने आपको बड़ा पंच समझता है। " 10

डॉ राशि चतुर्वेदी ने दलित साहित्य विमर्श के विविध आयाम में दलित चेतना तथा संघर्ष को चित्रित किया है-" हजारों वर्षो की प्रताड़ना, शोषण-द्वेष, वैमनस्य और भेद भाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खाने के लिए जागरूक दिखाई पड़ता है। ऐतिहासिक परिदृष्य में उसे अपनी पहचान कहीं दिखाई नहीं पड़ती। अतीत उसके लिए नर्क से भी भयावह। " 11 पुरूष मानसिकता एवं शक्ति के समक्ष छटपटाती निरोह नारी और उसकी चेतना को उ-जागर किया गया है, " औरत कहाँ नही रोती..... हाड - माँस से बनी ये औरतें अपनी तरीके से जिन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें, हजारों सालों से इनके आँसू बहते आ रहे हैं। " 12

ओमप्रकाश बाल्मीकि ने 'सलाम' कहानी के माध्यम से समाजिक विडम्बना के संग संस्कृति के विरूद्व भी विरोध से भरा आक्रोश व्यक्त किया है। सलाम रस्म आखरी सलाम किया है क्योंकि ऐसी रस्म दलितों में हीनता उत्पन्न करती है और सवर्णो के वर्चस्व को जिन्दा रखती हैं। अतः अपने ससुर जुम्मन के समझने पर हरीश हठ कर बतलाता है कि " आप चाहे जो समझे में इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बंद होना ही चाहिए। " 13 'घुसपैठिये' कहानी में भी उन्होंने शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त जातिवाद के विष्य को उजागार करते हुए लिखा है, " दलित छात्रों को अलग खड़ा करके पूछकर थप्पड़ या घूसों का प्रहार होता है। जरा भी विराध किया तो लात पड़ती है। यह दो चार दिन नही सालों के साल चलता है। " 14

मोहनदास नौमिशराय की अपना गाँव 'कहानी' दलितों पर किये गये अत्याचारों का चित्रण करती है जो अत्यचारों की दर्दनाक अभिव्यक्ति है," सालों चमारों, अब तुम्हें जाबाना लड़ाना भी आ गया। एक-एक की ..... में डंडा न चढ़ाया तो मेरा नाम एस. पी त्यागी नही। " 15 21 वीं सदी के दलित साहित्यकारों ने नारी शोषण को प्रति विम्बित किया है

कौसल्या बैत्री ने ' दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्री की उपेक्षा अत्याचार, अवहेलना और उत्पीड़न की पराकाष्ठा को उसके शोषण को क्योंकि प्रवेश लेते वक्त कर्म पर लिखना पड़ता था। मैने अपनी जाति उनकी लड़कियों से छिपा तो ली थी, परन्तु मैं उनके साथ डर-डर के ही रह रही थी। मैं उनके साथ बैठना टालना चाहती थी। " 17

दिनेश कुमार ने दलित स्त्री के शोषण की एक कड़वी सच्चाई को बड़े ही मार्मिक शब्दों में उजागार किया है, पुलिस, राजनेता, माफिया, जमींदार आदी शक्ति शाली टबके का इस्तेमाल करते हैं वह उस स्त्री के मजबूर बेबस शरीर को रोंदना उससे खेलकर दिल बहलाना " 18

दलित वर्ग के जीवन की घटनाओं और अनुभवों को समाज की निचली-उपरी परतों में व्यात्प सामाजिक हिंसा को प्रतिविम्बित किया गया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इक्कसीवीं सदी के स्त्री पुरूष साहित्यकरों ने दलित समाज की स्थिति का यथार्थ रूप में चित्रण एवं वर्णन करने उका सशक्त एवं सार्थक अभिव्यक्ति के साथ व्यंजित किया है। यह हकीकत भी उजागर करने का भरसक प्रयत्न किया गया है कि दलितों को किस प्रकार से जाति के आधार पर उनके साथ भेद भाव किया जाता रहा है। उनके स्पर्श को भी अभिशाप माना जाता रहा है। उनकी अन्याय एवं दमन के विरूद उठायी जाने वाली आवा-जों को कुचल दिया जाता । लेकिन इक्कीसवीं सदी की जागृती ने उनकी शोषित वर्ग की अस्तित्व बचाने की अधिकारों की आवाज को बुलन्द किया उन्हे स्वयं को जाति बन्धनों की जंजीरों को तोड़कर स्वयं को अधिका-मय जिन्दगी को सख्त दायरों से बाहर निकलने के साहस को मुक्कमल करने को सामर्थ्य बनाने को शक्ति प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

दलित नारी का परिवार में समाज में कार्य-स्थल पर धर्म की आड़ में, कानून की लचर प्रक्रिया के दुष्प्रभाव में, अविश्वास और रूढ़िवादिता के कारण, गरीबी के अभिशाप के कारण, बदकि-स्मती एवं जाति जन्म और अशिक्षा की अज्ञानता के परिवेश में निरन्तर होते शोषण के अनेक विध आयामों उजागार वर्तमान की शासकीय-प्रकासकीय शक्तियों की आँखों को खोलने का उद्देश्यपूर्ण काम कर दलित वर्ग इक्कीसवीं सदी के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में दलित विमर्ष के साहित्य को अन्य धर्म के पीड़ित एवं वंचित वर्ग को भी हिम्मत प्रदान करने का साहसिक एवं प्रशंसनीय कत्वर्य निष्ठापूर्वक निभाया है।

सन्दर्भ सूची :-

01. भोलानाथ तिवारी- हिन्दी पर्यायवाची कोश, किताब महल, इलाहाबाद- 1962 पृ0 572
02. मुकन्दीलाल श्रीवास्तव-ज्ञान शब्द कोश- बनारस ज्ञान- मण्डल लिमेटेड बनारस (उ0 प्र0) 2013 वृ0 741
03. गोविन्द चाटक- आधुनिक शब्द कोश-टक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-1993 पृ91
04. कल्पना रानी- गीतांजली श्री कि उपन्यासों में नारी-विमर्श, शब्द सरोकार शब्द अंक 30 अप्रैल-जून 2013 पृ0 72
05. शरण कुमार लिंथाले- दलित साहित्य का सौन्दर्य करण वर्णाव काव्यन दिल्ली- 2005- पृ0 43
06. ओमप्रकाश वाल्मीकि- दलित साहित्य का सौन्दर्य - शास्त्र राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली- सनू 2001 पृ0 22
07. डॉ नरेश कुमार - 21 वीं शदी का वैश्विक हिन्दी साहित्य विद्या प्रकाशन- 'सो' 449 गुजैनी कानपुर, उ0 प्र0-2012 पृ0 29
08. राजाराम- आलेख, शब्दकरोकार त्रैतासिक अंक-43 अप्रैल- जून 2011 पृ0 12
09. जगदीश चन्द्र- धरती धन न अपना, आधार प्रकारशन पंचकूल्य (हरिभाषा)- 2013 पृ0 22
10. वही.....
11. डॉ रशिम चतुर्वेदी- हिन्दी दलित साहित्य विमर्श के विविध आयाम सरस्वती प्रकाशन कानपुर (उ0 प्र0) 2013 पृ0 201
12. प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 1993- पृ0 260
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली- 2020 पृ0 17
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि धुसपैठिये, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2016 पृ0 15-16
15. मोहन दास नैमिशराय- 21 वीं सदी का वैश्विक हिन्दी साहित्य विद्या प्रकाशन- कानपुर ;उ0प्र0द्ध- 2012 पृ0 288
16. .....वहीं.....पृ0 289
17. कौसल्या देवी नेत्री- दोहरा अभिशाप- शब्द-सरोकार- अंक-19 अप्रैल जून-2008 पृ0 42
18. दिनेश कुमार- दलित महिलाओं की आत्मकथाओं में स्त्री शोषण के अनेक विध आयाम, शब्द, सरोकार अंक-19 अप्रैल -जन 2008 पृ0 23

M. 9029999589, Email : singhpriyanka786@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 162-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भीष्म साहनी के नाटक में उनकी सृजन शक्ति

डॉ. रवि देव

जी 01 प्रथम तल, प्रीत विहार, दिल्ली–११००६२

भीष्म साहनी सर्वप्रथम कथाकार, उपन्यासकार और बाद में नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इन्होंने कुल छः नाटक लिखे हैं – हानूश (1977), कबिरा खड़ा बजार में (1981), माधवी (1984), मुआवजे (1992), रंग दे बसंती चोला (1998), आलमगीर (1999)।

भीष्म साहनी ने अपने नाटकों में अपनी व्यापक और बहुआयामी दृष्टि रखी था। उनके नाटकों में उनकी सृजन दृष्टि मध्यवर्गीय परिवार की विडंबना, मानवीय सम्बन्ध का बिखराव और अंतर्द्वंद्व, साम्प्रदायिक वैमनष्यता, धार्मिक संकीर्णता, राजनीतिक भ्रष्टाचार, मूल्यहीन संस्कृति, राष्ट्रीय स्वर की अनुगूंज, औपनिवेशिक शासन और पीढ़ियों का अंतर्द्वंद्व आदि मुद्दों, समस्याओं से युक्त दिखाई देती था। यहाँ भीष्म साहनी के नाटकों में इन्हीं सृजन दृष्टियों का विश्लेषण किया जा रहा था।

'हानूश' में निहित सृजन शक्ति :–

'हानूश' भीष्म साहनी का पहला नाटक था। यह नाटक कलाकार की रचनात्मकता को केंद्र में रखकर लिखा गया था। इस नाटक में भीष्म साहनी ने मध्यवर्गीय परिवार के व्यक्ति की त्रासदी का वर्णन था।

'हानूश' नाटक का पात्र हानूश ताला बनाने वाला साधारण मध्यवर्गीय परिवार का मानव था। उसकी बचपन से इच्छा होती था कि वह एक ऐसी घड़ी बनाएगा, जो बिना रुके सदैव चल सकेगी। जिस कारण वह बदहाली की हालत में होते हुए भी जीतोड़ मेहनत करने के लिए सदैव तैयार रहता था। 'हानूश' नाटक में हम एक कलाकार के जुनून और लगन को देख सकते था। हानूश अपने जीवन की विषम परिदशायों से संघर्ष करता हुआ अपनी जवानी के सत्रह–अठ्ठारह वर्ष चेकोस्लोवाकिया की पहली मीनार घड़ी बनाने में लगा दिया। इस प्रकार अंत में जब वह कलाकार अपने सृजन में सफल हुआ और घड़ी नगरपालिका के मीनार पर लगाईं गई तो बादशाह सलामत आकर देश का गौरव बढ़ाने वाले गरीब कलाकार हानूश को सम्मानित और पुरस्कृत किया तो दूसरी ओर उसकी दोनों आँखों निकलने का भी आदेश दे दिया। जिससे हानूश और घड़ियाँ न बना सके। इस प्रकार इस नाटक में भीष्म साहनी ने राजनीतिक भ्रष्टाचार और क्रूरता की भी पोल खोली था।

भीष्म साहनी ने खुद लिखा था कि जब वह चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग गए तो उनके मित्र निर्मल वर्मा ने उन्हें हानूश की वह मीनार घड़ी दिखाई। जिसके बारे में वहां तरह–तरह की कहानियां प्रचलित थी। हानूश ऐसे ही यथार्थ और कल्पना के संयोग की उपज था। नाटक की कथा आज भी उतना ही प्रासंगिक था जितना कि मध्यकाल में थी।

'हानूश' नाटक में "लेखक का उद्देश्य घड़ी की विलक्षणता, उसके आविष्कार की लम्बी कहानी बताना भी नहीं था, जैसा कि स्थूल दृष्टि से देखने पर लगेगा। इसके विपरीत नाटक सूक्ष्म–स्तर पर मानवीय दशा, मानवीय नियति को प्रस्तुत करता था। ताला बनाने वाले सामान्य मध्यवर्गीय परिवार के मिस्त्री, 'हानूश' के द्वारा एक कलाकार की सृजनेच्छा शक्ति और संकल्प की तीव्रता को पूरी संवेदनशीलता से तीन अंकों में प्रस्तुत किया गया था।"[1]

भीष्म साहनी ने मध्यवर्गीय परिवारों में आर्थिक स्थिति से बिगड़ते–बिखरते संबंधों पर भी अपनी दृष्टि रखी था। नाटक के प्रथम अंक में हानूश, हानूश की पत्नी कात्या और बड़े भाई पादरी के आपसी संवादों से शुरू होता था। आर्थिक संकट से ग्रस्त होने के कारण हानूश के परिवार में काफी तनाव पूर्ण माहौल होता था। आर्थिक तंगी की वजह से कात्या, हानूश पर झल्लाकर कहती था– "जो आदमी अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता, उसकी इज्जत कौन औरत करेगी?"[2] हानूश का यह कहना सही था कि गरीबी और आर्थिक तंगी स्थायी नहीं होती लेकिन यह क्रूर सत्य था जिसे अनदेखा करके भी जीवन जिया नहीं जा सकता।

नाटक के दूसरे अंक में भीष्म साहनी ने कलाकार की सृजन–शक्ति और कला–चेतना को उजागर किया गया था और साथ–ही–साथ सत्ता द्वारा अपनी सत्ता–शक्ति को कायम बनाए रखने के लिए एक कलाकार की किस हद तक अवहेलना कर सकता था उसको भी चित्रित किया गया था। नगरपालिका हानूश को घड़ी बनाने के लिए वजीफा देती था, जिस कारण वह उसपर अपना हक चाहती था। गिरजेवाले धर्म के नाम पर घड़ी पर अपना हक चाहते हैं। इस प्रकार नाटककार ने व्यावसायिक सत्ता और धार्मिक सत्ता द्वारा परस्पर होने वाले आम मध्यवर्गीय आदमी के शोषण को उजागर किया था।

इसी अंक के दूसरे दृश्य में हानूश के बेटी यान्का और हानूश का सहायक जेकब के बीच पनपते प्रेम सम्बन्ध को भी उभारा गया था। दिन प्रतिदिन घड़ी की सफलता के साथ–साथ हानूश और कात्या (पति–पत्नी) के बीच मधुर संबंधों को भी रेखांकित किया गया था।

'हानूश' नाटक 'रचनात्मकता का संकट' विषय पर केन्द्रित था रचनात्मकता का प्रश्न किसी भी कलाकार की सृजन शक्ति या उसकी निजी मौलिक प्रतिभा से सम्बंधित थे। वह चाहे चित्रकार हो या कवि–लेखक या वैज्ञानिक हो। यही कला किसी भी कलाकार या वैज्ञानिक को समाज के अन्य मानवों से उसे अलग और अनोखा बनाती था। जैसे नाटककार 'मोहन राकेश' के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास की सृजन शक्ति और खुद के संघर्ष पर 'रचनात्मकता का संकट' का सहज चित्रण मोहन राकेश के यहाँ मिलता था।

मध्यकाल में भी हमें बहुत से उदाहरण मिल जायेंगे जब राजतंत्र में कलाकार की कलाकारी पर केवल राजा का अधिकार था। राजा अपने अनुसार अपनी शक्ति और शान को बनाए रखने के लिए कलाकार की प्रतिभा को सम्मानित करने के बजाय उसे समाप्त करने की वह पूरी कोशिश करता था। कलाकार की कला, उसकी सृजन शक्ति पर अपना अधिकार चाहता था। जिससे समाज में उसका वर्चस्व सदैव बना रहे। जैसा कि शाहजहाँ ने बेगम मुमताज की याद में सुन्दर इमारत 'ताजमहल' बनाने वाले कारीगर का हाथ कटवा दिया था। जिससे वह मिस्त्री ताजमहल जैसी दूसरी कोई इमारत न बना सके। ऐसी दशा में शक्ति का प्रतीक राजा प्रजा स्वरूप कलाकार के जीवनयापन का पूरा इंतजाम करके वह अपने आपको महान जरूर समझता था, लेकिन एक कलाकार की कारीगरी, उसकी अपनी प्रतिभा, उसका अपना कला जिससे उसे अपनी जिंदगी में अत्यंत खुशी

और सुकून मिलता था। जिस प्रतिभा और संघर्ष की उसे सराहना मिलनी चाहिए थी उसी प्रतिभा और संघर्ष का वह शिकार होकर सदा के लिए अपाहिज हो जाता था। हानूश के साथ भी यही होता था। चित्रकार रवि वर्मा जैसा कि फिल्म में दिखाया गया था वह भी समाज में फैली रूढ़िवादी परम्परा और संस्कृति के साथ–साथ गन्दी राजनीति फैलाने वालों के हाथों का पुतला बन कर रह जाता था।

एक प्रसंग आता था जब हानूश का बड़ा भाई पादरी कात्या को पैसे का महत्व और उसका जीवन में कहाँ तक और कितना महत्त्व था। इस बात को समझाते हुए कहता था कि– जीवन में खुशी, सुकून पैसे से नहीं खरीदा जा सकता था। पादरी का कथन – "पैसे वाले कौन से सुखी हैं, कात्या? अगर पैसे से ही सुख मिलता हो तो राजा–महाराजों जैसा सुखी ही दुनिया में कोई नहीं हो।"[4] इसी प्रकार पादरी खुद से जीवन के रहस्यों के बारे में प्रश्न करता था कि व्यक्ति की जिंदगी का मकसद क्या था और क्या होना चाहिए? वह इस प्रश्न को लेकर परेशान रहता था। और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचता था कि किसी चीज के प्रति मानव के 'मन में स्थिरता होनी चाहिए।' हानूश मन की स्थिरता के प्रश्न पर व्यंग्य करता हुआ कहता था कि "आप स्थिरता चाहते हैं। पर स्थिरता तो भाई साहिब, पोखर के पानी में ही होती था, और कहीं तो मैंने स्थिरता नहीं देखी।"[5] इसी प्रकार हानूश का परिवार की आवश्कताओं पर ध्यान न देना और परिवार के प्रति उसकी लापरवाही की वजह से कात्या उसे स्वार्थी कहती था। जिसे केवल अपनी घड़ी से अभिप्राय था। कात्या कहती था कि "तुम परले दर्जे के स्वार्थी हो। तुम्हें सारा समय अपने काम से अभिप्राय रहता था– हम जिएँ–मरे, तुम्हारी बला से।"[5] यही मत मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास के बारे में अम्बिका रखती था कि कलाकार स्वार्थी होता था।

किसी भी तरह की रचनात्मकता किसी के आदेश की मुहताज नहीं होती और न ही कोई किसी से कहकर सृजनशीलता के प्रति उसकी व्याकुलता और सहज सृजन शक्ति को पैदा ही किया जा सकता था। हानूश से महाराज का यह कथन की हानूश ने घड़ी बनाने के लिए उनकी इजाजत क्यों नहीं ली। किसी कलाकार से यह बहुत ही बेतुका प्रश्न था। सृजनशीलता सहज भान की सहज कृति होती था। इसे किसी शासन सत्ता के द्वारा या किसी सत्ता की कैद में इसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता। हानूश की घड़ी बनाने की अपनी सृजन शक्ति, उसका अपना जुनून था, जिसके लिए वह समर्पित भाव से अभावहीन दशा में भी विचलित नहीं होता था। जिस कारण वह एक दिन घड़ी बनाने में सफलता होता था।

'हानूश' नाटक का कथानक सामंतीयुग के विघटन और पूंजीवाद के आगमन का संकेत करता था। नाटक के माध्यम के यह दिखाने की कोशिश की गई था कि अब वह समय नहीं रहा जब सभी चीजों पर केवल राजतंत्र का शासन होता था। राजा जैसे चाहे किसी के विकास की गति को मोड़ सकता था, जब चाहे, जो चाहे कर सकता था। सभी चीजों पर अपना आधिपत्य कायम कर सकता था। नाटक के द्वारा भीष्म साहनी जी यहीं बताने की कोशिश करते था की हानूश को अंधा बना देने से विकास की गति रूक नहीं सकती था। यहाँ पर कलाकार सामंतवाद और पूँजीवाद दोनों से परेशान था फिर भी वह अपने काम को बंद नहीं करता था क्योकिं उसे आशा था कि आने वाला कल उसका अपना था।

नगरपालिका के व्यक्ति व्यापारी पूंजीपति व्यक्ति थे जो घड़ी से अपना फायदा कमाना चाहते थे अर्थात व्यापार करना चाहते थे तो दूसरी तरफ गिरजाघर के व्यक्ति घड़ी को अपने यहाँ तो लगवाना चाहते थे लेकिन वे घड़ी के आविष्कार से खुश नही थे। क्योंकि उनके लिए घड़ी का निर्माण ईश्वरीय शक्ति का उलंघन था।

नाटक के तीसरे अंक में सृजनशीलता के प्रश्न और राजसत्ता का आम आदमी पर होने वाले अत्याचार को सहजता से स्वीकार करती हुई कात्या कहती था कि– "हम गरीब व्यक्ति बादशाहों से टक्कर नहीं ले सकते हैं। हमारी बिसात ही क्या था?"[8] हानूश का मित्र एमिल कात्या को समझाते हुए कहता था कि "ऐसा नहीं था, जो व्यक्ति कोई नया काम करेंगे, उन्हें तरह–तरह की जोखिमें तो उठानी ही पड़ेंगी।"[9] आगे एमिल कात्या को समझाते हुए कहता था कि "हानूश को अंधा ही इसलिए किया गया कि महाराज सौदागरों और गिरजेवालों के बीच अपनी शक्ति को बनाए रखें।"[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंधा होने के बाद हानूश तमाम तरह की सुख–सुविधा के बीच रहते हुए भी वह अपनी जिंदगी में सुकून भरा एक पल भी महसूस नहीं कर पाता था। नाटक के द्वारा भीष्म साहनी सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों पर तीखी टिप्पणी करते हैं। हानूश मानवीय संवेदना की खोज और उसके संरक्षण के लिए प्रयासरत दिखाई देता था। यह कहना गलत नहीं होगा कि भीष्म साहनी के रचना कर्म का मुख्य बिंदु ही मानवीय संवेदना की उसकी मनुष्यता की खोज करना था।

वस्तुतः हानूश की सृजन प्रक्रिया में भीष्म साहनी जी को लंबा समय लगा क्योंकि उसके संक्षिप्त कथानक का नाट्य विधा में अंतरण कठिन उपक्रम था। गिने–चुने तथ्यों के आधार पर एतिहासिक नाटक को प्रस्तुत करना चुनौती थी, जिसे भीष्म जी ने अपनी सृजन शक्ति से बखूबी प्रस्तुत किया।

भीष्म साहनी एक गरीब सामान्य आदमी की सृजनशीलता को उभारते हुए यह बताने की कोशिश करते हैं कि किस प्रकार एक सामान्य आदमी अपनी संघर्षशीलता के चलते कठिन मेहनत के बल पर सृजनशीलता का धनी होता था लेकिन समाज में व्याप्त राजसत्ता, समाजसत्ता और धार्मिक सत्ता तीनों मिलकर आर्थिक तंगी के कारण विवश कलाकार हानूश की रचनाशीलता पर अपना–अपना हक दिखाते हुए उसकी रचनात्मकता का हनन करते हैं। समाज में ऐसी कितनी प्रतिभाएं होगी जो आर्थिक तंगी की वजह से उभर नहीं पाती हैं। हानूश अपनी दशा से विचलित जरूर हुआ, लेकिन घर–बाहर की बहुत सी गतिविधियों से संघर्ष करता हुआ वह आगे बढ़ता रहा और सफल भी हुआ। उसे सफलता की खुशी से ज्यादा निराशा हाथ लगी। फिर भी वह अपनी जिंदगी की संघर्ष से संघर्ष करता हुआ भविष्य के लिए सदैव आशावान बना रहा। जिस वजह से वह अपने सृजन कार्य में अंततः सफल भी हुआ।

कबिरा खड़ा बजार में भीष्म साहनी की सृजन दृष्टि :-

हिन्दी नाटक में रूचि होने के कारण मैंने अनेक नाटक और नाटककारों को पढ़ा, उनमें भीष्म साहनी भी एक हैं। पर जब मैंने उनका 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक पढ़ा, जिसे पढ़ने का सुझाव मुझे रेखा अवस्थी जी ने दिया था, तो उसे पढ़ने के बाद मुझे लगा कि मैंने इसे पढ़ने में सचमुच देर कर दी था। 'कबिरा खड़ा बजार में' बजार के कई अर्थ खुलते हैं। वह सिर्फ वास्तु बेचने और खरीदारी करने भर का केन्द्र नहीं था, बल्कि वह सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों को चलाने वाला केन्द्र भी था। उसमें साधुओं के अखाड़े भी जोर–आजमाइश करते हैं, मुल्ला–पंडितों के प्रवचन भी चलते हैं और तद्नुसार सामाजिक दंगे भी होते हैं। उस बजार में दुष्ट कोतवाल भी था, जो उस स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए रखने के लिए था। कुल मिलाकर बाजार समाज के कई क्षेत्रों को एक साथ नियन्त्रित करता था। अतः कबीर यूँ ही लाठी लेकर बजार में खड़े नहीं हुए थे, बल्कि वह उनका बजार की इन्हीं परिवर्तन–विरोधी शक्तियों का प्रतिरोध था। इस प्रकार भीष्म साहनी ने बाजार पर भी

अपनी पैनी सृजन दृष्टि बनाए रखी था।

'कबिरा खड़ा बाजार में' नाटक में तीन अंक हैं। उसकी पृष्ठभूमि को रेखांकित करते हुए भीष्म साहनी अपने 'दो शब्द' में लिखते हैं कि "गाँधी जी की तरह कबीर को भी देशकाल से काटकर ब्रह्म में लीन अध्यात्म के गायक के रूप में दिखाना कबीर के साथ अन्याय करना ही था। लेखक मानता था कि कबीर के अध्यात्म–पक्ष की आधार–भूमि में ही उनके विराट मानवत्व का विकास हुआ था।"[12] इस नाटक में भीष्म साहनी ने कबीर के इसी पक्ष को उभारने का प्रयास किया था। और उनका यह प्रयास इस नाटक में सफल भी हुआ था। उनकी सचेतन, प्रगतिशील सृजन दृष्टि ने उसे बखूबी ढंग से उकेरा था।

नाटक में कबीर के जन्म के ये प्रसंग अचानक नहीं हैं। यह जानते हुए कि कबीर के जन्म की इस किंवदन्ती का कोई ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आधार नहीं था, ये प्रसंग अगर नाटक में आए हैं, तो स्पष्ट था कि नाटककार की वैचारिकी, जीवन दृष्टि से इसका टकराव नहीं थाद्य अगर होता, तो ये प्रसंग दूसरी तरह से नाटक में आते।

भारती जी आगे कहते हैं कि "साहनी जी इस प्रसंग में एक बड़ी गलती और कर बैठे हैं। वे दिखाते हैं कि कबीर नीमा को उसके विवाह के पहले दिन ही पड़ा मिला था। अभिप्राय उनकी अभी सुहागरात भी नहीं हुई थी। नियम से तो उस दिन से नूरा और नीमा के वैवाहिक जीवन का आरम्भ हो रहा था। यह उनकी खुद की सन्तान के लिए भी समय की शुरुआत थी। फिर नाटककार नूरा के मुंह से यह किस आधार पर कहलवाता था कि 'मैं दूसरा निकाह कर लेता। घर में अपना बच्चा तो होता?' क्या नूरा बाँझ को ब्याहकर लाया था? अगर विवाह के कुछ साल बीतने के बाद यह बात वह कहता, तो उसका कहना तर्कसंगत भी होता।"[22] खैर मुझे लगता था कि भारती जी की भीष्म साहनी पर किया गया यह एतराज बेमानी, एकतरफा और जातिभेद की दृष्टि से संकुचित था क्योंकि भीष्म साहनी की इस नाटक में कबीर संबंधी सृजन दृष्टि सामाजिक परिप्रेक्ष्य में था। अगर ऐसा होता तो दूसरा दृश्य देखिए जहां कबीर पंडितों का विरोध करते हैं और पिटते हैं–

भीष्म साहनी के कबीर नाली के किनारे बैठकर, सत्संग करते हैं, जो भीष्म साहनी जी की कल्पना और समझ कहती होगी, लेकिन कुछ आलोचक केवल दलित चश्मे से कबीर को देखते था और उनका मानना था कि "कबीर का नाले के पास बैठकर सत्संग करना उपहास पैदा करता था। कबीर जैसा मानव नाली के किनारे सत्संग करेगा या जनता के बीच जाएगा? क्या चमार, पासी, डोम और जुलाहों की दलित बस्तियां उनके लिए उचित जगह नहीं थीं? दलित सन्तों को नाली पर बैठाकर लेखक ने उनकी तेजस्विता और गरिमा दोनों को खत्म कर दिया था।"[27] लेकिन वे आलोचक ये नहीं जानते कि व्यक्ति अपने नाली के पास वाले घर से उठकर, कम छोड़कर दलितों की बस्ती में जाकर क्यूं सत्संग करेगा। अतः भीष्म साहनी जी की दृष्टि ज्यादा उचित जान पड़ती था।

भीष्म साहनी ने पंडित, मुल्ला और सत्ता के व्यूह में कबीर को सिर्फ एक जाति–विरोधी फकीर बनाने की ही कोशिश नहीं की था, अपितु उस कबीर की भी की था जिस पर पंडित, मुल्ला और सत्ता पर छाप नहीं पड़ती था।

वस्तुतः भीष्म साहनी जी कबीर के मुंह से ही कहलवा देते हैं कि उन्हें इसी पंचगंगा घाट पर गुरु–दीक्षा मिली थी। उन्होंने यहाँ उसी किंवदन्ती को दुहराया था, जिसमें कबीर पौ फटने से पहले पंचगंगा घाट की सीढ़ी

पर लेट जाते हैं और रामानन्द के चरण से कबीर छू जाते हैं। इस गुरु–दीक्षा को कबीर बड़े दीनता भाव से सेना और रविदास को इस तरह सुनाते हैं– 'बस वही हुआ।

कबीर सहज, सुलझे व्यक्तित्व के हैं तभी वे घाट पर ही रामानंद जी के चरणस्पर्श से उन्हें गुरु बना लेते हैं। इसी बात बात को सभी ने स्वीकार था। भीष्म साहनी ने भी वही कहा था लेकिन दलित आलोचकों को लगता था कि भीष्म साहनी जी की यह सृजन दृष्टि ठीक नहीं है। वे कहते हैं "क्या गुरु को यह नहीं मालूम कि कबीर उनका शिष्य था और वह शिष्य ब्राह्मण की लात पड़ने को ही गुरु दीक्षा समझ रहा है। क्या भीष्म साहनी को मालूम नहीं था कि कबीर की वैचारिक लड़ाई ब्राह्मण से ही थी। जिस ब्राह्मण के बारे वह यह कह रहे थे कि 'ब्राह्मण गुरु जगत का, साधु का गुरु नाहीं। उरझ–पुरझ करि मर रह्या चारो वेदा माहीं।।' वह ब्राह्मण की लात खाकर दीक्षा लेने के लिए गंगा घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेटेंगे? साहनी जी इतना ही समझे थे कबीर को?"[32] सत्संग के दृश्य द्वारा भीष्म साहनी ने समाज में फैले छुआछूत के भेदभाव पर अपनी सृजनात्मक दृष्टि से लेखनी चलाई था, पर कुतर्की आलोचक केवल दलित चश्मे से ही देखते हुए कहते हैं कि "भीष्म साहनी ने कबीर और रविदास का ही तमाशा बना दिया था। सड़क के किनारे कबीर, रविदास, सेना, बशीरा और भक्तों का जमावड़ा होता था। कबीर रविदास से शुरु करने को कहते हैं– चलो, रविदासजी, आप शुरु करो। कोई नया पद कहा था?"[33] रविदास पद गाते हैं– "जात भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा, नीचे से प्रभु ऊँच कियो था, कथा रविदास चमारा।"[34]

'कबिरा खड़ा बाजार में' कबीर के अक्कड़, प्रखर, मुखर, निर्भीक, सत्यान्वेषण और असाधारण व्यक्तित्व के कुछ चुने हुए प्रसंगों में से भीष्म जी ने नाटक का ताना–बाना बुना है। कबीर के पारिवारिक बल्कि घरेलू जीवन में पत्नी के साथ तनातनी सामाजिक सरोकार और धार्मिक सद्भाव संबंधी मान्यताओं और मानवीय धारणाओं के साथ इसमें मानवीय पक्ष उकेरा गया है। कबीर और उनके सामान धर्मा विभिन्न संतो और मनीषियों के विचार और उनकी वाणीयों में निहित संदेशों का अनुगायन हम सदियों से कर रहे हैं, लेकिन कबीर का व्यक्तित्व अपनी ओजस्विता और धर्मांध शक्तियों के वर्चस्व के आगे निर्धन और निर्भीक ढंग से आज इतने दिनों बाद भी जिस तरह तनकर खड़ा है, वह अपने संदेश में विराट होता चला जा रहा है। भीष्म साहनी का इस बारे में कथन है कि "मेरी समझ में कबीर का अध्यात्म मूलतः उनकी मनुष्य मात्र की प्रथम दृष्टि प्रेम–भाव, भक्ति–भाव और व्यापक धर्म दृष्टि से ही पनपकर निकला है।"[38] उनके बाह्याचार विरोधी पद, भक्ति भाव के पद और आध्यात्मिक पर एक ही भूमि से उत्पन्न हुए और व्यापक धर्म दृष्टि से ही पनपकर निकले है। वे एक ही मूल की उपज है। इस तरह वे एक–दूसरे से अलग ना होकर एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

'मुआवजे' में व्याप्त भीष्म साहनी की जीवन दृष्टि :–

भीष्म साहनी का नाटक 'मुआवजे' साहनी जी की प्रगतिशील दृष्टि को आगे बढाता था। इस नाटक में वर्गीय टकराव की प्रत्यक्ष स्थितियां बहुत स्पष्ट नहीं हैं। जो कुछ था वह पर्दे के पीछे से संचालित होता था। यहाँ नेता, पुलिस, प्रशासन, व्यवसायी, अपराधी और साधारण जनता सभी एक–दूसरे में घुल मिल गए से लगते हैं। ऐसे में नाटक की छटाएं अधिक संश्लिष्ट हो गयी हैं। 'मुआवजे' स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनीतिक दशा पर करारा व्यंग्य था। साम्प्रदायिक दंगे भड़कने की सम्भावना के बीच राजनीति, प्रशासन, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग, अपराधी और नागरिक समाज किस प्रकार इस तनावपूर्ण दशा का सामना करते हैं, इसी यथार्थ को आधार

बनाकर नाटक का ताना–बाना बुना गया था।

यह नाटक 'गुण्डा राजनीति' की वास्तविकता को हमारे सामने प्रस्तुत करता था। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमण्डल, नयी दिल्ली द्वारा मेघदूत थियेटर में एम. के. रैना के निर्देशन में इसका सबसे पहला मंचन अक्टूबर, 1992 में हुआ था।

यह नाटक रंगकर्मियों, निर्देशकों एवं दर्शकों के बीच इतना लोकप्रिय हुआ कि अधिकांश चर्चित रंगटोलियों ने इसका मंचन किया। 'मुआवजे' के विवेचन के प्रसंग में यह उल्लेखनीय था कि यह नाटक भीष्म साहनी के अन्य नाटकों से बिल्कुल भिन्न था, कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर। भाषा भी अलग था। जनता के बीच से उठाई गयी था। एक अलग ही तेवर था इसका, जो कथ्य को धारदार बनाती था, प्रामाणिक और प्रासंगिक भी। उनके दूसरे नाटकों के कथ्य मिथक और इतिहास पर आधारित हैं, अतीत अथवा प्राचीन से घिरे हुए। जबकि 'मुआवजे' का कथ्य सीधे वर्तमान पर टिका हुआ था, वर्तमान में आवाजाही करता, उससे टकराता हुआ अपना विमर्श रचता था। समग्रता में देखें तो भीष्म साहनी का रचनाकार वर्तमान से पलायित होकर प्राचीन का गौरवगान करने का अभ्यस्त नहीं था।

भीष्म साहनी जब 'मुआवजे' में राजनीति, प्रशासन और गुण्डाराज की सत्ता का विमर्श रचते हैं तो उनकी दृष्टि जनता की बदलती मनोवृत्ति की भी गहराई से पड़ताल करती था जो छोटे–छोटे स्वार्थों के लिए तरह–तरह की चालाकियाँ बुनती रहती था। यह वो जनता नहीं था जिसके प्रति भीष्म साहनी ने अपने लेखन में सहानुभूति और संवेदना व्यक्त की था, जिसके हितों एवं मानवीय गरिमा के पक्ष में रचनात्मक प्रतिबद्धता दिखाई था। दंगे के बाद मिलने वाले मुआवजे के चारों तरफ नाटक की घटनाएँ घूमती हैं।

इस नाटक में दंगों की गति की को दृश्य रूप में प्रस्तुत करते हुए भीष्म साहनी ने प्रायः एक 'अलक्षित' रह जाने वाल पक्ष पर भी ध्यान दिया है। जिसे जनता कहा जाता था और जो अब उतनी भोली–भाली नहीं रह गयी था जितना उसे समझा जाता रहा था। जनता में उग आई चतुराई को दिखाने के लिए नाटककार ने दीनू के साथ शान्ति के विवाह का प्रसंग रचा था।

पहला बयान भावनात्मक, दूसरा मुआवजे के जिक्र वाला और तीसरा जनतन्त्रात्मक मूल्यों–मान्यताओं–आदर्शों के बारे में। यह सीधे–सीधे जनता को मूर्ख बनाना था। हमारे देश में राजनीति का अभिप्राय जनता को छलना एवं उसका भावनात्मक दोहन करना था। इस नाटक का सक्सेना पेशेवर भाषण लेखक था। वह पक्ष–विपक्ष सबके लिए भाषण लिखता था। उसे केवल पैसा चाहिए। दंगों में मार–काट करने वाले भी पेशेवर हैं। पैसा पाकर अपने ही जाति–धर्म वालों की हत्या करने में उन्हें कोई गुरेज नहीं था। हथियार बेचने वाला यह नहीं देखता खरीदने वाला हथियार का प्रयोग कब, कहाँ, कैसे और किसके खिलाफ करेगा। भाषण देते हुए कोई कुछ भी कह ले, जनतन्त्र एवं आदर्शों की दुहाई दे ले, लेकिन निष्ठा और ईमानदारी तो कहीं नहीं दिखाई देती। मकान खाली करवाना हो अथवा जमीन पर कब्जा करवाना हो, बड़ी–बड़ी आँखों और फनियर मूँछों वाला दस–नम्बरी गुण्डा चुटकी बजाते यह काम कर देता था। सेठ को अपनी फैक्टरी से जुड़ी सरकारी जमीन पर कब्जा करना था तो अधिकारियों तथा गुण्डों से मिलकर हो सकता था। उसे भी पक्का यकीन था कि 'दंगा होकर रहेगा'। गुमाश तो सारा शहर खाली करवा देने का दम भरता था।

'मुआवजे' का एक प्रमुख पात्र जग्गा ठेके अथवा दिहाड़ी पर लोगों की हत्या करने का 'धंधा' करता था।

उसका कहना था कि, "हम तो हर कौम के आदमी को मारते हैं, हमारे लिए सब बराबर हैं, जो सामने आ जाये। चुन–चुनकर मारना ज्यादा मुश्किल होता है। तुम्हें कौन–से अमीरजादे और लखपति मरवाने हैं, यही मोची, नाई, मजदूर मरवाओगे।"[42] स्पष्ट था कि हथियार के दुकानदार की तरह जग्गा भी कौम की दुहाई देने से नहीं चूकता। सच ये था कि इन दोनों को अपने सम्प्रदायों और धर्म से नहीं, पैसे कमाने से अभिप्राय था।

भीष्म साहनी ने बड़े यथार्थ के रूप में इस मनोवृत्ति की पहचान की था और यह दिखाने की कोशिश की था कि धर्म एवं जाति की दुहाई देने वाले अनैतिक ही नहीं, भ्रष्ट और संवेदनहीन होते हैं। इस मनोवृत्ति के व्यक्ति राजनीति, धर्म एवं समाज को बाँट करके केवल अपने फायदे के बारे में सोचते हैं। इनके लिए अपना–पराया कोई नहीं होता।

जग्गा का चौधरी जगन्नाथ के रूप में बदलना अप्रत्याशित नहीं, लम्बी प्रक्रिया का परिणाम था जिसकी शुरुआत आजादी के बाद से ही हो गयी थी। इसे विद्यमान राजनीति का विद्रूप ही कहेंगे कि शासन–प्रशासन जनता के बीच सामंजस्य एवं सौहार्द्र की नहीं, दंगा होने का बेसब्री से इन्तजार करता था। सभी पक्ष अपने–अपने भाग का फायदा उठाने के लिए बेचैन हैं। नाटक की घटनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि इनके लिए दंगा मानवीय त्रासदी नहीं, कुछ पाने का सुनहरा अवसर बनकर उपस्थित होने वाला था।

भीष्म साहनी ने इस सम्भाव्य परिघटना को नाटकीयता प्रदान करने के लिए जिस परिवेश का निर्माण किया था वह पूरी तरह से विश्वसनीय लगता था। वंचित समुदाय के लोगों का जीवन न्यूनतम सुविधाओं से इतना वंचित था कि वे भी दंगे के 'भयावह परिणाम' के बारे में न सोचकर मुआवजे में 'सुखमय भविष्य की सम्भावना' ढूँढ़ने लगते हैं। एक पिता अपनी बेटी का विवाह दयनीय–गरीब दीनू से केवल इसलिए करने पर आमादा था ताकि दंगे में दीनू की हत्या के बाद मिलने वाले मुआवजे से उसकी शादी फिर से किसी सुयोग्य वर से कर सके।

इस नाटकीय वर्णन में भीष्म साहनी की दृष्टि वंचित समुदाय की विपन्न समाजार्थिक दशा को उभारने से चूक नहीं सकी था। इस समुदाय के अवसरानुकूल लोभ–लालच पर महीन चोट करते हुए भी उन्होंने बड़े सन्दर्भ में अपनी जनपक्षधरता का निर्वाह किया था।

'मुआवजे' के नाटकीय विकास–क्रम में एक प्रसंग वह भी आता था जब दीनू और शान्ति एक–दूसरे को सचमुच चाहने लगते हैं। यह प्रसंग नाटकीय विकास में एक हस्तक्षेप था। दीनू और शान्ति के भीतर फूटने वाला प्रेम का भाव नैसर्गिक था, इसलिए मानवीय था। दंगा और मुआवजा नैसर्गिक नहीं था किन्तु अवास्तविक भी नहीं था। यह स्वातन्त्र्योत्तार भारत का राजनीतिक यथार्थ था। मृत्यु और उसे भुनाने की कोशिश दोनों प्रायोजित होते हुए भी विश्वसनीय लगती हैं।

इस नाटक के पात्र अपने व्यवहार से स्वभाविकता पैदा करते हैं। यह भी सही था कि, "प्रत्यक्ष रूप से किसी भी साहित्यिक चरित्र में वह विशेषताएँ तथा प्रतिक्रियाएँ नहीं मिलतीं जो खुद जीवन में पाई जाती हैं। परन्तु कलात्मक रचना की योग्यता इस बात से प्रकट होती था कि वह सापेक्षिक, अपूर्ण छवि को सम्पूर्ण, जीवित तथा प्रत्यक्ष वास्तविकता प्रदान करती है अथवा नहीं।"[44] इसे कला का सामान्य विरोधाभास भी कहा जा सकता है। जब कोई भी साहित्यिक कृति अपनी विषयवस्तु और रूप के कारण अपने–आपको जीवन के यथार्थ की जीवित छवि के रूप में प्रस्तुत करने को विवश हो जाती हैं।

'मुआवजे' की विषयवस्तु हमारे वर्तमान की जीवन्त छवि था। वर्तमान अस्थिर तो होता है किन्तु यदि वह क्षण–प्रतिक्षण अपना रूप बदलने लगे तो उसकी पहचान करना कठिन हो जाता है। वह बहुरुपिया हो जाता हैद्य जिसका अपना कोई निश्चित एवं विश्वसनीय रूप–धर्म नहीं होता।

'मुआवजे' के कथ्यगत विस्तार में जितने पात्रों की गतिविधियों से हमारा साक्षात्कार होता है, वे सभी बहुरूपी हैं, साथ ही प्रामाणिक भी। प्रामाणिक इस अर्थ में कि वे अपने समय के बड़े यथार्थ को ही प्रक्षेपित करते हैं। वे जीवन्त एवं प्रत्यक्ष वास्तविकता का बोध कराते हैं। वास्तविकता का बोध कराने के लिए ही नाटककार ने इसकी संरचना में व्यंग्य, विद्रूप तथा हास्य का सही समावेश किया था। यदि ऐसा न किया जाता तो इस नाटक में वैसी मारक शक्ति नहीं आ पाती, न ही दर्शक पर इसका अपेक्षित प्रभाव पड़ता जैसा यहाँ देखने को मिलता था।

जगन्नाथ चौधरी बना जग्गा ही केवल अनैतिक नहीं था, अनैतिकता उस समाज का भी हिस्सा बन चुकी थी। जो बिना सोचे–समझे 'बहती गंगा में हाथ धोने' के लिए तैयार हो जाता था। यह विद्यमान समाज एवं व्यवस्था का ज्वलन्त सच था। इस नाटक का सारतत्त्व भी यही था। नाटक की इसी परिघटना में समाज की व्यापक चिन्ता भी समाहित था। ऐसी मनोवृत्ति के निरन्तर प्रसार से एक सुन्दर समाज की परिकल्पना कैसे की जा सकती था?

'माधवी' में निहित नारी संबंधी सृजनात्मक दृष्टि :–

'माधवी' भीष्म साहनी का नारी संबंधी नाटक है। पित्रात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और शोषण की कहानी कहने वाले नाटक 'माधवी' की रचना प्रक्रिया का बीजारोपण त्रिलोचन शास्त्री के साथ बातचीत करते हुए एक रेलयात्रा के दौरान हुआ। त्रिलोचन जी ने महाभारत में जो कथा आई थी उसे साहनी जी को सुनाया। उससे प्रभावित होकर भीष्म साहनी ने 'माधवी' नाटक की रचना करने के प्रति गहरी मानवीय संवेदना दिखाई। महाभारत के अंदर माधवी के प्रति किंचित मात्र सहानुभूति प्रकट नहीं की गई और ना ही माधवी द्वारा विश्वामित्र के पास सहवास का प्रस्ताव लेकर जाने की भर्त्सना की गई है।

इसी कथा को भीष्म साहनी ने जब आधुनिक संदर्भ में और स्त्री स्वतंत्रता के प्रश्न से जोड़कर नाटक प्रस्तुत किया तो उसमें माधवी को केंद्रीय भूमिका प्रदान की गई। अपनी सृजन दृष्टि के बल पर ही यह नाटक स्त्री प्रधान बन गया। निश्चय ही यह भीष्म साहनी जी की उदार संवेदना दृष्टि से संभव हुआ। उन्होंने माधवी की इस गहन चुप्पी और पुरुष पीड़ा में विकास की अनेक संभावनाएं देखी। वे यही मानते रहे कि फल की इच्छा मौलिकता को क्षतिग्रस्त करती है, इसलिए उसे अपने रास्ते पर ही चलना चाहिए।

'माधवी' की कथावस्तु अपनी पौराणिकता के बावजूद स्त्री–पुरुष संबंध को आधुनिक संदर्भ में परिभाषित करती है। यह एक और महाभारतकालीन महाराज ययाति की पुत्री माधवी के मन में चलने वाले उहापोह को उजागर करती है, जबकि दूसरी ओर स्त्री–पुरुष संबंधों की विषमता और विडंबना इसे अत्यंत जटिल बना देती है।

समाज में परंपरागत चलन पर प्रचलित व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री का शोषण कोई नई बात नहीं रही है। विश्वामित्र का महत्वाकांक्षी शिष्य मुनि पुत्र गालव का संकल्प है कि वह आठ सौ अश्वमेधी अश्व जुटा लेगा हालांकि इतनी बड़ी संख्या में तब किसी भी सम्राट के पास अश्व नहीं थे। निराश गालव राजा ययाति के पास

पहुंचा, लेकिन इतनी बड़ी संख्या में घोड़े ना दे पाने की स्थिति में असमर्थ ययाति ने अपनी दानवीरता का प्रदर्शन करते हुए गालव को अपनी पुत्री माधवी सौंप दी। माधवी कोई सामान्य स्त्री नहीं थी। माधवी को चिरकौमार्य और चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करने का वरदान मिला हुआ था, इसलिए अनिच्छा के बावजूद वह गालव की बेतुकी प्रतिज्ञा को पूरा करने और पिता की आज्ञा का पालन करने निकल पड़ी।

भीष्म साहनी लिखित 'माधवी' स्पष्ट तौर पर भारतीय समाज में स्त्री की तथाकथित उपस्थिति और प्रायोजित नियति पर गहरा कटाक्ष करने वाला नाटक है। देशकाल में आए इतने परिवर्तनों के बावजूद स्त्रियों के उत्पीड़न और शोषण में वृद्धि हुई है। महाभारत की द्रौपदी के बाद माधवी का अपेक्षाकृत अज्ञात और अल्प ख्यात चरित निश्चय ही हिंदी पाठकों और दर्शकों को चौंकाने वाला था। भीष्म जी ने बिना मुखर हुए पुराण इतिहास में वर्णित इस अभिशप्त नारी चरित्र को वर्तमान परिवेश से जोड़ा और उसकी पात्रता से जुड़ी उसकी अनकही वेदना और तद्युगीन विसंगतियों एवं धार्मिक विडंबना के आलोक में देखने का प्रयास किया। यह उनकी प्रगतिशील सृजन शक्ति का ही परिचायक है।

रंग दे बसंती चोला में भीष्म साहनी की सृजन शक्ति :-

'रंग दे बसंती चोला' का मुख्य सरोकार जलियांवाला बाग हत्याकांड से है। साहनी जी ने बहुत ही सावधानीपूर्वक इस घटना की पूर्व कथा की पड़ताल करने की कोशिश की है। इस कथा से यह पता चलता है कि कैसे पूरी अंग्रेजी ताकत हिंदू–मुस्लिम एकता से भयभीत थी। कैसे उनकी रात की नींद हराम हो गई थी। कथा में जहां जहां हिंदू–मुस्लिम एकता की बात की गई है, वहां विशेष रूप से अंग्रेज अफसरों के चेहरे पर हवाईयां उड़ने लगती है। इस जातीय एकता, सांस्कृतिक एकता और सादगीपन में अंग्रेज सरकार दरार डालना चाहती है लेकिन उसका दरार डालने का तरीका बहुत जघन्य है। जब सरकार को लगता है कि उसके मना करने के बाद भी हड़ताल की जा रही है और आगे भी की जाएगी तो जलियांवाला बाग में बैठे हजारों आदमियों पर अमानवीय, क्रूर और हिंसक तरीके से कहर बरपा दिया जाता है। उपस्थित लोगों को गोलियों से भून दिया जाता है। सरकार को अपने विरुद्ध संघर्ष समाप्त करने का यही तरीका सही जान पड़ा। जब–जब सरकार को समुदायों के मध्य एकता स्थापित करने का आभास हुआ, तब–तब सरकार ने इसे कुचलने के बहाने अपने घिनौने खेल को अंजाम दिया। जलियांवाला हत्याकांड के बाद भी ऐसी कई घटनाएं हुई, जिनका मकसद था, इस एकता को तोड़ना।

भीष्म साहनी एक तरफ दस्तावेजी नाटक की बात करते हैं, तो दूसरी तरफ लेखन में सत्य के उद्घाटन को प्राथमिकता देते हैं। लेखन में कल्पना के साथ सच्चाई के दमन की बात करते हैं। जिस लेखन में दोनों का अभाव है, उसे कपोल कल्पना के नाम से अभिहित करते हैं। उन्होंने लिखा है "रूमानी लेखन और यथार्थवादी लेखन को अलग–अलग कटघरों में रखना मुझे बहुत असंगत लगता है। कल्पना की भूमिका दोनों में निर्णायक होती है। दोनों विधाओं में जीवन के सत्य का उद्घाटन ही सर्वोपरि होता है। यथार्थवादी लेखन में लेखक वास्तविकता के धरातल पर चलता है। रोमानी लेखन में लेखक वास्तविकता से बहुत ऊपर उठ जाता है, पर दोनों ही जिंदगी की सच्चाई का दामन थामे रहते हैं। जहां इस सच्चाई का दामन छूट जाए, वहां रचना कपोल कल्पना बनकर रह जाती है।"[46]

स्पष्ट है कि जलियांवाला घटना के सत्य का उद्घाटन उनके पीछे की मूल वजह की पड़ताल करना,

साहनी जी का अभीष्ट लक्ष्य रहा और वे अपनी इस सृजन दृष्टि में सफल भी सिद्ध हुए।

भीष्म साहनी की सृजन दृष्टि और 'आलमगीर' :-

भीष्म साहनी ने अपने नाटक 'आलमगीर' में ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाते हुए अपनी प्रगतिशील सृजनात्मक शक्ति का परिचय दिया है जिसमें आधुनिकता का पुट दिखाई देता है। उन्होंने 'आलमगीर' नाटक के केंद्र में औरंगजेब के शासन और जीवन को और रखा है, लेकिन उसके साथ ही दाराशिकोह का दुखांत जीवन और उसकी शहादत भी वर्णित की है। 'आलमगीर' नाटक में मुख्य संघर्ष औरंगजेब और दारा शिकोह के बीच होता है। दाराशिकोह दयालु, दूसरों पर विश्वास करने वाला, सहृदय व्यक्ति था। वह विभिन्न धर्मों के बीच सुलह और संवाद का समर्थक था।

दाराशिकोह के ठीक विपरीत औरंगजेब कट्टर इस्लाम प्रस्तुत था। वह हर बात में इस्लाम धर्म और खुदा की दुहाई देता था। सामगढ़ की लड़ाई में वह अपनी चालबाजी और युद्ध संबंधी अनुभवों के कारण जीता, लेकिन मैं अपने आप से कहता है "शुक्र! अल्लाह परवरदिगार, तेरा लाख–लाख शुक्र है। हे मेरे मालिक! तेरी रजा से यह दिन देखना नसीब हुआ।"[47] यही बात वह जहांआरा से भी कहता है "यह पतह, जो मुझे नसीब से हुई है। यह मेरी फतह नहीं है। यह खुदाबंद ताला की मुझपर मेहर हुई है। उन्होंने मुझे इस काबिल समझा है कि मैं मुगलिया सल्तनत की खिदमत करूं।"[48]

'आलमगीर' नाटक के दसवें दृश्य में जब औरंगजेब बूढ़ा हो गया है, उससे मिलने शेख बुरहानुद्दीन आए। जिनकी औरंगजेब बहुत कद्र करता था। उनसे औरंगजेब कहता है "मैं बहुत अकेला पड़ जा रहा हूं, शेख साहब। बहुत से नाते–रिश्तेदार दगा दे गए।"[49] शेख बुरहानुद्दीन औरंगजेब से कहते हैं कि "नाते–रिश्तेदारों की तुम्हारी नजर में कभी कोई कमी नहीं रही।"[50] उसके बाद औरंगजेब कहता है कि "हक की लड़ाई में मैं अपने बेटे को भी कुर्बान कर दूंगा।"[51] जवाब में बुरहानुद्दीन कहते हैं "हक की लड़ाई में या शक की लड़ाई में।"[52]

औरंगजेब ने सत्ता हासिल करने के लिए पहले अपने भाइयों की हत्या की। अपने बूढ़े बाप को कैद किया और बादशाह बन जाने के बाद अपने बेटों–अकबर, मोहम्मद और मुहरम को तबाह और बर्बाद किया। उसने अपनी बेटी जेबुन्निसा को कैद किया, जो कैद में ही मर गई। यही नहीं उसने अपनी बहन रोशना की भी हत्या करवा दी। इन सब घटनाओं और औरंगजेब की क्रूरताओं का उल्लेख 'आलमगीर' नाटक में है। इन सबके बाद बूढ़ा औरंगजेब अकेला एकदम अकेला रह गया। औरंगजेब जिनको तबाह और बर्बाद करना चाहता था, उनको दीन का दुश्मन घोषित करता था। औरंगजेब ने मजहब की आड़ में राजनीति की।

'सरमद' की भूमिका में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने ठीक ही लिखा है कि "एशिया में हमेशा से मजहब की आड़ में राजनीति रही है और हजारों खुशियां जो राजनीतिक कारणों से हुई उन्हें मजहब की चादर से ढककर छिपाया गया है।"[54]

संदर्भ :-

1. डॉ गिरीश रस्तोगी – समकालीन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, प्रथम संस्करण –1990, पृष्ठ सं. 110
2. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन – संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 11

3. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 140
4. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 15
5. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 27
6. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 56
7. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 66
8. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 68
9. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 69
10. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 70
11. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 104
12. हानूश – भीष्म साहनी राजकमल प्रकाशन : संस्करण चौथा 2010, पृष्ठ सं. 104
13. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 115
14. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 15
15. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 15
16. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 16
17. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 19
18. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 115
19. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 106
20. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 119
21. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 4
22. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 5
23. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 113
24. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 114
25. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 115
26. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 3
27. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 4
28. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 122
29. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 123
30. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 4
31. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 58
32. भीष्म साहनी के कबीर– कँवल भारती, पृष्ठ सं. 4
33. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 138
34. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 138
35. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 142

36. आज के अतीत– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 99
37. कबिरा खड़ा बजार में– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 142
38. आज के अतीत– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 99
39. मुआवजे– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 14
40. मुआवजे– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 14
41. मुआवजे– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 15
42. मुआवजे– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 44
43. मुआवजे– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 46
44. इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक नाटक – जॉर्ज लुकाच, अनु. कर्ण सिंह चौहान, पृष्ठ सं. 91
45. बनास– संपादक पल्लव, पृष्ठ सं. 44
46. आज के अतीत– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 238
47. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 35
48. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 36
49. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 36
50. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 38
51. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 38
52. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 39
53. आलमगीर– भीष्म साहनी, पृष्ठ सं. 41
54. भीष्म साहनी का नाटक 'आलमगीर'– मैनेजर पांडे, पृष्ठ सं. 229

८३६८७७४१५०
Ravi92dev@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 175-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डिजिटल क्रांति तथा ग्रामीण जीवन पर प्रभाव

डॉ. अंजली कुमारी

वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है। यह वैज्ञानिक आविष्कारों तथा सूचना के तकनीकी तंत्रों से जुड़ी हुई है। वैश्वीकरण के कारण मोबाइल, कंप्यूटर, इंटरनेट, सेटेलाइट, लैपटॉप, ई–मेल तथा अन्य सूचना तकनीकों का तीव्र विकास हुआ है। भारतीय सामाजिक संरचना पर इसका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। एक गांव का गरीब खेतिहर मजदूर भी रोजगार के अभाव में देश के दूसरे हिस्से में रोजी–रोटी के लिए भटकता रहता है तो वह टेलीफोन बूथों अथवा मोबाइल के जरिए अपने परिवार से जुड़े होने का एहसास प्राप्त करता है। व्यापारिक क्षेत्र में सूचना तकनीकों का उल्लेखनीय महत्त्व है। इस प्रकार वैश्वीकरण ने संवाद की प्रक्रिया को एक नई गति प्रदान की है। यह सीमित मूल्यों पर उपलब्ध है। यह दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इसने समाज को एक नई दिशा प्रदान की है।

टी0 एस0 पपोला के अनुसार वैश्वीकरण में कुछ लोग सहभागी हो रहे हैं। कुछ लोग लाभान्वित होंगे परंतु अधिक लोग अलक–थलक रह जाएँगे। पपोला ने स्पष्ट किया कि वैश्वीकरण के प्रभावों की यह सही व्याख्या नहीं है। उनके अनुसार, वैश्वीकरण के दौर में कुछ लोग नकारात्मक प्रभाव के साथ दिखाई देंगे। कुछ लोगों ने स्पर्धा के कारण अपने उत्पादों के बाजार खो दिया है। कुछ लोगों ने श्रम–नीतियों एवं कानूनों के सूधार के कारण अपनी सुरक्षित नौकरी खो दी है। इस प्रकार वैश्वीकरण ने एक नए वर्ग को जन्म दिया है। यह वर्ग वैश्वीकरण की प्रक्रिया से आहत है। कुछ लोग वैश्वीकरण की आरंभिक अवस्था में इसके प्रत्यक्ष प्रभाव से जुड़ नहीं पाते हैं। पपोला के अनुसार ज्यादातर किसान एवं असंगठित क्षेत्र के श्रमिक तथा दूर–दराज में रहने वाली जनजातियां, फिलहाल अपनी आजीविका के क्षेत्र में वैश्वीकरण से अछूती हैं।

वैश्विक गाँव :–

मार्शल मैक्लूहन ने 'विश्व गाँव' की अवधारणा को प्रस्तुत किया। वस्तुतः वैश्वीकरण ने दुनिया को एक नई राह दिखाई है। समय और स्थान की सीमा सिमटती जा रही है। एक देश से दूसरे देश के लोगों के बीच आदान–प्रदान की प्रक्रिया तीव्र हो रही है। अमेरिका, लंदन तथा कनाडा में भारत के अनेक लोग अर्थव्यवस्था की प्रक्रियाओं से जुड़े हुए हैं।

संकट तथा संक्रमण :–

समाजशास्त्री प्रो0 श्यामाचरण दुबे ने अपने अनेक विचारोत्तेजक निबंधों में वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के कारण समाज में उत्पन्न हो रहे अनेक संकटों की चर्चा की है। उन्होंने इस संबंध में कई प्रश्न चिह्न भी खड़े किए है। उनके अनुसार अब विकास का एक ही मार्ग रह गया है– बाजार के संकेतों पर चलने वाली मुक्त

अर्थव्यवस्था। विकासशील देशों को अहंकारपूर्ण सुझाव सुनने पड़ेंगे और उद्दंड हस्तक्षेप भी सहन करना पड़ेगा।

आर्थिक असमानता :–

1991 में भारत सहित अनेक विकासशील देशों में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को एक नई उत्तेजना प्राप्त हुई। भारत में आधारभूत संरचनाओं का अभाव है। विशेष रूप से बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा झारखंड राज्यों में स्वास्थ्य तथा शिक्षा का अभाव है। साथ ही सड़क तथा बिजली की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है। फलतः वैश्वीकरण के दौर में इन क्षेत्रों के निवासी काफी पीछे हैं। मँहगाई बढ़ रही है। चिकित्सा व्यय में भारी वृद्धि हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में भी अब अधिक आर्थिक संसाधनों की अपेक्षा है। वैश्वीकरण के कारण देश में उन्मूलन की प्रक्रिया चल रही है। गरीब तथा अशिक्षित लोगों को दरकिनार किया जा रहा है। गरीबी–अमीरी की खाई बढ़ती जा रही है। देश में 'इंडिया' तथा 'भारत' अलग–अलग दिखाई पड़ता है। 'इंडिया' की राह पंचसितारा होटलों से निकलती है। 'भारत' की राह झुग्गी–झोपड़ियों से गुजरती है।

सूचना क्रांति तथा वैचारिकता :–

वैश्वीकरण ने एक भागम–भाग रफ्तार को पैदा किया है। जिंदगी कहीं रूकती हुई नजर नहीं आती है। 'यूज एंड थोरो' के वैचारिक सिद्धान्त को तवज्जो दी जा रही है। नैतिकता के सारे मानदंड दरकिनार किए जा रहे है। धर्म का भी इस्तेमाल हो रहा है। हर आदमी दूसरे आदमी इस्तेमाल करना चाहता है। जिंदगी की लंबी जद्दोजहद के बाद दम तोड़ने ताले एक बुजुर्ग को कंघा देने के लिए भी आदमी नहीं जुट पाते हैं। टेलीविजन के निजी चैनलों पर लगातार अनैतिक यौन संबंधों, पारिवारिक राजनीति तथा कुटिलता एवं उपसंस्कृति से जुड़े सीरियलों को महत्व दिया जा रहा है। इन चैनलों पर प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, शैलेश मटियानी, नागार्जुन, मनोहर श्याम जोशी तथा जन संघर्ष से जुड़े अन्य साहित्यकारों की घोर उपेक्षा की जा रही है। यह खतरे का संकेत है। वैचारिक मूल्यों का हनन व्यक्ति और समाज को अर्धपतन की ओर ले जा रहा है।

सूचना क्रांति तथा कृ□ा अर्थव्यवस्था :–

भारतीय परिदृश्य में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने कृषि अर्थव्यवस्था को विभिन्न रूपों में प्रभावित किया है। ज्ञातव्य है कि औपनिवेशिक शासन काल में भारत के ग्रामीण कुटीर उघोगों को खोखला किया गया। स्वाधीन भारत में भी कृषि अर्थव्यवस्था की स्थिति संतोषजनक नहीं है। वैश्वीकरण ने कृषि अर्थ व्यवस्था को चौराहे पर ला खड़ा कर दिया है। किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। आर्थिक अभाव तथा घाटे ने उन्हें तोड़कर रख दिया है। विदर्भ सहित देश के अनेक भागों में किसानों ने आत्महत्या की है। कृषि अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था का बुनियादी आधार है। वैश्वीकरण के कारण कृषि अर्थव्यवस्था नकारात्मक रूप में प्रभावित हुई।

आधुनिक समाज में आधुनिकीकरण एक प्रमुख अवधारणा है। विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का मूल आधार वैज्ञानिक दृष्टि है। यह सार्वभौमिक है। यह वैश्विक दृष्टि पर आधारित है। यह उद्विकासीय है। यह प्रौद्योगिकीय विकास के साथ संबंधित है। इसमें संकीर्णता तथा कट्टरवादिता नहीं है। यह धर्मनिरपेक्ष मुल्यों पर आधारित है।

बाजार :–

मानव जीवन में बाजार का अपरिहार्य महत्त्व है। विभिन्न स्तरों पर तथा विभिन्न रूपों में बाजार का विकास हुआ है। सरल समाज की तुलना में जटिल समाज के बाजार की संरचना अधिक विस्तृत, सुदृढ़ तथा

प्रभावी होती है। अर्थव्यवस्था का विकास भोजन एकत्रित करने एवं शिकार करने की अवस्था, चारागाह अवस्था, कृषि अवस्था एवं औद्योगिक अवस्था से जुड़ा हुआ है। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में बाजार को एक विस्तृत आधार प्राप्त हुआ है। बाजार का भूमंडलीकरण हो रहा है। आर्थिक उदारीकरण तथा उत्तर आधुनिकता के माहौल में बाजार ने मानव जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित किया है।

वैज्ञानिक दृष्टि में बाजार का अर्थ किसी स्थान विशेष से नहीं होता है। बाजार का अर्थ उस संपूर्ण क्षेत्र से होता है जिसमें किसी वस्तु के क्रेता एवं विक्रेता फैले होते हैं। बाजार में प्रतियोगिता पाई जाती है। उदाहरणस्वरूप एक समय में सोने का मूल्य सभी जगहों पर एक समान होना अपेक्षित है। इसी तरह अन्य वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में भी समानता का सिद्धांत मौजूद होता है। आधुनिक दौर में बाजार का फलक विस्तृत हो रहा है। अब ई–मेल, इंटरनेट, दूरभाष, क्रेडिट कार्ड, ए0टी0एम आदि भी बाजार के साथ जुड़ गया है। सामान के क्रय–विक्रय हेतु व्यक्ति को स्वयं मौजूद रहना भी अपेक्षित नहीं है। अब टेलीफोन, तार तथा सूचना तंत्र के अन्य माध्यमों के जरिए भी समान का क्रय–विक्रय होता है जाहिर है कि बाजार ने मानव जीवन को व्यापक पैमाने पर प्रभावित किया है।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में बाजार को एक सामाजिक संस्था के रूप में स्थापित किया जाता है। गाँव तथा कस्बों में ग्रामीण हाट का विशे ा महत्व है। आदिम जनजातियों में 'साप्ताहिक बाजारों' को विशेष स्थान प्राप्त है। दिल्ली के उपांत नगरों में तथा नई विकसित कॉलोनी के पार्श्व में ग्रामीण हाट अथवा साप्ताहिक बाजार का अपना विशिष्ट महत्व है। उदाहरणस्वरूप, दिल्ली में हाल के वर्षों में पालम गाँव के निकट 'द्वारका' का विकास हुआ है। द्वारका तक मेट्रो रेल की सुविधा है। शनिवार के दिन द्वारका में सुनिश्चित स्थान पर साप्ताहिक बाजार का आयोजन होता है। साधारणतः शनिवार की शाम को अवकाश के समय विभिन्न दफ्तरों में काम करने वाले लोगों को साप्ताहिक बाजार में देखा जा सकता है। वे गाँव की हरी–हरी सब्जियाँ तथा अन्य सामान खरीदते हैं। यहां अनेक प्रकार की अपभोक्ता सामग्रियों की बिक्री होती है। साधारणतः व्यवस्थित बाजारों में गाँव की सब्जियों का अभाव रहता है। उपलब्ध होने पर भी ताजी सब्जियाँ नहीं मिल पाती हैं। देशी मिर्च–मसाले तथा सलाद की सामग्रियाँ भी सस्ती दरों पर द्वारका के ग्रामीण हाटों में मिल जाती हैं। इसी तरह 'शाहदरा' में भी साप्ताहिक बाजार का आयोजन होता है। परिवार में ग्रामीण हाटों की चर्चा होती है।

सूचना क्रांति, ग्रामीण समाज एवं आर्थिक विकास :–

जनसंचार रोजगार पैदा करने और गरीबी घटाने में योगदान दे सकती है। ये प्रौद्योगिकियाँ क्षेत्र एवं भौगोलिक स्थिति में रहकर आर्थिक उत्पादकता बढ़ाती है। उदाहरण के लिए ये ग्रामीण उत्पादनशीलता बढ़ा सकती है। ये प्रौद्योगिकियाँ स्थानीय लोगों और समुदायों के बीच समस्या–समाधान का लाभ परस्पर बाँटने में मदद करती है, उदाहरण के लिए, मौसम के रूख का विवरण एवं खेती के सर्वोत्तम तरीके विषयक व्यावहारिक जानकारी सुलभता प्रदान करना। संचार नेटवर्कों के माध्यम से बाजार सूचना की समयबद्ध सुलभता भी किसानों को उचित निर्णय लेने में मदद करती है जैसे कौन सी फसले बोयें और अपनी उपज कहाँ बेचे व आगते खरीदें। सूचनाए एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने व्यापार–प्रक्रिया दक्षता एवं उत्पादकता सुधारने में सक्षम किया। ये प्रौद्योगिकियाँ उदाहरण के लिए जनोपयोगी सेवा कम्पनियों को एक ई–ट्रेडिंग मंच प्रदान करती है, जो क्रेताओं एवं विक्रेताओं दोनों की अपनी प्रापण प्रक्रियाओं को सरल कर व तदानुसार लागते घटाकर मदद कर सकते है।

निष्कर्ष :-

सूचना क्रांति ने कुछ आर्थिक सहयोग विकास संगठन के सहस्थ देशों में व्यापार सृजन की ओर प्रवृत्त किया है। उदाहरण के लिए 1990–99 के दौरान जापान में सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा 20 लाख से भी अधिक नौकरियाँ पैदा की गयी। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में भी बेहतर रोजगार अवसर पैदा कर रही है, उन्नत श्रम बाजार एवं प्रत्यक्ष रोजगार दोनों के माध्यम से अभिकल्पित एक पार्टल, स्थानीय भाषाओं में स्थानीय वैबसाइटों पर रोजगार अवसर सूचना प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त बांग्ला देश, भारत जैसे देशों में स्थानीय दूर केन्द्रों की स्थापना ने हजारों स्थानीय महिलाओं एवं पुरूषों के लिए प्रत्यक्ष रोजगार को जन्म दिया है।

संदर्भ :-

1. सिंह योगेन्द्र, 1978, एसेस ऑन मोर्डनाईजेशन इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली।
2. सिंह योगेन्द्र, 1986, इंडियन सोशियोलॉजी : सोशल कन्डीशनिंग एण्ड इमरजिंग कनसर्न, विस्तार पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
3. सिंह योगेन्द्र, 1993, सोशल चेंज इन इंडिया : क्राइसिस एण्ड रेजिलेन्स, हर आनन्द पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. सिंह योगेन्द्र, 1997, सोशल स्ट्रेटिफिकेशन एण्ड चेंज इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली।
5. सिंह योगेन्द्र, 2000, कल्चर चेंज इन इंडिया : आइडेनटिटी एण्ड ग्लोबलाइजेशन, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
6. श्रीनिवास, एम0 एन0, 1987, द डोमिनान्ट कास्ट एण्ड अदर एसेस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
7. श्रीनिवास, एम0 एन0, 1994, द डोमिनान्ट कास्ट एण्ड अदर एसेस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली
8. श्रीनिवास, एम0 एन0, 1996, कास्ट : इट्स मोडर्न अवतार, विकिंग पेंग्विन, नई दिल्ली।
9. श्रीनिवास, एम0 एन0, 2002, सोशल चेंज इन मॉर्डन इंडिया, ओरियन्ट लॉग्मैन, नई दिल्ली।

ईमेल - anjalisingh.ktr1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 179-184

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मोहन राकेश के साहित्य में अनुभूतिजन्य संवेदना

डॉ. विनोद कुमार

सहायक आचार्य (हिन्दी), विद्या संबल योजना, राजकीय महाविद्यालय, श्रीकरणपुर।

सारांश :-

मोहन राकेश आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख रचनाकारों में गिने जाते हैं। उनके साहित्य में मानव मन की गहराइयों, अनुभूतियों, संवेदनाओं तथा जिज्ञासाओं का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण देखने को मिलता है। उन्होंने मनुष्य की आंतरिक पीड़ा, सामाजिक द्वंद्व, अकेलापन, संबंधों की टूटन एवं मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत सरल, सहज और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों, नाटकों एवं उपन्यासों में पात्रों के मानसिक द्वंद्व और उनकी अनुभूतियों का सजीव चित्र उभरकर सामने आता है। उनके साहित्य में प्रेम, विछोह, आत्मसंघर्ष, समाज की रूढ़ियों से टकराव और आत्म–सत्य की खोज जैसे विषय विशेष रूप से देखने को मिलते हैं।

मोहन राकेश के पात्र केवल समाज के प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि वे अपनी आत्मा की आवाज़ से जूझते हुए संवेदनशील मनुष्य हैं। उनके साहित्य में अनुभूति और संवेदना की विशेष उपस्थिति है, जो आधुनिक मनुष्य की जटिलताओं और उसके आंतरिक संघर्ष को सामने लाती है। उनकी प्रमुख रचनाएँ जैसे– आषाढ़ का एक दिन, लेखक की रोटी, अंधेरे बंद कमरे, आवाज की दीवारें – मानवीय संवेदनाओं की गहराई को दर्शाती हैं। उनके साहित्य में जीवन की वास्तविकता, स्वाभाविकता और मानसिक संघर्ष का अत्यंत यथार्थ चित्रण है।

बीज शब्द :- संवेदना, जटिलता, स्वानुभूति,, मानव संबंध, व्यक्तिगत खोज, परिवेश, मार्मिक, प्रासंगिक, त्रासदी, सृजन, वियोग, रोटी, चिट्ठी, सार्वजनीन, कालजयी।

भूमिका :-

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन विशिष्ट रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपने कथानकों के माध्यम से आधुनिक मानव जीवन की जटिल संवेदनाओं को गहराई से उकेरा। उनके नाटक न केवल रंगमंचीय कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, बल्कि मानवीय भावनाओं, अंतर्द्वंद्व और सामाजिक परिवर्तनों के संवेदनशील चित्रण के लिए भी जाने जाते हैं। प्रेम और कर्तव्य का अंतर्द्वंद्व 'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला पूर्ण नाटक है, जो महाकवि कालिदास के जीवन पर आधारित है। इस नाटक की संवेदना प्रेम, त्याग और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के बीच के संघर्ष में निहित है। कालिदास और उनकी प्रेमिका मल्लिका के बीच का संबंध इस नाटक का केंद्रीय तत्व है। कालिदास को जब सफलता और प्रेम के बीच चयन करना पड़ता है, तो उनकी दुविधा आधुनिक मानव की उस संवेदना को प्रतिबिंबित करती है, जो अपने सपनों और भावनात्मक बंधनों के बीच संतुलन खोजने में असमर्थ रहता है। मल्लिका का त्याग और उसकी प्रेम की अटूटता नाटक में एक मार्मिक

संवेदना उत्पन्न करती है, जो यह प्रश्न उठाती है कि क्या व्यक्तिगत सुख को सामाजिक कर्तव्य के लिए बलिदान करना उचित है। इस नाटक की संवेदना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बावजूद आधुनिक मनुष्य के भावनात्मक संकट से गहरे जुड़ी है।

आध्यात्मिक और भौतिक जीवन का संघर्ष :–

'लहरों के राजहंस' में मोहन राकेश ने बौद्धकाल की पृष्ठभूमि में मानव जीवन की सार्थकता और आध्यात्मिक खोज की संवेदना को प्रस्तुत किया है। नाटक का नायक नंद और उसकी पत्नी सुंदरी के बीच का तनाव भौतिक सुख और आध्यात्मिक शांति के बीच के द्वंद्व को उजागर करता है। नंद का बुद्ध के प्रति आकर्षण और सुंदरी का उससे प्रेम में बंधे रहने का आग्रह एक ऐसी संवेदना को जन्म देता है, जो जीवन के अर्थ की खोज और व्यक्तिगत संबंधों के बीच संतुलन की समस्या को दर्शाती है। इस नाटक की संवेदना गहरे दार्शनिक प्रश्नों से जुड़ी हैकृक्या सांसारिक जीवन त्यागने से सच्ची शांति मिलती है, या प्रेम और संबंध ही जीवन को सार्थक बनाते हैं? यह संवेदना आधुनिक मानव के अस्तित्ववादी संकट को प्रतिबिंबित करती है।

पारिवारिक विघटन और अधूरेपन की संवेदना :–

'आधे–अधूरे' मोहन राकेश का सबसे चर्चित नाटक है, जो शहरी मध्यवर्गीय परिवार के विघटन और व्यक्तिगत असंतोष की संवेदना को चित्रित करता है। नाटक में एक दंपति और उनके बच्चों के बीच का तनाव, संवादहीनता और अधूरेपन की भावना प्रमुख है। पति की असफलता, पत्नी का असंतोष और बच्चों की निराशा एक ऐसी संवेदना को जन्म देती है, जो आधुनिक जीवन की अकेलेपन और अलगाव की भावना को उजागर करती है। इस नाटक की संवेदना इस प्रश्न पर केंद्रित है कि क्या मानव अपने संबंधों और जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकता है, या अधूरापन उसकी नियति है। यह संवेदना शहरी जीवन की जटिलताओं और भावनात्मक शून्यता को प्रभावी ढंग से व्यक्त करती है।

संवेदना की विशेषताएँ :–

मोहन राकेश के नाटकों की संवेदना में कुछ समान तत्त्व देखे जा सकते हैं :–

अंतर्द्वंद्व – उनके पात्र हमेशा किसी न किसी दुविधा से जूझते हैं, जो उनकी आंतरिक और बाह्य दुनिया के बीच संघर्ष को दर्शाता है।

आधुनिकता – ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बावजूद, उनकी संवेदना समकालीन मानव की भावनाओं और समस्याओं से जुड़ी है।

स्त्री संवेदना – मल्लिका, सुंदरी और सावित्री जैसे पात्रों के माध्यम से नारी मन की गहराई और बलिदान की भावना को उभारा गया है।

रंगमंचीय प्रभाव – उनकी संवेदना केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि मंच पर जीवंत होने वाली भावनाओं से भी संनादति है। निष्कर्ष मोहन राकेश के नाटकों की संवेदना मानव जीवन की जटिलताओं, भावनात्मक गहराई और सामाजिक परिवर्तनों का सशक्त चित्रण करती है। 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रेम और कर्तव्य, 'लहरों के राजहंस' में आध्यात्मिक खोज और 'आधे–अधूरे' में पारिवारिक विघटन की संवेदना उनके नाटकों को कालजयी बनाती है। उनकी यह संवेदना न केवल हिंदी नाटक को एक नई दिशा देती है, बल्कि आधुनिक मानव की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्थिति को भी प्रभावी ढंग से व्यक्त करती है। इस प्रकार, मोहन राकेश के

नाटक संवेदना के स्तर पर हिंदी साहित्य और रंगमंच के लिए एक अनमोल योगदान हैं।

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के प्रमुख नाटककार और कथाकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में मानवीय अनुभवों को गहरी संवेदनशीलता और सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया। उनकी रचनाएँ, विशेष रूप से नाटक और कहानियाँ, आधुनिक जीवन की जटिलताओं, व्यक्तिगत संबंधों की उलझनों और मानव मन की गहराइयों को उजागर करती हैं। उनके साहित्य में मानवीय अनुभवों का चित्रण और उसका प्रभाव निम्नलिखित पहलुओं में देखा जा सकता है।

1. मानव संबंधों की जटिलता :-

मोहन राकेश की रचनाओं में मानव संबंधों की गहराई और उनमें निहित तनाव को बड़ी कुशलता से दर्शाया गया है। व्यक्तिगत अनुभवों के विषय के लिए मोहन राकेश ने कहा है कि ष्कई बार हम अखबारों में पढ़ते हैं कि अमुक प्रसिद्ध लेखक अपने लिए एक नए कथानक की खोज में अमरीका से हवाई द्वीप या सिंगापुर जा रहा है तो बहुत विचित्र–सा लगता है। अपने निजी वातावरण को छोड़कर जिसके साथ उसका घनिष्ठ संबंध है,वह बाहर के अपरिचित जीवन से कथानक क्यों खोजना चाहता है? जिन लोगों के हर शब्द और हर संकेत से वह परिचित है, उनका जीवन क्या उसे बिल्कुल कथानकहीन प्रतीत होता है? वास्तव में एक लेखक की यह प्रवृत्ति इसी बात का प्रमाण है कि एक ओर तो उसमें अपने जीवन के वातावरण को चित्रित करने का साहस नहीं है और दूसरी ओर वह शायद यह सोचता है कि दूर के लोगों के जीवन का जैसा–कैसा चित्रण कर और अपने पाठकों के सामने कुछ विचित्र और अद्‌भुत प्रस्तुत करके वह एक 'बेस्ट सेलर' का लेखक होने का श्रेय प्राप्त कर सकता है।"[1]

रचनाकार के रूप में उनका यह कथन स्पष्ट करता है कि अपने परिवेश में ही, अपने अनुभवों से ही जो लिखा जाता है वह ज्यादा मार्मिक और प्रासंगिक होता है। उनके प्रसिद्ध नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास और मल्लिका के बीच का प्रेम, सामाजिक दायित्वों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच संतुलन की त्रासदी को प्रस्तुत करता है। "मुझे बार–बार अनुभव होता कि मैं प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हटश आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज–रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ। मैं अपने को आश्वासन देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा। परंतु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे–धीरे खंडित होता गया, होता गया।"[2] यहाँ प्रेम एक ओर सृजन का स्रोत है, तो दूसरी ओर यह त्याग और वियोग का कारण भी बनता है। राकेश इस जटिलता को इतने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक स्वयं उस भावनात्मक द्वंद्व का हिस्सा बन जाता है।

2. आधुनिक जीवन की व्यथा :-

मोहन राकेश नई कहानी आंदोलन के प्रमुख लेखकों में से एक थे और उनके कथानक आधुनिक जीवन की एकाकीपन, अलगाव और संवेदनहीनता को प्रतिबिंबित करते हैं। अपने अंतिम और अधूरे रह गये नाटक 'पैर तले की जमीन' में भी मोहन राकेश ने अर्थप्रधान इस युग की मानसिकता और व्यथित मनोवृत्ति को झुनझुनवाला नामक पात्र के संवाद में दर्शाने का प्रयास किया है। "हां... मैं पैदा हुआ तो पहला मंत्र मेरे कान में फूंका गया

था कि दुनिया में बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर ही जी सकती है। और बड़े होने के साथ–साथ मैंने जाल बुनने सीखे। हर जाल में सैकड़ों मछलियों को उलझाया और खुश होता रहा। दूसरे लोग कहते थे पैसों के पेड़ नहीं लगते। पर मेरे लोग कहते थे, लगते हैं और खूब लगते हैं। मैंने पैसों के पेड़ लगाकर देखे... वे लगे, फल–फूले... जब पेड़ फूल–फल गए तो मैंने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, राजनीति–––सबको अपने मूल्य दिए... मूल्य (हंसता है)। सीधे–सीधे कहूं तो सबको अपना व्यापार बनाया। इसका दाम इतना। उसका दाम उतना। हर चीज, हर बात का प्रतिनिधि में था।.....पर आज इस वक्त मैं देख रहा हूं कि मैं खुद भी एक मछली हूं पानी में तैरती मछली नहीं, अपने ही जाल में फंस कर तड़पती, अपने ही डिब्बे में बंद।"[3]

उनकी कहानी 'मिस पाल' में एक मध्यमवर्गीय महिला के जीवन की साधारण घटनाओं के माध्यम से उसका आंतरिक अकेलापन और असुरक्षा को दर्शाया गया है। "यह लोग इतने ओछे और बेईमान हैं।" वह कहा करती, "इतनी छोटी और कमीनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हर वक्त दम घुटता रहता है। जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी–छोटी बातों पर एक–दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे–छोटे स्वार्थ के लिए एक–दूसरे को कुचलने की कोशिश करते रहते हैं।"[4] यह चित्रण पाठक को आधुनिक समाज में व्यक्तिगत पहचान के संकट पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

3. संवेदनशीलता और मनोविश्लेषण :–

राकेश के पात्र अक्सर अपने भीतर की भावनाओं और विचारों से जूझते नजर आते हैं। उनके नाटक आधे अधूरे में सावित्री और महेंद्र के बीच का वैवाहिक संबंध केवल बाहरी असफलता की कहानी नहीं है, बल्कि यह दोनों पात्रों के भीतर की असंतुष्टि, अपेक्षाओं और सपनों के टूटने की गहरी पड़ताल करता है। महेंद्र का यह कथन इस बात की पुष्टि करता प्रतीत होता है– "कितने साल हो चुके हैं मुझे जिंदगी का भार ढोते? उनमें से कितने साल बीते हैं मेरे इस परिवार की देख–रेख करते? और उसे सब के बाद में आज पहुंचा कहां हूं? यहां तक कि जिसे देखो वही मुझसे उलटे ढंग से बात करता है। जिसे देखो वही मुझसे बदतमीजी से पेश आता है। मैं जानना चाहता हूं कि मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में कि जो, जब, जिस वजह से जो भी कह दे, मैं चुपचाप सुन लिया करूं। हर वक्त की दुत्कार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है यहां मेरी इतने साल की?"[5]

इसी प्रकार "आर्द्रा" कहानी की बचन, दूसरे शहर में रहने वाले अपने बेटे बिन्नी की चिंता में डूबी रहती है। उसकी यह संवेदनशीलता प्रत्येक माता–पिता की मनः स्थिति का चित्र साझा करती है। यह प्रसंग यहां उल्लेखनीय है "बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गयी। मन ताने–बाने बुनने लगा। बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? वहाँ अँधेरे घर में इस वक्त वह अकेला सोया होगा। रोटी का जाने उसने क्या प्रबन्ध किया है? उसने चलते वक्त उससे पूछा भी नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहाँ से रोटी खाएगा? उसके पास रहते वह तन–बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी लिख देता, तो कुछ तो तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी लिखने की याद भी आएगी?"[6] यहाँ मानवीय अनुभवों का चित्रण इतना जीवंत और यथार्थवादी है कि यह पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है।

4. प्रभाव और प्रासंगिकता :–

मोहन राकेश के सभी नाटक तथा जितनी भी कहानियाँ हैं, वे आज भी किसी आईने का काम कर रही

हैं, जिनमें पाठक न केवल स्वयं के अपितु परिवेश और समाज में हो रहे बदलावों की पड़ताल कर सकता है। इनकी रचनाओं में भावनात्मकता, संघर्ष व मानसिक द्वंद्वों का अद्‌भुत मिश्रण मिलता है। मोहन राकेश का साहित्य इसलिए प्रभावशाली है क्योंकि वह सामान्य जीवन की घटनाओं में असामान्य गहराई खोजते हैं। इनके साहित्य में प्रस्तुत सामाजिक, पारिवारिक जीवन का यथार्थ और अनुभूतियाँ सार्वजनीन एवं कालजयी हैं और उनकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी। उनकी भाषा सहज, संक्षिप्त और भावप्रधान होती है, जो पाठक को पात्रों के अनुभवों से जोड़ती है। उनकी रचनाएँ आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि वे मानव जीवन के शाश्वत प्रश्नों–प्रेम, त्याग, पहचान और अर्थ की खोज–से जूझती हैं।

निष्कर्ष :-

मोहन राकेश हिन्दी साहित्य के ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने मनुष्य के भीतर चल रहे मानसिक और भावनात्मक संघर्ष को अत्यंत सहजता, सरलता और गहराई से अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। उनके साहित्य में अनुभूति, जिज्ञासा एवं संवेदना की उपस्थिति अत्यंत प्रभावशाली ढंग से देखने को मिलती है। उनकी रचनाएँ मानवीय जीवन के यथार्थ से जुड़ी हैं, जहाँ व्यक्ति के भीतरी मनोविज्ञान, उसकी अनुभूतियों, उसकी इच्छाओं, कुंठाओं, संघर्षों और अकेलेपन को अभिव्यक्ति मिली है। विशेष रूप से उनके पात्र समाज की परंपराओं, बनावटी रिश्तों, रूढ़ियों और स्वार्थ से जूझते दिखाई देते हैं।

मोहन राकेश के साहित्य में अनुभूति केवल भावनाओं की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि वह एक गहरे आत्मबोध का अनुभव है। जिज्ञासा उनके पात्रों की सोचने–समझने की शक्ति को दिशा देती है, जहाँ वे अपने जीवन की सच्चाइयों, संबंधों की वास्तविकता और स्वयं की पहचान को लेकर चिंतन करते हैं। संवेदना उनके साहित्य की आत्मा है, जो पात्रों के अंदर व्याप्त असहायता, टूटन, अकेलापन, असंतोष और संघर्ष की गहराइयों को व्यक्त करती है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से यह दर्शाया है कि मनुष्य का आंतरिक जीवन जितना सुंदर है, उतना ही जटिल और संवेदनशील भी है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ – आषाढ़ का एक दिन–प्रेम, त्याग, असमंजस की अनुभूति, लेखक की रोटी–एक कलाकार की संवेदनशीलता और संघर्ष, अंधेरे बंद कमरे–स्त्री–पुरुष संबंधों की जिज्ञासा और यथार्थ, आवाज की दीवारें–मनुष्य की संवेदनाओं की गूंज। इन सभी रचनाओं में व्यक्ति के भीतर चलने वाले मानसिक उतार–चढ़ाव, अकेलेपन, टूटे हुए सपनों, बिखरे हुए संबंधों और अंतर्द्वंद्वों की अनुभूति को बारीकी से चित्रित किया गया है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि– "मोहन राकेश के साहित्य में अनुभूति, जिज्ञासा और संवेदना न केवल उनके पात्रों की विशेषता है, बल्कि उनका सम्पूर्ण साहित्य इन तत्वों के बिना अधूरा है। उनका साहित्य मानव मन की गहराइयों की सच्ची अभिव्यक्ति है, जिसमें जीवन की कड़वी सच्चाइयाँ, टूटती–बनती संवेदनाएँ, खोजती जिज्ञासाएँ और आत्म–संघर्ष की अनुभूतियाँ जीवन के यथार्थ को सम्पूर्णता प्रदान करती हैं। यही विशेषता मोहन राकेश को अन्य साहित्यकारों से अलग और विशिष्ट बनाती है।"

संदर्भ :-

1. मोहन राकेश संचयन –आज की कहानी के प्रेरणा स्रोत, संपा. रवीन्द्र कालिया, प्रका.–भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्र. सं.– 2010, पृ. सं.–304

2. वही, आषाढ़ का एक दिन, पृ सं–252–253
3. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, संपा. नेमिचन्द्र जैन, प्रका. राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली, 1997 पृ. सं.–432
4. मोहन राकेश संचयन –मिस पाल, संपा.रवीन्द्र कालिया, प्रकार.–भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्र. सं.– 2010, पृ. सं.–17
5. आधे–अधूरे, मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ सं –57
6. मोहन राकेश संचयन –आर्द्रा, संपा. रवीन्द्र कालिया, प्रकार.–भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्र. सं.– 2010, पृ. सं.–53

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 185-196

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी के उपन्यासों में वर्णित विमुक्त जाति विषयक धार्मिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ

मिनाक्षी झा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार।

धार्मिक संदर्भ :-

हमारा देश गंगा जमुनी तहजीब के लिए पूरे विश्व में विख्यात है। यहाँ सभी धर्म के लोग अपने रीति–रिवाज, तौर–तरीके के साथ जीवन यापन करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र हैं। यहाँ सभी धर्मों को समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। यही वजह है कि धर्म–निरपेक्ष भारत अपने लोकतंत्र को सुदृढ़ता प्रदान करता है। प्रत्येक गाँव, शहर, कस्बे में भिन्न–भिन्न धर्म और जाति के लोग आपसी सौहार्द के साथ निवास करते हैं। बहुदेववादी धर्म के लोगों की संख्या एकेश्वरवादी धर्म के लोगों की अपेक्षा अधिक है फिर भी यहाँ हर धर्म को बराबर का मान सम्मान मिलता है। भारत में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी धर्म के अंतर्गत कई जातियाँ और इनकी उपजातियाँ हैं जो अपने–अपने संप्रदाय का प्रतिनिधित्व भी करती है। जातिगत भिन्नता प्रत्येक क्षेत्र तथा राज्य में देखी जा सकती है, जहाँ कई प्रकार की जाति, जनजाति अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ पाई जाती है, इसी प्रकार भारत के प्रायः हर क्षेत्र में अलग–अलग नाम से जानी जाती है विमुक्त जाति। कहीं इन्हें खानाबदोश समुदाय कहकर सम्बोधित किया जाता है तो कहीं घुमन्तू जनजाति या यायावर से लेकर बंजारा तक कहा जाता है।

यदि विमुक्त जाति की धार्मिक स्थिति को देखा जाए तो हम पाते हैं कि ये हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों को मानते हैं। शिवप्रसाद सिंह कृत 'शैलूष' उपन्यास विंध्य क्षेत्र के नट विमुक्त जाति की कथा को वर्णित करता हैं। जिसमें कथा की एक पात्र सावित्री यानि सब्बो सिपाही से कहती है ''भइया, हम सब बनाफर राजपूत हैं। हमारे कबीलों में हिंदू भी होते हैं, मुसलमान भी। हम दुर्गा–काली को भी पूजते हैं और बहराइज के पीर मखूदम को भी।''[1] प्रायः प्रत्येक जगह के 'नट' समुदाय हिन्दू धर्म को तो मानते ही हैं तो कुछ इस्लाम धर्म का भी अनुशरण करते हैं। डॉ परशुराम शुक्ल भी अपनी पुस्तक 'भारत की विमुक्त जातियाँ' में लिखते हैं, ''सभी मुसलमान नट पहले हिन्दू ही थे। ये मुसलमान शासनकाल में जजिया से बचने के लिए मुसलमान हो गए। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह कि हिन्दुओं के समान मुसलमान नटों के अपने गोत्र होते हैं। इनके गोत्र इस प्रकार हैं – चिचरिया, दामरिया, पुरबिया, धोंथाबलकी, करीमकी, कलासिया, खूजां, उकूरकुटा और बुंदिया।''[2]

नटों की भांति कंजर विमुक्त जाति भी हिन्दू धर्म के साथ–साथ कुछ कबीले इस्लाम धर्म को मानते हैं।

इनके अलावे मैत्रीय पुष्पा जी रचित 'अल्मा कूबतरी' उपन्यास में वर्णित 'कबूतरा' विमुक्त जाति, शरद सिंह कृत उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' के केन्द्र में बेड़िया विमुक्त जाति हों या प्रभा कुमारी द्वारा रचित 'गुलगुलिया' उपन्यास में गुलगुलिया विमुक्त जाति, सभी के सभी हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। हिन्दू देवी–देवताओं के पूजन करने के साथ–साथ पर्व–त्योहार, विवाह, जन्म–मृत्यु संस्कार भी हिन्दुओं की भांति ही, ये सभी खानाबदोश समुदाय मनाते हैं। सभी घुमन्तू या खानाबदोश समुदाय वह चाहे किसी भी धर्म का अनुशरण करें, सभी अपने देवी–देवताओं, इष्ट के प्रति गहन श्रद्धा रखते हैं। अपने ईश्वर के रूठना तथा प्रसन्नता का ख्याल इन्हें हमेशा रहता है।

अब इसी क्रम में उपन्यासों में वर्णित विमुक्त जातियों के देवी–देवताओं, त्याहारों तथा इनके जीवन में व्याप्त धार्मिक अंधविश्वासों को देखा जा सकता है।

देवी–देवता :-

कहने के लिए तो ईश्वर एक हैं, किन्तु ईश्वर की सत्ता को मानने वालों ने अपने धर्म–जाति के अनुसार ईश्वर का नाम और भक्ति के तरीकों को अलग–अलग कर दिया है। समाज का हर वर्ग, समुदाय अपने ईष्ट की उपासना बड़ी श्रद्धा और विश्वास से करता है, भले ही उनका तौर–तरीका एक–दूसरे से भिन्न क्यों न हो। हमारे समाज के मुख्यधारा से अलग जीवन–यापन करने वाले विमुक्त–जाति के लोगों का जीवन भी समाज की इन्हीं प्रथाओं के बीच चलता है। ये भी ईश्वर को अपनी श्रद्धा निवेदन करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान जप–तप करते हैं।

शिव प्रसाद सिंह कृत 'शैलूष' उपन्यास में वर्णित 'नट' खानाबदोश जाति अपनी कुलदेवी 'नथिया बनजारिन और गुरूमान बाबा को अपना सब कुछ मानते हैं। किसी भी विशेष उपलक्ष्य पर इनकी पूजा करने का विधान इस नट समुदाय में है। उपन्यास की नायिका सब्बो मौसी अपने कबीले में कहती है कि अपनी परती जमीन की लड़ाई की शुरूआत हुई है। इसी सुअवसर पर सभी अपनी कुलदेवी नथिया बनजारिन और गुरूमान की पूजा करो, इन पर मिठाई चढ़ाकर प्रसाद के रूप में ग्रहण करो। सभी नटों ने जय माँ नथिया का जयकारा लगाया। लल्लू गुरू ने एक नारियल को लाल कपड़ा में लपेट दिया और हवन कुंड तैयार किया फिर पूरे विधान से नथिया देवी की पूजा की गई तो वहीं इस्लाम को मानने वाले नटों ने हलालिया वीर और शेख सहद की पूजा की।

वर्तमान समय में नटों का जीवन भी अन्य समुदायों की तरह बदल रहा है वे जिस क्षेत्र में निवास करते हैं उसी क्षेत्र के देवी–देवताओं को पूजना उनकी दिनचर्या हो रही है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में अपना जीवन–यापन करने वाली 'कबूतरा' विमुक्त जाति पर आधारित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास के आधार पर यदि कबूतरा जनजाति को देखें तो पाते हैं कि यह जनजाति हिन्दू धर्म के अनुयायी ही होते हैं। ईश्वर को अपना सब कुछ मानना इनका ईश्वर के प्रति अपना प्रेम है। 'अल्मा' सूरजभान के कैद में रहते हुए मन ही मन ईश्वर को याद करती है और कहती है कि ईश्वर के स्मरण से मन को शांति मिलती है, आशा जगती है कि मेरा प्रेमी राणा एक दिन मेरे पास अवश्य आएगा। ''अब हम ईश्वर के सहारे हैं और वह हमारी रक्षा में हाथ उठाए हुए हैं, क्योंकि दुनिया में अपना दूसरा सहायक नहीं है।''[3]

सभ्य समाज गांव–कस्बों से दूर रहने के कारण खानाबदोशों को अधिकांश लोग घृणा की नजरों से देखते

हैं। एक बार राणा के पिता व्रत रखकर मंदिर पूजा करने के लिए पहुँच गया, पूजा करने के क्रम में उसने मंदिर का घंटा भी बजा दिया। यह खबर मिलते ही गांव के कथित सभ्य समाज के लोगों ने मंदिर को गंगाजल से धुलवाया। पुजारी को गंगा स्नान करवाया गया। इस तरह का अपमान किसी भी व्यक्ति या समुदाय को विद्रोही बनने को विवश करता है। धर्म के नाम पर ऊँच–नीच का पाठ पढ़ाना समाज को अंधकार की ओर ले जाता है, जहाँ विकास का नितांत आभाव होता है। धर्म के नाम पर समाज में भेदभाव पूर्ण रवैया अपनाना सामाजिक कुरीति है।

खानाबदोश बेड़िया समुदाय बुंदेलखण्ड क्षेत्र तथा सागर जिला के आसपास के गांवों में निवास करते हैं जिनके विषय में शरद सिंह लिखती भी हैं– ''ये लोग धार्मिक ममाले में निर्बध थे। बेड़िया हिन्दू अथवा मुसलमान कुछ भी हो सकते हैं। ये जिन लोगों के बीच रहते प्रायः उन्हीं के धर्म अपना लेते हैं। इसीलिए तो कुछ बेड़िया द्विधर्मी, कुछ कबीर पंथी या सिख हुए तो कुछ पंचपीर समुदाय के हुए। वैसे मध्य प्रदेश में बसे बेड़ियों ने हिन्दू धर्म को अपनाया।''[4] इन हिन्दू धर्म के बेड़ियाा समुदाय को केन्द्र में रखकर लेखिका ने 'पिछले पन्ने की औरते' उपन्यास में दिखलाया है कि बेड़िया समुदाय देवी माँ की पूजा–अर्चना करते हैं।

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' उपन्यास में वर्णित कंजर विमुक्त जाति को लेखक भारत की सबसे प्राचीन खानाबदोश जाति मानते हैं। जिनके कुल देवी–देवता माँ नलिन्या तथा मानागुरू हैं। आलोच्य उपन्यास की कथा नायिका रूक्मिणी जब अपने राजनैतिक कार्य के लिए कमला सदन से निकलती है तो मन ही मन अपने कुल देवी–देवता माँ नलिन्या तथा मानगुरू को याद करती है।

कंजर समुदाय जब धीरे–धीरे किसी एक स्थान पर बसने लगे हैं तो कुछ कबीला अभी भी यायावरी करता है। यह कबीला जिस क्षेत्र में अपना डेरा डालता है वहीं के धर्म को अपनाकर गुजर–बसर करता है। कभी हिन्दू बहुल इलाके में डेरा डाले तो उनके ही तरह पर्व–त्योहार उत्सव मना लेते हैं तो कभी मुस्लिम इलाके में डेरा जमाए तो उन्हीं के ईश्वर को पूजने लगते हैं।

बिहार राज्य के कई जिलों में भटकने वाले 'गुलगुलिया' घुमन्तू जाति से संबंधित 'गुलगुलिया' उपन्यास पर गौर करने पर पता चलता है कि यह समुदाय अधिकांश हिन्दू देवी–देवताओं को ही पूजते हैं। इसके अलावी नैनाजोगिन नामक देवी की उपासना भी इनके संस्कार में शामिल है। आलोच्य उपन्यास की एक पात्र जघनी बताती है कि नैनाजोगिन हमारी कुलदेवी है। इनके पूजा से दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जिसके कारण हमें रोग–व्याधि का कोई डर नहीं होता है और असमय मृत्यु का खतरा भी टल जाता है। नैनाजोगिन को माँ कामाख्या देवी का आशीर्वाद प्राप्त है और वही हमारी रक्षा करती हैं। यही गुलगुलिया कबीला बिहार के पीरपैंती में अपना डेरा डालता है तो वहाँ की वनदेवी 'रक्सी मईया' की पूजा बड़े तन–मन से करता है। सरदार की पत्नी झुनकिया अपने बच्चें के बीमार होन पर 'रक्सी स्थान' जाकर पेड़ में ईट बांधकर जल्द स्वस्थ होने की मन्नत मांगती है। इसे भक्ति कहा जाए या अंधविश्वास किन्तु मनुष्य को यही आशा और उम्मीद जीने का सहास प्रदान करता है। भक्ति के द्वारा प्रकृति का संरक्षण भी हो जाता है। प्रकृति संरक्षण जनजातियों के जीवन का अभिन्न अंग है। प्रायः सभी विमुक्त जातियों में सभ्य समाज की भांति ही ईश्वर पर विश्वास की परम्परा है। इनके तौर–तरीके कथित सभ्य समाज से अलग जरूर हो सकते हैं किन्तु श्रद्धा और विश्वास में कोई कमी नहीं होती है। यह समाज भी हिन्दू देवी–देवताओं के प्रभाव से धीरे–धीरे मूर्त्ति–पूजा की ओर अग्रसर हो रहा है।

पर्व–त्योहार :–

मानव जीवन में उल्लास और नवसंचरण के लिए ही पर्व–त्योहार का आगमन होता है। जिसके माध्यम से सामाजिक एकता तथा बंधुत्व का भी परस्पर मिलन होता है। समाज का हर वर्ग, हर तबका त्योहार की खुशियों में अपना हर दुख–दर्द भूलकर शामिल हो जाता है।

विमुक्त जातियों का जीवन भी आम सामाजिक मनुष्यों की तरह चुनौतियों से भरा होता है तथा इन्हें भी समय–समय पर तमाम चुनौतियों से निपटने के लिए जीवन में हर्षोल्लास की आवश्यकता होती है। कथित सभ्य समाज का विमुक्त जातियों पर थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ने से ये भी होली, दिवाली जैसे पर्व का आयोजन करने लगे हैं। बदलते परिवेश के साथ–साथ आधुनिकता का समावेश इनके रहन–सहन और त्योहारों में भी देखा जा सकता है। भले ही इन्हें दिवाली, होली मनाने की पीछे की पौराणिक कथा ज्ञात न हो किन्तु ये उत्सवों को मनाने में भरपूर जोश रखते हैं।

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में शरद सिंह लिखती है कि बेड़िया समुदाय वसंत पंचमी के दिन ग्राम करीला में बने एक देवी मंदिर में विशेष पूजा–अर्चना करते हैं। यह माहौल पूर्णतः किसी पर्व के मेले जैसा होता है। जिसमें बेड़नियां अपने साथी, प्रेमी या सोहबातियों के साथ पूरी रात 'राई' लोक नृत्य करती हैं। क्षण भर के लिए ही सही ये स्त्रियां अपने जीवन के तमाम यातनाओं को भूलकर खुलकर जीती हैं।

'गुलगुलिया' उपन्यास में वर्णित गुलगुलिया विमुक्त जाति कार्तिक अमावस्या के गहनतम रात्रि में अपना विशेष अनुष्ठान करती हैं। जघनी और और मघनी गंगा स्थान करने जाती हैं। बाजार से धूप–दीप, नैवेद्य, पंचमेवा, अगरबत्ती लाकर पूजा की तैयारी करती हैं।

आज आधुनिकता के इस दौर में भी विमुक्त जाति अपनी सभ्यता–संस्कृति को सहेजने का कार्य बखूबी कर रहे हैं। विज्ञान और तकनीक के इस युग में अपनी परम्पराओं को लेकर चलने वाले घुमन्तू समुदाय सभ्य समाज के संपर्क में आने से प्रायः हर तीज त्योहार को बहुत उत्सव से मनाते हैं।

अंधविश्वास :–

अशिक्षा को अंधविश्वास का जड़ माना जाता है। आज समाज का हर वह तबका अंधविश्वास के गिरफ्त में है जहाँ शिक्षा की रौशनी नहीं पहुँच पाई है। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा का दंश झेल रही विमुक्त जातियों में भी अंधविश्वास का काफी बोल–बाला है। जादू–टोना, भूत–प्रेत, जंत्र–मंत्र के सहारे इनकी पूरी जिन्दगी टिकी रहती है। बीमार होने पर खानाबदोश समुदाय डॉक्टर के बजाय तांत्रिक, ओझा के पास जाना ज्यादा सही मानते हैं, क्योंकि इन्हें रोग से ज्यादा भूत–प्रेत, नजर–टोटका का प्रकोप लगता है, जिसे वैद्य हकीम नहीं वरण तांत्रिक ओझा ही ठीक कर सकते हैं। कई बार इसी अंधविश्वास के चक्कर में समुचित इलाज़ न हो पाने के कारण मरीज़ की मृत्यु भी हो जाती है।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'कब तक पुकारूं' में करनट विमुक्त जाति में व्याप्त अंधविश्वास को चित्रित किया है। उपन्यास में 'चंदन' एक ऐसा अंधविश्वासी तथा भूत–प्रेत में विश्वास करने वाला पात्र है जो शराब पीकर शमशान जाता है, बलि देता तथा मरघट में औरतों को नग्न करके ले जाता है। शराब पिलाकर उनके साथ दुष्कर्म भी करता है। ये कुकर्म करके उसे अपने भीतर अलौकिक शक्ति की अनुभूति होती है इसलिए तो वह सुखराम को भी अपने कार्य सिद्धि के लिए इसी प्रकार के कुकर्म करने की सलाह भी देता है।

आलोच्य उपन्यास में करनटों का अंधविश्वास यहीं पर समाप्त नहीं होता है, बल्कि करनट कबीले से दूर स्थिति अधूरा किला में ठाकुरों की मृत आत्मा होने का दावा भी सुखराम के अलावा अन्य करनट भी करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'कबूतरा जनजाति' के अंधविश्वास को अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में बखूबी दिखलाया है। जहाँ स्त्रियों की सतीत्व की परीक्षा जल–समाधि द्वारा ली जाती है। उपन्यास की एक पात्र भूरी भी इसी अंधविश्वास की शिकार होती है। उसे भी अपने सतीत्व के लिए जल परीक्षा से गुजरना होता है। ''पुराने लोग गहरे तालाब के किनारे जुड़ते हैं, रात के समय। जल–परीक्षा लेने वाला आदमी ताल की दूसरी ओर पत्थर फेकेगें। जहाँ पत्थर गिरे, वहाँ लाल कपड़े के रूप में औरत की जिंदगी को तब तक पानी में डूबा रहना पड़ेगा जब तक कि सामने के छोर पर तैनात आदमी जल परीक्षक को वह लाल उठाकर न दे दें। उतनी दूर आना और जाना, सांसों से सांसों तक की दूरी जिंदगी और मौत का दांव। प्राणों को डूबाकर भी स्त्री बच जाए तो उसका भाग्य, उसकी पवित्रता का सबूत है।''[5]

उपन्यासकार ने इस तरह के अंधविश्वास समाज के समक्ष न केवल जनजातियों में अज्ञानता को दर्शाया है वरन् इनके समाज में स्त्रियों की दुर्दशा को भी जाहिर किया है। जहाँ की स्त्रियों के चरित्र को पूरे समाज के समक्ष तौला जाता है, वह समाज भला प्रगति कैसे कर सकता है? इन समाजों में जागरूकता का नितांत अभाव होने के कारण किसी भी बीमारी को भूत–प्रेत का साया मानकर मरीज पर तरह–तरह के अजीबोगरीब नुस्खे अपनाकर इलाज करना इनके अंधविश्वास को दिखलाता है। कबूतरा 'राणा' भी इसी ओझा–गुणी के कारण स्वस्थ नहीं हो पाता है। 'राणा' के बीमार होने पर उसकी माँ कबीले के ओझा गुनियां को बुलाती है। चौका लिपा जाता है, पान के पत्ते, बेर के पत्ते और गुड़ के साथ बकरी के खून से 'वीर देव' की पूजा कराई जाती है। ओझा जलते आग में खून का बूंद टपकाता गया और कुछ मंत्र पढ़कर आग में मिर्च और तेल डालता गया। इतना कुछ उपाय करने पर भी राणा स्वस्थ नहीं हो पाया। कबीले का तंत्र–मंत्र काम नहीं आया।

इस प्रकार का अंधविश्वास विमुक्त जातियों के अलावे हमारे कथित सभ्य समाज में भी व्याप्त है। जिसके चपेट में आए दिन न जाने कितने मासूम जान गंवा रहे हैं।

सांस्कृतिक संदर्भ :-

हमारा देश अपनी सभ्यता–संस्कृति के लिए सम्पूर्ण विश्व में जाना जाता है। यहाँ हर मज़हब के लोग अपनी सभ्यता–संस्कृति के साथ जीवन–यापन करने के लिए स्वतंत्र हैं। अनेकता में एकता हमारे देश का लोकतांत्रिक सौन्दर्य है। यदि देखा जाए तो संस्कृति हमारे पूर्वजों से प्राप्त अमूल्य धरोहर है जिसे हम अपने अनुसार ढाल कर अपनी उन्नति करते हैं और फिर अपने बाद की पीढ़ी को अपनी संस्कृति सौंप कर हम वर्षों के लिए निश्चिंत हो जाते हैं। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।''[6]

प्रत्येक समाज की अपनी अलग संस्कृति होती है। समाज के बिना संस्कृति की कल्पना असंभव है। हमारे ही समाज के मुख्यधारा से अलग रहने वाले विमुक्त जातियों की भी अपनी अनोखी सभ्यता–संस्कृति है, जिन्हें यह अभाव की स्थिति में भी संरक्षित रख रहे हैं। जन्म से लेकर विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार की परम्पराओं का निर्वहन करना ये अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। खानाबदोश जनजातियों की वेशभूषा, खानपान, लोक गीत, नृत्य

काफी मनोहारी होता है। हिन्दू धर्म के मान्यातानुसार जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों को महत्व दिया गया है। समाज के सभी वर्ग के लोग इन संस्कारों– गर्भाधारण संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार, जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चूड़ाकर्म संस्कार, विधारंभ संस्कार, कर्णछेद संस्कार, यज्ञोपवती संस्कार, वेदरांभ संस्कार, केशांत संस्कार, समावर्तन, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार, से गुजरते हैं। इन सभी संस्कारों में भी ये तीन संस्कारों को यानि जन्म, विवाह तथा मृत्यु संस्कार को प्रमुख माना गया है। विमुक्त जातियों में भी उपर्युक्त तीन संस्कार ही देखते जा सकते हैं।

जन्म संस्कार :-

संसार का शाश्वत नियम है, हर आने वाले को एक निश्चित समय पर जाना होता है। ठीक उसी प्रकार जीवन–चक्र भी अपने गति से चलते हुए पूर्ण–विराम की ओर बढ़ता है। जन्म लेना प्रत्येक प्राणी के जीवन आरंभ की प्रक्रिया मानी जाती है। प्रत्येक समाज में शिशु के जन्म लेने पर तरह–तरह की परम्पराओं के तहत रीति–रिवाज, उत्सव मनाने का प्रचलन होता है। उसी प्रकार प्रत्येक विमुक्त जातियों में भी जन्म संबंधी अपने कुछ संस्कार होते हैं। जिसमें जच्चा–बच्चा को विशेष देखरेख तथा विधि–विधान के अनुसार रखा जाता है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में 'कदमबाई' के पुत्र 'राणा' के जन्म के बाद कबीले के कबूतरा जनजाति की स्त्रियाँ पूरे विधि–विधान के साथ डेरे के आंगन में आटे का चौक बनाती हैं तथा सोहर गाकर हर्ष प्रकट करती हैं तो वहीं कबीले का एक वृद्ध मलिया काका पंडित के वेश में उस आटे के चौक पर एक लोटा पानी, बेर के कुछ ताजे पत्ते, गुड़, कलावा, सुगंधित अगरबत्ती जलाकर शिशु राणा के पास कुनबी कथा पढ़ते हैं। कबूतरा विमुक्त जाति में ऐसी मान्यता है कि जन्म लेने वाले शिशु के कान में कुनबी कथा पढ़ने से वह ओजस्वी तथा बहादुर बनता है। इसलिए प्रत्येक नवजात शिशु को यह कथा सुनाई जाती है। शिशु के नामकरण में पत्रा पंचांग देखने का नियम कबूतराओं में नहीं है। कबीले का कोई भी वृद्ध व्यक्ति बच्चे का नाम रख सकता है। मलिया काका ने भी कदमबाई के पुत्र का नाम रखा 'राणा प्रताप' मलिया नाम रखने के पश्चात कहता भी है ''हमने तो शुरू से सोच लिया था कि कदमबाई के बेटी होगी तो नाम धरेंगे पद्मिनी और बेटा होगा तो नाम होगा राणाप्रताप।''[7] मलिया का सपना पूरा हुआ था उसके साथ ही पूरा कबीला खुश था।

विवाह संबंधी संस्कार :-

समाज के विभिन्न समुदायों की भांति विमुक्त जातियों में भी विवाह एक अनिवार्य दस्तूर है और इसके संस्कार भी महत्वपूर्ण हैं।

रांगेय राघव द्वारा रचित 'कब तक पुकारूं' उपन्यास में करनट विमुक्त जाति की वैवाहिक स्थिति को देखने पर पता चलता है कि यहाँ यानि की करनट समाज में एक से अधिक साथी के साथ शारीरिक संबंध रखना आम बात है। स्त्रियाँ खुलेआम प्रणय लीलाएँ करती हैं। 'सुखराम' करनट अपनी पत्नी प्यारी से कहता है – ''प्यारी तू है क्या आखिर? नटिनी ही न? और सो भी करनटनी ! हरजाई ! अपने मरद के रहते, दूसरे के घर पर रखैल बनकर बैठी है।''[8] यह कथन सुखराम ने क्षोभवश नहीं वरण प्रेमवश प्यारी को कहा जिससे कि पति पत्नी के प्रेम में कोई तीसरा व्यक्ति अपना स्थान सुनिश्चित न कर सके। करनट सुखराम और प्यारी का विवाह पुरोहित द्वारा संपन्न कराया जाता है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबूतरा जनजाति के विवाह संस्कार को भी उपन्यासकार ने रोचकता से

चित्रित किया है। कबूतराओं में सुयोग्य वर उन्हें माना जाता है जो चोरी–डकैती करने, शराब पीने, कत्ल करने में माहिर हों। ये सभी गुण उपन्यास के एक पात्र जंगलिया में था जो महज पंद्रह वर्ष का था। कदम के पिता ने अपनी रूपवती पुत्री कदमबाई का विवाह नामी चोर जंगलिया से तय किया। इस विवाह में दहेज के नाम पर वधु पक्ष से कोई रकम नहीं ली जाती है न ही बेटे वालों ने लड़की वालों को दहेज दिया साथ ही गोश्त और दारू की दावत पूरे कबीले में दी गई। बारात पूरे पंद्रह दिन लड़की वालों के यहाँ रही, खूब खाया–पिया और अपने रिवाज के मुताबिक रोज खूब लड़े। डॉ0 परशुराम शुक्ल भी 'भारत की विमुक्त जातियां' में लिखते हैं कि ''झांसी जनपद में पाई जाने वाली कबूतरा पूर्व अपराधी जाति के सदस्य सगाई के समय एक काला मुर्गा काटकर उसपर शराब की बोतल उलट देते हैं। इसके बाद सगाई तोड़ा नहीं जा सकता है, केवल वर या कन्या की मृत्यु के बाद ही यह सगाई टूट सकती है।''[9]

जंगलिया के विवाह के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा जी कबूतरा विमुक्त जाति में व्याप्त बाल विवाह के साथ–साथ दहेज मुक्त विवाह को भी समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'रेत' में कंजर समाज में दहेज की उल्टी परम्परा को दिखलाया है जहाँ वर पक्ष ही कन्या पक्ष को दहेज की रकम देते हैं। उपन्यास की प्रमुख पात्र कमला बुआ अपने नाती के विवाह में कन्या पक्ष को दहेज की रकम देती है और वैद्यजी से व्यंग्य के लहजे में कहती भी है कि यह कौन सी रीति है। हमारे समाज में जिसमें लड़कीवालों से दहेज लेने के बजाय उलटा दिया जा रहा है। यह तो बहु का क्रय करने जैसा हो गया। कंजर समुदाय में बिना पण्डित पुरोहित के विवाह संपन्न कराया जाता है। मंगल का विवाह भी वैशाख माह के शुक्ल पक्ष के तृतीया तिथि को संतो के साथ कराया जाता है। इस समाज में न तो कोई मुहूर्त निकलवाया जाता है न वर कन्या का कुंडली मिलायी जाती है। विवाह के बाद नाच–गान की महफिल जरूर सजाई जाती है। कमला बुआ ने भी अपने नाती के विवाह के बाद महफिल सजवाई, अंग्रेजी दारू का इंतजाम करवाया, मीट–मुर्गा का बंदोबस्त कराया साथ ही शहर के गणमान्य को महफिल में आने का निमंत्रण भी दिया।

'गुलगुलिया' उपन्यास के केन्द्र में बिहार राज्य के गुलगुलिया विमुक्त जाति के संबंध में लेखिका लिखती हैं कि उनका प्रायः अगहन मास में विवाह होता है जब गुलगुलिया कबीले के आसपास के गांवों में धान की फसल तैयार हो जाती है तब गुलगुलैनिया तथा उनके बच्चें भीख मांगकर चावल इकट्ठा कर लेते हैं, जिससे विवाह में भोज का प्रबंध हो जाता है। उपन्यास की पात्र मोरंगनी एक सभ्य समाज की महिला को बतलाती है कि हमारे कबीले का सरदार हर महीने की कमाई से कुछ हिस्सा सभी लोगों से अपने पास जमा करवाता है और इसी पैसे को कबीले की लड़के–लड़कियों की शादी पर खर्च करता है। इन जनजातियों की तरह ही यदि हमारा सभ्य समाज भी विवाह जैसे खर्चीले परम्परा के नाम पर एकजुट होकर एक–दूसरे का सहयोग करे तो सामाजिक समरसता कायम रखा जा सकता है।

मृत्यु संस्कार :–

जीवन का अंतिम सत्य मृत्यु है और मृत्यु के उपरांत कुछ संस्कार भी सर्वविदित है। विमुक्त जातियों में भी मृत्यु संस्कार का अत्यधिक महत्व देखा गया है। प्रत्येक खानाबदोश समुदाय अपनी सभ्यता–संस्कृति के मुताबिक मृतात्मा की शांति के लिए विधिपूर्ण श्राद्धकर्म तथा दाह–संस्कार करते हैं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में 'कबूतरा' विमुक्त जाति से संबंधित कुछ मृत्यु संस्कार देखे जा सकते हैं। कबूतरा 'जंगलिया' के मृत्यु के बाद उसके ही कबीले वाले शव पर धान, फूल, डाकर नया कपड़ा शव को पहनाकर, बांस से बने अरथी पर लिटाकर उसका दाह–संस्कार करने ले जाते हैं। तत्पश्चात् मृतक की आत्मा की शांति के लिए डेरे में शांति सभा का आयोजन किया जाता है। कूनबे के तमाम लोग इकट्ठे होते हैं फिर ''कबीले की एक कुंवारी कन्या से चबूतरा लिपवाया गया। अगरबत्ती–मोमबत्ती जलाई गई। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिए कोरा कपड़ा थोड़ा ऊपर उठाकर ताना गया। तब बारी–बारी से लोग आते गए, उन्हें कांति (बिल का बकरा काटने वाला चाकू) पकड़ाई जाती है, वे देवी के चबूतरे पर कट्टटस (×) का निशान बनाते। पवित्र मंत्र की तरह सबने बोला कौल, जंगलिया का मरण नहीं हुआ। कबूतरा कभी मरता नहीं।''[10] मृत्यु के बाद शांति सभी का आयोजन तथा अपने पूर्वजों के लिए पूजा–पाठ का नियम सभी जनजातियों में देखी जाती है। इन समुदायों का मानना होता है कि मृत्यु के बाद भी व्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से अपने परिवार और प्रियजनों के आसपास ही रहता है और अपने परिवार के हित के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है, इसलिए मृतात्मा को प्रसन्न रखना आवश्यक है।

'कब तक पुकारूं' उपन्यास में भी 'करनट' विमुक्त जाति के मृत्यु संस्कार को हिन्दू धर्म की भांति ही दिखाया गया है। जहाँ सुखराम की पत्नी प्यारी की मौत के बाद उसे शमशान ले जाकर लकड़ी की चिता पर जलाया जाता है।

यायावरी जीवन खानाबदोश समुदाय के विकास में सबसे बड़ी समस्या है, किन्तु किसी एक निश्चित स्थान पर स्थायी घर–बार न होते हुए भी अपनी संस्कृति, संस्कार को अपने रोजमर्रा की वस्तुओं के साथ अपने कंधे पर ढोहते हुए निरंतर आगे बढ़ रहे हैं। मुख्यधारा के लोग जिन सभ्यता–संस्कृति को भूलते या आधुनिकीकरण के होड़ में छोड़ते जा रहे हैं, उन्हीं परम्पराओं को विमुक्त जाति आज भी अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांरण कर रहे हैं।

वेशभूषा :–

प्रत्येक मनुष्य का पहनावा–ओढ़ावा उसके कार्य–क्षेत्र, समाज या फिर परिवेश (वातावरण) पर निर्भर करता है। हमारे देश में भी पूरब से लेकर पश्चिम, उत्तर से लेकर दक्षिण तक हर क्षेत्र तथा राज्य में भांति–भांति के पोशाक और अलंकरण हैं जो मानव की सुंदरता में चार–चांद तो लगाते ही हैं, विशिष्ट पहचान भी दिलाते हैं। साथ ही हर क्षेत्र में रहने वाले लोगों का रूप–रंग, नैन नक्श, कदकाठी भी अलग–अलग होता है। आधुनिकीकरण के समय आज प्रत्येक इंसान पश्चिमी सभ्यता–संस्कृति का अंधाधुध तरीके से नकल कर रहा है वहीं अभी भी हमारे ही समाज के केन्द्र से अलग हाशिये पर जीवन जीने वाले खानाबदोश जनजाति जिन्हें कहीं घुमन्तू जनजाति, कहीं विमुक्त जाति तो कहीं जरायमपेशा जनजाति के नाम से जाना जाता है। यह जनजातिय समाज अपनी प्राचीन सभ्यता–संस्कृति को आज भी अपने परिधान, वेशभूषा में संजोये हुए हैं। बंजारा हो या नट उनके पहनावे से बहुत हद तक इन्हें पहचाना जा सकता है। राह चलते किसी 'नट' को पहचानना हो तो गले में माला, सिर पर साफा, हाथों में काँच के कड़े और तन पर लम्बा कुर्त्ता के साथ धोती पहने व्यक्ति को देखकर हम उसके नट या करनट होने का अंदाजा लगा सकते हैं।

'कब तक पुकारूं' उपन्यास में उपन्यासकार रांगेय राघव 'करनटों' के वेशभूषा के विषय में लिखते हैं कि

मेरा इलाज करने वाला एक व्यक्ति यानि उपन्यास का मुख्य पात्र 'सुखराम' गले में मोतियों का माला पहनता, सिर पर साफा बांधे रखता और हाथ में कांच का कड़े भी पहनता था छोटी धोती यानि घुटने तक धोती लपेटे गोल गले का कोट पहनता था। उसका रंग गेहूँआ और नाम लंबी थी, आंखो में भी खूबसूरती झलकती थी। कुल मिलाकर सुखराम करनट आकर्षक व्यक्तित्व का धनी था। करनटों की स्त्रियों भी काफी सुंदर होती है। घाघरा चोली इनका पहनावा होता है, तभी तो ये अपना घाघरा घुमा घुमाकर नाचती हैं। सुखराम लेखक को अपने परिवार के विषय में बताते हुए कहता है कि प्यारी यानि उसकी पत्नी भी कुछ खेल–तमाशे, करतब जानती थी। ''वह लहंगा फिरा–फिराकर नाचती, दोनों हाथों से घूंघट आगे लम्बा–सा खींच लेती और मटक–मटककर चलती। लोग उसे देखकर खुश होते, पर वे उसका मुंह नहीं देख पाते।''[11]

'कबूतरा' विमुक्त जाति की स्त्रियों के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन मैत्रेयी पुष्पा 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में करती हैं। जिसमें उपन्यास की एक पात्र 'भजनी' कहती है कि कबूतरियों को ईश्वर ने बहुत समझ कर बनाया है। रूप सौन्दर्य इतना अधिक दिया है कि बाहारी शृंगार की आवश्यकता ही नहीं है। प्राकृतिक सौन्दर्य होते हुए भी 'कदमबाई' अपने पति जंगलिया के आने की खुशी में सोहल शृंगार करती है। प्राकृतिक उपादान को अपना शृंगार प्रसाधन बनाती है जिसमें बकरी के दूध से चेहरे की सफाई करती है, ब्याह का पीला घाघरा पहन कर पैरों में महावर भरती है। कबूतरा जनजाति के पुरूष भी काफी आकर्षक तथा सुडोल कदकाठी के होते हैं। कुर्त्ता तथा धोती या पाजाम इनका वस्त्र होता है।

'कंजर' तथा 'बेड़िया' विमुक्त जाति के पुरूष पाजामा कुर्त्ता पहनना पसंद करते हैं। स्त्रियाँ खूब घेरदार लहंगा और ब्लाउज पहनती हैं। आधुनिक दौर में महिलाएँ साड़ी भी पहन रही है। बाहरी शृंगार प्रसाधनों का इन जनजातियों में अत्यधिक महत्व देखा जाता है। 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास की लेखिका शरद सिंह अपने बस यात्रा के दौरान 'श्यामा' बेड़नी के भड़कीले शृंगार का जिक्र उपन्यास में करती हैं। श्यामा नीली साड़ी के साथ खूब पाउडर, लाल लिपस्टिक, बड़े–बड़े झूमके, अनोखा केश–विन्यास तथा गले में चमकीले मोतियों के माला से स्वयं को आकर्षक बनाया था। जो कि प्रत्येक बेड़नियों का मिलता–जुलता शृंगार था।

'गुलगुलिया' विमुक्त जाति के विषय में प्रभा कुमारी लिखती हैं। गुलगुलबा लोग हष्ट–पुष्ट मोटे–मोटे होते हैं तथा गुलगुलैनियाँ साधारण कदकाठी की होती हैं जो हमेशा अपनी आँखों में काजल और चोटी में रंग–बिरंगी फीता बांधे रहती हैं। अलंकरण के रूप गोदना इन्हें बहुत प्रिय होता है। आलोच्य उपन्यास की पात्र झुनकिया गोदना गोदवाने के लिए काफी उत्साहित है और गोदना गोदने वाली से कहती है मेरे बाँह, कलाइयों में गोदना से फूल बना दो। मृत्य के उपरांत कुछ साथ जाए न जाए यह गोदना तो साथ जाएगा। पति या प्रेमी का प्रेम पाने के लिए भी गुलगुलैनिया दर्द सह कर भी गोदना गोदवाती हैं। गोदना जैसी प्राचीन कलाकारी या अलंकार का एक स्वरूप इन जनजातियों द्वारा ही आज भी सुरक्षित है।

रंग–रूप, वस्त्र–आभूषण, रहन–सहन के मामले में विमुक्त जातियां भले ही सभ्य समाज से अलग हों परन्तु ये भी हमारे समाज के उतने ही प्रभावी अंग हैं जितना कि समाज का अन्य वर्ग है। अपनी परम्पराओं को अपने साथ आत्मसात करना तो कोई खानाबदोश समाज से सीखे।

लोकगीत तथा नृत्य :-

संसार में जीवन–यापन के लिए भौतिक वस्तुओं की जितनी जरूरत मनुष्यों को होती है उतनी

आवश्यकता सुचारू एवं स्वस्थ जीवन के लिए गीत और नृत्य की भी होती है। व्यक्ति न चाहते हुए भी कला की ओर खींचा चला जाता है। रोज़मर्रे की जिन्दगी में कुछ समय मनोरंजन के लिए निकालना सिर्फ सभ्य समाज तक ही सीमित नहीं है वरण विमुक्त जातियों में भी गीत और नृत्य का प्रचलन है। अपनी संस्कृति को संजोना हो या संस्कृति को प्रदर्शित करना हो, तो ये इसमें माहिर कलाकार होते हैं। किसी भी पर्व–त्योहार, विवाह, जन्मोत्सव, मुण्डन के उपलक्ष्य में ये अपना लोकगीत गाना नहीं भूलते हैं। बच्चें से लेकर वृद्ध तक लोकगीत के कुशल कलाकार माने जाते हैं पर इनके हुनर को तराशनें वालों की कमी है। 'नट' विमुक्त जाति की स्त्रियाँ सड़कों के किनारे अपने लहंगे को घुमा–घुमाकर नाचती हैं और लोगों का मनोरंजन करती है इसके बदले इन्हें कुछ पैसों की आमदमी भी हो जाती है।

'शैलूष' उपन्यास का एक नट पात्र लल्लू काका कहता है कि हम आल्हा–उदल की संतान हैं गीत संगीत तो हमारे खून में है। उपन्यासकार आगे लिखते भी हैं पूरे विंध्याचल क्षेत्र में फैले नट कबीलें में ढूंढ़ भी लिया जाए तो रज्जब जैसा ढोलकिया नहीं मिलेगा। रज्जब अपने ढोलक की थाप पर पूरे जनता को नचाता है। अपनी पत्नी रजिया की मृत्यु के बाद उसकी याद में वो अक्सर गाता भी है :–

''जहिया से सइयां मौरा छुअले लिलखा
दुलभवा भइले ना।
मोरे बाबा की नगरिया
दुलभवा भइले ना।''[12]

यानि रजिया तुम्हारे जाने के बाद मेरी जिंदगी, नगर सब दुर्लभ हो गया है। गाना, बजाना, करतब दिखाना नटों का शौक ही नहीं बल्कि पेशा भी है। जिससे इनकी रोज़ी–रोटी चलती है वही काम इनके लिए सर्वोपरि है। फाग से लेकर कजरी तक गाने में निपुण नट–जनजाति अपने कबीले में होली के अवसर पर प्राचीन गीत परम्परा को आज भी गाते हैं।

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में वर्णित बेड़िया जनजाति के विषय में लेखिका शरद सिंह लिखती हैं बुंदेलखंड क्षेत्र के बेड़िया जिन्हें बेड़नियाँ भी कहा जाता है। नृत्य और गीत के क्षेत्र में प्रवीण होती हैं इसलिए इन्हें नचनारी तथा पुतरिया नाम से भी जाना जाता है। ये अपने पारम्परिक लोकनृत्य 'राई' के लिए विशेष रूप से जानी जाती हैं। 'राई नृत्य' का प्रशिक्षण प्रत्येक बेड़नी को अपनी नानी, माँ, बहन, बुआ से विरासत के रूप में मिलता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते रहता है। ''राई नृत्य की प्रमुख पद–गतियां और मुद्राएँ होती हैं– ठुमकी, चकरी, गिरदी, कोण, उड़ान, बैठकी, मोरचाल, मोरघुमन, झटका, ठड़कचका और जुगलबंदी।''[13] नृत्य करने वाली बेड़नियाँ चमकीले और लहरदार लहंगा के साथ गोटेदार चुनरी में घूंघट ओढ़े खूब झमक–झमककर नाचती हैं। यह नृत्य बेड़िया समाज के अर्थोपार्जन का भी मुख्य साधन है। नृत्य करते–करते बेड़नियाँ दर्शकों में से किसी व्यक्ति पर भी अपना लहंगा फैला देती है और उससे मुंहमांगा रकम वसूलती है। ''राई नृत्य के दौरान जो गीत गाए जाते हैं उन्हें टोरा, खयाल, फाग, लटका एवं सौबत के नाम से जाना जाता है। टोरा एक पंक्ति का गीत होता है। इन गानों के बोल कभी व्यंग्यात्मक होते हैं तो कभी अश्लील।''[14] राई नृत्य करने वाली बेड़निया समूह के साथ चलती है, जिसमें गवइया, वादक मंडली के लोग भी शामिल होते हैं। इस नृत्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह स्वांग पर आधारित होता है, जिसमें नर्तकी विभिन्न

प्रकार की मुद्राएँ बनाती हैं और दर्शकों को आकर्षित करती हैं। 'राई नृत्य' की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि भारत के कला संस्कृति मंत्रालय की ओर से बुंदेलखंड की कुछ बेड़नियाँ देश के अलावी विदेशों में भी अपने पारम्परिक नृत्य का प्रदर्शन कर चुकी हैं। आज के समय में यही इनकी पहचान भी बन चुकी है।

'गुलगुलिया' उपन्यास के माध्यम से पता चलता है कि गुलगुलिया विमुक्त–जाति भी अपने लोकगीतों के माध्यम से शादी, पर्व किसी भी आयोजन में खूब रंग जमाती हैं। महिलाएँ गोदना गोदवाते हुए भी गीत गाती हैं। उपन्यास की एक पात्र 'झुनुकिया' को गोदना गोदते समय कबीले की बूढ़ी महिला गीत भी गाती है :–

''गोरे–गोर बहियां गे लीलिया कारे सोभैय
गोदनमा रे जान,
जान गोदना रे देखी मोहना छौड़ा
लोभइले रे जान।''[15]

श्रृंगार रस से लेकर वीररस तक के गीत के लिए गुलगुलिया कबीला प्रसिद्ध है। इनके बच्चें और महिलाएँ गीत गा–गाकर भीख भी मांगते हैं।

देखा जाए तो प्रायः सभी विमुक्त जातियों में लोकगीत और नृत्य को लेकर काफी उत्साह तथा जागरूकता है। इनका अपनी संस्कृति के प्रति समर्पण देखकर ऐसा लगता है कि हमारे समाज के मुख्यधारा से कटकर भी यह भारत की संस्कृति के असल संरक्षक तथा संवाहक बने हुए हैं। लोक संस्कृति को हमारा समाज वास्तविक संस्कृति का मुख्य अंग मानता है, किन्तु इसके संरक्षण के लिए हमारा कथित सभ्य समाज हमेशा से ही पल्ला झाड़ते आया है। सही मायने में यदि कोई लोक संस्कृति के संरक्षक हैं तो वह हैं समाज के केन्द्र से दूर रह रहे घुमन्तू समुदाय, आदिवासी समुदाय, जो बुनियादी जरूरतों से दूर होते हुए भी, अशिक्षित होते हुए भी अपनी संस्कृति, अपने धरोहर को मज़बूत कर रहे हैं, सींच रहे हैं तथा खिलने का सुअवसर प्रदान कर रहे हैं। पीढ़ियों से अपनी परम्पराओं के नाम पर ही सही, ये अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचा रहे हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम भी इन जनजातियों के संरक्षण में सहायता करें, इन्हें मुख्य धारा में यथोचित स्थान दिलवाने का प्रबंध करें। व्यक्ति से परिवार निर्मित होता है और परिवार से समाज का निर्माण होता है। यही समाज राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी भी होता है। हम कह सकते हैं कि संगठन और सहयोग के द्वारा ही एक सफल राष्ट्र की कल्पना की जा सकती है। समृद्ध संस्कृति किसी भी राष्ट्र के उन्नति का परिचायक है। जब हम किसी क्षेत्र, देश की सभ्यता–संस्कृति के विषय में बात करते हैं तो हमारा उद्देश्य वहाँ की प्रथा, रीति–रिवाज, त्योहार, कला, धर्म, पूजन विधि का उल्लेख करना होता है और जहाँ की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ होती है। वहाँ की आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा बरकार रहती है किन्तु विमुक्त जातियों के मामले यह बिल्कुल विपरीत बात है। इनकी समृद्ध संस्कृति होने के बावजूद सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक स्थिति दयनीय है। पिछड़ापन, शोषण इनके जीवन का अभिन्न अंग।

संदभ सूची :–

1. सिंह, शिवप्रसाद. ''शैलूष''. तृतीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989. पृ0 112.
2. शुक्ल, परशुराम. ''भारत की विमुक्त जातियाँ''. प्रथम, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2021. पृ0 172.

3. पुष्पा, मैत्रेयी. ''अल्मा कबूतरी''. छठा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000. पृ0 342.
4. सिंह, शरद. ''पिछले पन्ने की औरतें''. दूसरा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005. पृ0 63.
5. पुष्पा, मैत्रेयी. ''अल्मा कबूतरी''. छठा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000. पृ0 76.
6. दिनकर, रामधारी सिंह. ''संस्कृति के चार अध्याय''. लोकभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ0 653.
7. पुष्पा, मैत्रेयी. ''अल्मा कबूतरी''. छठा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000. पृ0 36.
8. राघव, रांगेय. ''कब तक पुकारूं''. राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1957. पृ0 92.
9. शुक्ल, परशुराम. ''भारत की विमुक्त जातियाँ''. प्रथम, आशा प्रकाशन, कानपुर, 2021. पृ0 25.
10. पुष्पा, मैत्रेयी. ''अल्मा कबूतरी''. छठा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000. पृ0 76.
11. राघव, रांगेय. ''कब तक पुकारूं''. राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1957. पृ0 92.
12. सिंह, शिवप्रसाद. ''शैलूश''. तृतीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989. पृ0 160.
13. सिंह, शरद. ''पिछले पन्ने की औरतें''. दूसरा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005. पृ0 253.
14. तथैव, पृ0 253.
15. कुमारी, प्रभा. ''गुलगुलिया''. प्रथम, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2021. पृ0 103.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 197-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृति और साहित्य का सैद्धान्तिक अध्ययन

डॉ. नरेश कुमार

पीएच.डी, नेट–जे.आर.एफ, एम.ए, बी.ए, पी.जी.डी.टी

पटियाला–147001

संस्कृति का संबंध मानव–समाज के भौतिक व आध्यात्मिक जीवन से है। अतः इसमें सामाजिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि सर्वांगीण जीवन समाहित हो जाता है। मानव के जीवन के रहन–सहन, रीति–रिवाज, परम्परा, मान्यताएं, विश्वास, आचार–विचार, कला, भाषा, जीवन–यापन की पद्धति इत्यादि संस्कृति के तत्त्व हैं, जो किसी देश की संस्कृति का निर्माण करते हैं। संस्कृति की तरह ही साहित्य का संबंध भी मानवीय जीवन से है। संस्कृति और साहित्य दोनों का ही सर्जक मानव–समाज है। स्पष्टतः इन दोनों का अस्तित्व मानव–समाज पर अवलंबित है। साहित्य के माध्यम से भी संस्कृति से परिचित हुआ जा सकता है। अतः संस्कृति और साहित्य के स्वरूप से अवगत होना अत्यन्त जरूरी हो जाता है।

संस्कृति का स्वरूप : संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति, 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में सुटू का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करने से हुई है। जिसका प्राकृतिक विधान के अनुसार अर्थ है : संस्कार की हुई पद्धति है।'[1] संस्कृति के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से परिभाषाएं दीं हैं। जिनका विवरण देना यहाँ आवश्यक हो जाता है :– भगवतशरण उपाध्याय संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं : ''संस्कृति समान प्रयत्नों से उत्पन्न समान विरासत है, संयुक्त और समन्वित प्रयासों का प्रतिफलन है। ..... संस्कृति समस्त के लिए समस्त योगदान है, मिश्रित समन्वित संयोग है।"[2] अर्थात् संस्कृति का निर्माण पूर्ण समाज के उद्योग से ही पूर्णतः को प्राप्त होता है। प्रख्यात साहित्यकार एवं संस्कृति के विशेषज्ञ रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं : ''संस्कृति जिन्दगी का तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[3] एक लेखक और प्रसिद्ध राजनेता स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं : 'संस्कृति वह है जिससे व्यक्ति का आंतरिक विकास होता है। इसका संबंध व्यक्ति के आचरण से है। यह दूसरे व्यक्ति को समझने की क्षमता है। संस्कृति जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए सत्य को ग्रहण करना है।'[4] प्रख्यात गुजराती साहित्यकार डॉ. के.एम. मुंशी के अनुसार : 'संस्कृति, मौलिक मूल्यों से अनुप्राणित, लोगों के जीने की विशिष्ट पद्धति है। यह मूल्यों का समुच्चय है, जो कला, धर्म, साहित्य, सामाजिक संस्थानों और व्यवहार के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।'[5] एडवर्ड. बी. टाइलर के कथन के अनुसार : 'संस्कृति एक जटिल समष्टि है। जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा क्षमताएं सम्मिलित हैं, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते

प्राप्त करता है।'[6] अर्थात् जो भी आचार–विचार, वह परम्परागत रूप से ग्रहण करता है। वह संस्कृति के अन्तर्गत आ जाता है। लेसली ए. वाईट के मत अनुसार : 'संस्कृति से हमारा अभिप्राय है कि प्रतीकों पर निर्भर वस्तुओं और घटनाओं की एक अतिदैहिक, ऐहिक (लौकिक) निरन्तरता। संस्कृति में औजार, उपकरण, बर्तन, पहरावा, गहने, प्रथाएं, संस्थाएं, विश्वास, संस्कार, खेले, कलाएं, भाषा इत्यादि सम्मिलित होते हैं।'[7] यहाँ लेखक ने संस्कृति को दैहिक और लौकिक जन–जीवन से जोड़ा है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की संस्कृति संबंधी धारणाओं का विवेचन करते हुए, अब हम समग्र रूप से कह सकते हैं कि संस्कृति का निर्माण मानव–समाज द्वारा ही संभव है, जिसका संबंध सामाजिक जीवन से है तथा यह एक निरन्तर चलने वाले लम्बे विकास का परिणाम होती है। इसमें सर्वकल्याण का भाव निहित है, जिनका अनुगामी होकर समाज प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। संस्कृति अपने सामयिक आचारों–विचारों से भी प्रभाव अथवा संस्कार को अपने में समाहित करती है। यह परम्परागत मूल्यों का परिमार्जन कर, उन्हें परिवेश और समय के अनुकूल बनाती है। अतः यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जो हर युग में नवीन बनी रहती है।

साहित्य का स्वरूप : मानवीय समाज का अपने भावों और विचारों को आड़ी–तिरछी रेखाएं खींचकर अथवा लिखकर व्यक्त करने की आदिम प्रवृत्ति रही है। आजकल लेखन की संग्रहीत सामग्री को जिससे मानवीय जीवन उभरकर आता है, उसे सहित्य की संज्ञा दी जाती है। 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाए तो 'साहित्य शब्द का अर्थ है, सहित होने का भाव। सहित शब्द का अर्थ दो अर्थों में लिया जा सकता है। पहला, 'साथ होना' के अर्थ में। दूसरा, जिससे हित का संपादन हो।'[8] पहला अर्थ, जहाँ शब्द–अर्थ व विचारों–भावों के आपसी अनुकूलता को व्यक्त करता है। वहीं दूसरा अर्थ, मानव–हित के रूप में हमारे समक्ष आता है। 'साहित्य, प्राचीनकाल में 'शास्त्र' के अर्थ में प्रयोग होता था, परन्तु बाद में 7वीं सदी से 'साहित्य' शब्द काव्य के लिए प्रयुक्त होने लगा था।'[9] साहित्य शब्द का अर्थ जान लेने के पश्चात्, साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के विचारों से अवगत होना भी जरूरी हो जाता है, ताकि साहित्य को परिभाषित किया जा सके।

प्रेमचन्द के अनुसार : ''साहित्य... जीवन की आलोचना है।''[10]

गुलाबराय के अनुसार : ''साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।''[11]

परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार : 'साहित्य, मानव जीवन की विशेष अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति हैय जिससे हमें विशुद्ध मानसिक अथवा काव्यानन्द की अनुभूति होती है।'[12]

जैनेन्द्र कुमार के अनुसार : ''प्रगतिशील, अनुभूतिशील, जीवन का लिपिबद्ध व्यक्तिकरण साहित्य है।''[13]

साहित्य से संबंधित, उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन और विशेषण के पश्चात् कहा जा सकता है कि साहित्य, मानवीय भावों और विचारों की लिपिबद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य मानवीय जीवन के सकारात्मक और नकारात्मक या कहें आदर्श और यथार्थ जीवन का विवेचन और विश्लेषण है।

साहित्य की विविध विधाएं : हिन्दी साहित्य के पद्य और गद्य साहित्य में कई तरह की विधाएं आ जाती हैं। साहित्य में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, एकांकी, यात्रा–वृतान्त, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र और चम्पू जैसी विधाएं आ जाती हैं।

संस्कृति और साहित्य का अंतर्संबंध :

जिस देश की जैसी संस्कृति होती है, उस देश का वैसा ही साहित्य होता है। 'फारसी व अंग्रेजी साहित्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि वह आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकता को अधिक महत्त्व देते हैं।'[14] वहीं, हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने पर भारतीय संस्कृति दृश्यमान हो जाती है, जहाँ आध्यात्मिकता व भौतिकता का समान गुंफन पाया जाता है। आर्य–द्रविड़, बौद्ध–जैन, ब्राह्मण और मुस्लिम संस्कृति के आचार–विचार जो भारतीय संस्कृति को आकार देते हैं। वह सभी ही हिन्दी साहित्य में स्वाभाविक रूप से मिल जाते हैं : जैसे– एकेश्वरवाद, बहुदेववाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, अनीश्वरवाद, आध्यात्मवाद, अहिंसा, सत्य की खोज, सेवाभाव, यज्ञ–कर्मकाण्ड, मूर्ति–पूजन, गुरु का अत्यधिक महत्त्व, संस्कार, वर्णाश्रम, पुरुषार्थ, राजतंत्र, लोकतंत्र, समाजवाद, मानवतावाद इत्यादि। इस तरह समाज व संस्कृति के जितने भी अच्छे–बुरे संस्कार होते हैं, वह साहित्य में भी समाहित हो जाते है। अतः साहित्य को संस्कृति की प्रति छाया कह दिया जाता है।

वहीं, साहित्य भी संस्कृति की कसौटी होती है। किसी देश की संस्कृति कितनी उत्कृष्ट और निकृष्ट है! कितनी भौतिक और आध्यात्मिक है! कितनी साम्प्रदायिक और असाम्प्रदायिक है! कितनी उदारवादी और संकीर्ण है! कितनी सहिष्णु और असहिष्णु है! वह स्पष्टतः साहित्य से ही ज्ञात होता है। इस तरह साहित्य से संस्कृति का ज्ञान भी हो जाता है। जब भारतीय लोग पाठक के रूप में अंग्रेजी साहित्य, अफ्रीकन साहित्य और रूसी साहित्य पढ़ते हैं, तो वह उन देशों की संस्कृति से भी परिचित हो जाते हैं। अतः साहित्य, संस्कृति के संवाहक के रूप में कार्य करता है। उच्च मूल्यों पर आधृत साहित्य के माध्यम से मानव–समाज के मन–मस्तिष्क में अच्छे संस्कारों को प्रतिस्थापित किया जा सकता है। रामायण, महाभारत और पौराणिक ग्रंथों के सात्विक मूल्यों से भारतीय जन–समाज की मानसिकता निर्देशित रही है। भारतीय जनमानस, इन ग्रंथों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि उच्च मूल्यों व सात्विक चरित्रों को अपना आदर्श मानता है। उनके विचारों को आत्मसात करते हुए अपने आचारों में ढालने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अतः साहित्य में संस्कृति को प्रभावित करने की क्षमता होती है। अपनी परम्परा व सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिए, साहित्य एक विश्वसनीय स्रोत है। क्योंकि इसमें किसी देश की संस्कृति संरक्षित रहती है। यदि किसी देश का साहित्य नष्ट कर दिया जाए तो निश्चित् रूप से धीरे–धीरे उस देश की संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचरण, विश्वास, मान्यताएं, आदर्श, परम्परा, खान–पान, रहन–सहन, पहरावा, व्यवहार, जीवन–यापन की पद्धति, कला, भाषा, और जितनी भी मानव–जीवन से जुड़ी वस्तुएं हैं। इन सबका समुच्चय ही संस्कृति है। इनका निरन्तर उत्तरोत्तर परिमार्जन और विकास करना ही, संस्कृति का ध्येय है। उक्त विवेचन के आधार पर संस्कृति को मूलतः आध्यात्मिक और आधिभौतिक (सभ्यता), इन दो पक्षों में निरूपित किया जा सकता है। आध्यात्मिक और आधिभौतिक, जितने परिष्कृत और विकसित होते हैं, वह संस्कृति उतनी उच्चकोटि की होती है। इसे ही संस्कृति की कसौटी भी कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की बात की जाए तो वह आध्यात्मिक, सहिष्णु, उदार, अर्जनशील, परिवर्तनशील व प्रगतिशील है, जो इसकी अक्षुण्णता और जीवन्तता का कारण भी है।

संस्कृति ही साहित्य की जननी होती है। क्योंकि साहित्य में जिन आचारों–विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है। वह आचार–विचार अथवा मूल्य, समाज और संस्कृति से ही ग्रहण किए जाते हैं। अतः संस्कृति से

साहित्य प्रभावित होता ही है। किन्तु साहित्य के माध्यम से भी संस्कृति को प्रभावित किया जा सकता है अर्थात् संस्कृति का संस्कार किया जा सकता है। साहित्य, संस्कृति के मूल्यों का संवाहक होता है। वह मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित करता है। अंततः कहा जा सकता है कि संस्कृति और साहित्य अन्योन्याश्रित होते हैं।

संदर्भ :-

1. धर्मपाल मैनी, गुरु गोबिंद सिंह की भारतीय संस्कृति को देन (नई दिल्ली : गोबिंद सदन, प्र. सं. 1999), पृ. 15.
2. भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत (नई दिल्ली : पी.पी.एच., सं. 2006), पृ. 13–14.
3. रामधारी सिंह दिनकर, रेती के फूल (पटना–4 : श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, सं. 1954), पृ. 125.
4. जवाहरलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू के भाषण–1 (नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सं. 2002), पृ. 3–25.
5. "It is the characteristic way of life inspired by fundamental values, in which a people live. It is sum total of values expressed through art, religion, literature, social institutions and behaviour."– के.एम. मुंशी, फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर (मुम्बई : भारतीय विद्या भवन, सं. 2012), पृ. 4.
6. "culture … is that complex whole which includes knowledge belief art, morals, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society" – बी. टाइलर, प्रिमिटिव कल्चर, (लण्डन : जोन मरी, एलबिमर्ल स्ट्रीट, सं. 1903), पृ. 1.
7. "By culture we mean an extrsomatic, temoral continuum of things and events dependent upon symbolling. Specifically and concretely, culture consists of tools, implements, utensils, clothing, ornaments, customs, institutions, beliefs, rituals, games, words of art, language, etc."– लेसली. ए. वाईट, द एवोलूशन ऑफ कल्चर (न्यूयोर्क : मैकग्रा हिल बुक कम्पनी, 1959), पृ. 3.
8. गुलाबराय, काव्य के रूप (दिल्ली : आत्माराम एण्ड संस, सं. 2012), पृ. 10.
9. रामरतन भटनागर, 'साहित्य', हिन्दी साहित्य कोश, सं. धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य (वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं. 2015), पृ. 764.
10. प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य (इलाहाबाद : हंस प्रकाशन, सं. 2015), पृ. 10.
11. गुलाबराय, काव्य के रूप (दिल्ली : आत्माराम एण्ड संस, सं. 2012), पृ. 10.
12. परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य–पथ (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा.लि., सं. सम्वत् 2018), पृ. 2.
13. जैनेन्द्र कुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय (दिल्ली : पूर्वोदय प्रकाशन, सं. 1953), पृ. 16.
14. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, साहित्यिक निबन्ध (मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, सं. 1999), पृ. 409.

सम्पर्क 7837616933

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 201-207

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीर दास की सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक समरसता

इंदु बाला, शोध प्रज्ञ,
डॉ० मणि कान्त ठाकुर, सहायक प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

भारतीय समाज में समय–समय पर समाज की आवश्यकता के अनुरूप सुधारवादी आन्दोलन होते रहे है। मध्यकालीन भारत में भी सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों और आडम्बरो के विरूद्ध एक व्यापक आन्दोलन का अभ्युदय व प्रचार हुआ, जो भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। आन्दोलन सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों, कुरीतियों एवं आडम्बरों के विरूद्ध संघर्ष के साथ ही सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने प्राचीन भारतीय आदर्शों व मूल्यों की पुर्नस्थापना के प्रयासों का आन्दोलन था। निः सन्देह भारतीय समाज की सुधारवादी आन्दोलन की परम्परायें, मुस्लिम शासन के घात–प्रतिघात तथा उनसे उत्पन्न हुई परिस्थितियों आदि के परिणामस्वरूप ही इस आन्दोलन का अभ्युदय हुआ। यही कारण है कि इस आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण शाखा निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय थी, जिसके भक्त मध्यकालीन राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप लुप्त होते हुए प्राचीन भारतीय आदर्शों एवं मूल्यों के प्रति सजग थे और अपने आराध्य के माध्यम से पुनः उन आदर्शों एवं मूल्यों को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। कबीर ने जाति व्यवस्था एवं छुआछूत का विरोध, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का विरोध, शुद्रोद्धार, सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों व वाह्याडम्बरों का विरोध, आर्थिक असमानता का विरोध, शारीरिक श्रम की महत्ता पर बल, समाज में वैयक्तिक दुर्गुणों का निराकरण, मानवीय व नैतिक मूल्यों की स्थापना आदि हेतु प्रयास किया। मध्यकालीन भारत में मुस्लिम समुदाय के अभ्युदय से हिन्दू–मुस्लिम सामंजस्य का प्रश्न भी आ खड़ा हुआ था। निर्गुण सन्तों ने इस ओर भी अपना ध्यान आकृष्ट किया और दोनों समुदायों को निकट लाने का भी प्रयत्न किया।

धर्म और समाज किसी भी युग के महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ होते हैं, जिन पर समस्त जनमानस की जीवनी शक्ति एवं उन्नति टिकी होती है। मध्यकाल में भी धर्म और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध था। यही कारण था कि धर्म सुधार के साथ–साथ समाज सुधार भी मध्यकालीन निर्गुण भक्ति संतों का मुख्य लक्ष्य रहा। उन्होंने अपने समय के असंगठित, दलित और हीनदशा से उद्विग्न मानव समाज को देखकर उनमें आमूल परिवर्तन करना चाहा। इसमें वर्ण–भेद, छुआछूत, वर्ग–भेद, मानवीय मूल्यों का ह्रास, सामाजिक कुरीतियाँ, साम्प्रदायिक सद्भाव, आर्थिक वैषम्य, हिंसा एवं पाखण्ड का विरोध इत्यादि को स्थान दिया गया। मध्यकाल में हिन्दू और इस्लाम धर्म अपने सामाजिक आचार–विचार और संस्कारों को अलग–अलग लेकर चले, ऐसे में दोनों धर्म के अनुयायियों को धार्मिक मान्यता के आधार पर तमाम सामाजिक बुराईयों को भी झेलना पड़ रहा था। यह स्थिति सामान्य जनमानस के

लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण थी। स्थिति अत्यन्त विषम तब और हो गयी, जब एक धर्म ने अपनी सामाजिक मान्यताओं को दूसरे धर्म पर थोपना शुरू कर दिया इस टकराहट में सामान्यजन पीसता चला गया।

हिन्दू धर्म वेद और मनुस्मृति में वर्णित सामाजिक व्यवस्था पर एवं इस्लाम धर्म कुरान में वर्णित सामाजिक मान्यताओं पर आधारित था। जिसका पालन समाज में उच्चकुलीन लोगों द्वारा कराया जा रहा था और निश्चय ही वे इसका दुरूपयोग कर रहे थे। समाज में इनका विरोध करने का साहस किसी में नहीं था। ऐसे में विश्व–बन्धुत्व की भावना का प्रसार करना और दया, क्षमा, उदारता आदि गुणों को समाज के अन्दर प्रतिष्ठित करना था। इसी कारण सुधारमय क्रान्ति संत परम्परा का प्रधान स्वर बन गया। इस क्रान्ति का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था के हिन्सामय उलट फेर से न होकर मानव के हृदय परिवर्तन से है।

कबीर पंथियों के अनुसार कबीर का समस्त साहित्य 'बीजक' के रूप में संग्रहित है जो मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त है– साखी, सबद, रमैनी। 'साखी' में जहाँ जीवन ईश्वर तथा अध्यात्म से संबंधित उपदेश हैं वही 'सबद' में योग साधना तथा भक्ति भाव के पाठ हैं। 'रमैनी' में कबीर के दार्शनिक विचार संग्रहित है। कबीर ने मौखिक रूप में विपुल वाणियों की रचना की जो उनके प्रतिमा का तो प्रमाण है ही, यह कई बार सन्देह भी उत्पन्न करता है कि क्या कबीर सच में पढ़े–लिखे नहीं थे, या फिर उनके फक्कड़ स्वभाव के कारण लोग उन्हें निरक्षर कहते थे। परन्तु अब हम इस बात से परे हम इस बात पर विचार करेंगे कि 'साखी' क्या है? तथा कबीर की साखियों का मानव जीवन में समाज में तथा साहित्य में क्या महत्व है। 'साखी' शब्द संस्कृत में 'साक्षी' का तद्भव या अपभ्रंश रूप है। साक्षी का अर्थ हैं 'गवाही' अर्थात् जो हमने देखा है या अनुभव किया है। उसे सच्चाई या ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही साक्ष्य देना कहलाता है। हिन्दी में साखी शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् गवाह और गवाही दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। साक्ष्य का एक अर्थ 'स्वयं' अपनी आँखों से देखा 'तथ्य' भी होता है। इसी आधार पर कबीर के साखी का तात्पर्य 'साक्षात' या 'प्रत्यक्ष' अथवा 'यथार्थ' ज्ञान से लगाया जाता है। कबीर की साख्यिों में महात्माओं के उपदेश तथा ज्ञान–ध्यान की बातो के साथ–साथ उन मुसीबतों को सुलझानें के विचार भी है। हमारे दैनिक जीवन में पग–पग पर आती कठिनाइयों, भ्रम एवं सन्देह का निवारण करती हैं इसलिए 'साखी' ज्ञान की आँख कहलाती है। इन साखियों में विद्यमान ज्ञान के बिना संसार के प्रपंचों से मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए इन साखियों की महिमा का बखान करते हुए कबीर कहते हैं–

"साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखि मन माहिं।
बिनु साखी संसार का अगरा छूटन नाहिं।।"

कबीर पर उस समय तक प्रचलित नाना धर्म– साधनाओं, विचारों एवं प्रतिष्ठित धर्म–ग्रन्थों का प्रभाव पड़ा है किन्तु कबीर पर यह प्रभाव सीधे नहीं पड़ा है, क्योंकि उन्होंने तो पुस्तकीय ज्ञान सीखा ही नहीं था। वे बहुश्रुत थे। उन पर विविध धर्म–सम्प्रदायों और दर्शन ग्रन्थों का प्रभाव साधु–संगति से आया है। यही कारण है कि कहीं–कहीं कबीर ने हिन्दू पौराणिक आख्यानों का उपयोग यथावत नहीं किया है। समस्त उपनिषद साहित्य की रचना ब्राह्मण साहित्य की कर्मकाण्डी प्रवृत्ति के विरोध में हुई है। बहुदेववाद व कर्मकाण्ड की धज्जियाँ इसी साहित्य ने उड़ायी थी। कबीर के समय भी देवोपासना एव ब्राह्मणों द्वारा नियंत्रित हिन्दू धर्म की कर्मकाण्डी प्रवृत्ति का बोलबाला था। अतः उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार साहित्य यदि प्राप्त था तो वह उपनिषद् साहित्य ही। उपनिषदों में प्रस्थापित अद्वैत भावना का कबीर पर अत्यधिक प्रभाव है। कुछ लोग कबीर की एकेश्वर भावना और

निराकार उपासना को इस्लाम से प्रभावित मानते है, किन्तु यह भ्रामक है। वास्तव में एकत्व भावना वैदिक अद्वैतवाद की आधार भूमि है। अद्वैत के सिद्धान्त वाक्य 'ब्रह्म सत्यं जगमिथ्या' और एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, द्वारा भी यही सिद्ध है कि वह एक ब्रह्म ही सत्य है, अन्य कुछ नहीं। एक निर्गुण, निर्विशेष, निराकार और निरूपाधि एवं दूसरा इन सब बातों से मुक्त अर्थात् सगुण, सविशेष, साकार और सोपाधि। साधारणतः यह बात बड़ी अटपटी सी लगती है कि वह ब्रह्म एक साथ ही इस भांति द्विस्वरूपी कैसे है इसके प्रत्युत्तर में वेदान्तवादी कहते हैं कि ब्रह्म अपने आप में तो निर्गुण, निराकार निर्विशेष और निरूपाधि है परन्तु अविद्या या गलतफहमी के कारण जिसे हम माया भी कहते है, हम उसमें उपाधियों या सीमाओं का आरोप करते है। यह गलतफहमी अथवा भ्रम हमारा ही है। इसलिए उपनिषद बारम्बार स्थान–स्थान पर ब्रह्म को इस प्रकार बताती है– ''वह मोटा भी नहीं, पतला भी नहीं, छोटा भी नहीं, बड़ा भी नहीं, लोहित भी नहीं, स्नेह भी नहीं, छायायुक्त भी नहीं, अन्धकार भी नहीं, वायु भी नहीं, आकाश भी नहीं।' ''वह शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, गन्ध रहित है।'' इस प्रकार के वर्णन हमें कबीर की ब्रह्म–सम्बंधी वाणियों में प्रचुरता से प्राप्त होती हैं।

कबीर का ब्रह्म सर्व व्यापक है। वह घट–घट वासी है, वही खलक (जगत) का रूप धारण करता है, वही जीव है। उसको खोजने के लिए दूर नहीं जाना पड़ता। वे वेदशास्त्र आदि के पठन–पाठन एवं उसमें निहित आचरणों के पालन की निन्दा करते है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात है नहीं। इस विषय में उनका अपना दृष्टिकोण था। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि जरूरत पड़ने पर वे सभी के निन्दक थे और किसी के भी निन्दक नहीं थे। उन्होंने वेदशास्त्र और कुरान की भी निन्दा नहीं की। वे तो उनकी मर्यादाओं का आदर करते थे। इतना अवश्य है कि वे उन वेदपाठी पण्डितों एवं नमाजी मुल्लाओं के कट्टर विरोधी थे जो दूसरों को तो वेदशास्त्र और कुरान की शिक्षा देते थे और स्वयं उनसे कोसों दूर थे। सन्त अधिक पढ़े–लिखे तो थे नहीं, मात्र साक्षर भर थे, किन्तु वेदों का सारतत्व उन्होंने सत्संग से प्राप्त किया था। श्रवण एवं मनन में उनका पक्का विश्वास था। कबीर ने अपनी वाणियों में साफ–साफ कहा है कि वेदशास्त्रों में कही बात झूठी नहीं है। झूठे तो वो है जिन्होंने वेदों का सही मूल्यांकन नहीं किया। यहाँ उनका संकेत वेदपाठी पण्डितों की ओर ही है।

निःसन्देह कबीर की साखियाँ मानव के आत्म निरीक्षण के लिए अग्रेसित करती है शुद्ध एवं नैतिक आचरण करने के लिए बाध्य करती है। कबीर साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। 'सबद' का सामान्य अर्थ होता है– 'संतों की वाणी'। कबीर साहित्य में 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया गया है एक तो परमतत्व के अर्थ और दूसरा पद के अर्थ में किया गया है। कबीर ने शब्द को ब्रह्मा माना है। भारतीय आर्य ग्रन्थों में भी शब्द को ब्रह्मा कहा गया है। उन्होंने कहा है कि 'शब्द' ही 'ब्रह्मा' है। अतः शब्द की साधना करो। इसी शब्द से सभी उत्पन्न हुए है और इसी शब्द में सभी विलीन हो जायेंगे। इसी से यह संसार उत्पन्न है और इस संसार में जितना यह दृश्य जगत है इसी शब्द का विस्तार है। इस प्रकार कबीर ने 'सबद' का बहुत ही व्यापक अर्थ लगाया है यही सब कुछ है सब इससे उत्पन्न है और इसी में समाहित हो जायेंगे 'सबद' के बाहर कुछ नहीं है। कबीर ने अपने पदों में माया का उल्लेख किया है। माया को 'महाठगिनी' बताया है। माया मनुष्य के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। जो त्रिगुण फाँस लेकर सांसारिक प्राणियों को अपने चक्र में फँसाती रहती है। माया से बचने के लिए मात्र दो ही रास्ता है एक गुरू के प्रति हृदय में श्रद्धा होनी चाहिए और दूसरा आत्म ज्ञान की उत्पत्ति हो। दोनों के संयोग से ही माया रूपी बन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है। बीजक का एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में

संकलित 'रमैनी' जो दोहा चौपाई छन्द में रचित एक महत्वपूर्ण भाग है इसमें मुख्य रूप से सृष्टि और जीव तथा जगत की स्थिति पर विचार किया गया है जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह ने 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया है–

1. जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन हुआ हो।
2. परम तत्व में रमण कराने वाली और
3. एक छन्द विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती है।

यद्यपि 'बीजक' में जिसे ज्ञान चौंतीसा कहा गया हे और आदि ग्रन्थ में जिसे बावन आखिरी कहा गया हे उसे ही संवत् 1881 ई0 में लिखी हुई कबीर ग्रन्थावली की 'ख' प्रति में 'रमैनी' कहा गया है। कबीर की वाणी का इस तरह कोई विभाजन नहीं था। कालान्तर में अन्य ग्रन्थों के प्रभाव में आकर कबीर पंथियों ने इसके विभाजन का प्रयास किया और धीरे–धीरे बीजक की शाखा रमैनी के रूप में चौपाई छन्द का विधान किया। इसी पद्धति को आगे चलकर अन्य सूफी कवियों और तुलसी ने 'मानस' मं अपनाया है। इसलिए सन्त–कवि समाज को त्यागकर भी अपने को उससे अलग न रख सके। उन्हें देश की परिस्थितियां ने प्रभावित किया, उनकी लेखनी देशकाल से निरपेक्ष न रह सकी। सन्तों ने उन परिस्थितियों को देखा– सुना तथा लेखनी के माध्यम से अपनी विचारधाराओं को व्यक्त किया। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि सन्त–साहित्य केवल पारलौकिकता या आध्यात्मिकता का साहित्य है। सन्तों ने अपने काल की सामाजिक परिस्थितियों पर भी अपने विचार व्यक्त किये है।

भारत वर्ष में वर्ण और जाति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन काल में कर्म के आधार पर वर्ण को निर्धारित किया जाता था। परन्तु कुछ समय पश्चात् यह बन्धन दृढ़ तथा कठोर होता गया। उच्च वर्ण अर्थात् ब्राह्मण और पुरोहित–वर्ग प्रभुत्व तथा उनके द्वारा निम्न जातियों का शोषण क्रूर होता गया। भारत में इस्लाम के आगमन से पूर्व हिन्दू समाज चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभाजित था। विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, बाहू से क्षत्रिय, जंघे से वैश्य तथा पैरों से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई है। यह विभाजन मुख्यतः वर्ण, जाति एवं व्यवसाय पर आधारित था। कालान्तर में ये चार वर्ण अनेक वर्णों, जातियों एवं उपजातियों में बट गए। इनमें आपस में काफी विभिन्नता थी। धीरे–धीरे विघटनकारी शक्तियों के कारण समाज की आंतरिक शक्ति दुर्बल होने लगी परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था विकृत हो गयी और आश्रम व्यवस्था का भी ह्रास हो गया। प्रारम्भ में जो वर्गीकरण कार्य के विभाजन पर निश्चित किया गया था, आगे चलकर वह ऊँच–नीच की भावना से जन्म एवं सामाजिक श्रेणी के विभाजन के आधार हो गये। प्रारम्भ में शूद्रों की संख्या कम थी पर आगे चलकर उनकी संख्या बढ़ती गयी तथा उन पर अत्याचार होने लगे। उन पर अन्य उच्च श्रेणियों के व्यवसायों को अपनाने पर प्रतिबन्ध लग गया। इस प्रकार यह वर्ग समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। मध्यकाल में यह स्थिति और भी जटिल होती गयी। भारत की जनता दासता की श्रृंखलाओं में आबद्ध हो चुकी थी। उनके विकास मार्ग बन्द हो चुके थे तथा इस वातावरण में उनके विचारों की प्रगति अवरूद्ध हो चुकी थी। जिसके परिणामस्वरूप मनोवृत्ति की दासता तथा सामाजिक संकीर्णता विकसित हुई।

मध्यकाल सृष्टि के विकास क्रम से ही मनुष्य की आस्था और विश्वास का विकास प्रकृति से हुआ और यही तत्व कालान्तर में देवता के रूप में पूजे गये। मानवता के विकास से ही धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

धार्मिक धारणाओं जनजीवन में समादृत होती रही है। प्राचीन एवं अर्वाचीन मनीषियों ने धर्म को समय–समय पर व्याख्यायित किया है। धर्म ने मानव जीवन को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है और यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि एक समय ऐसा भी था। जब सब कुछ धर्म से ही नियंत्रित होता था। इस लोक और परलोक में सुखी जीवन बिताने की लालसा ने लोगों को धर्म के प्रति निष्ठावान बनाया। लोगों को यह विश्वास हो गया था कि धर्म उन्हें अनेक अनिष्टों से बचाता है। यह मान्यता प्रबल थी कि अदृश्य शक्तियां मनुष्य और मानवता को नियंत्रित करती है। जब कभी अनिष्ट होने की सम्भावना होती है तब धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है। धर्म के जीवन को शिव अर्थात् सदाचार पूर्ण, प्रेममय, सहनशील और न्याय, सुन्दर अर्थात् मनुष्य को अपने केन्द्र तथा आदर्श से च्यतु–स्थिति से ऊपर उठाकर सत्य या पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। भारतीय समाज धर्म से ही नियंत्रित था समस्त प्रजा एक सूत्र में निबद्ध थी। भारत वर्ष में सनातन धर्म की प्रतिष्ठा थी और जनता दोनो का आदर करती थी। सन् इसवी की छठी और सातवीं शताब्दी के आसपास एक ऐसी प्रवृत्ति का उदय हुआ। जिसने वेद को श्रेष्ठ कहा और अन्य मतों को नीचा दिखाने के लिए वेद बाह्य कहकर नकारने की पहल की। यह प्रवृत्ति धीरे–धीरे बढ़ती गई। सातवीं और आठवीं शताब्दी के आसपास तांत्रिकों में वेदविहित आचार को हेय घोषित करने की प्रवृत्ति तीव्र हुई। दशवीं शताब्दी के आसपास ब्राह्मण मत क्रमशः प्रबल होती गयी। हिन्दुओं का एक विशाल समुदाय तीर्थ स्नान, दान, पुण्य, व्रत,उपवास, स्वर्ग, नरक में आस्था रखता था। बौद्ध धर्म के बहिष्कार और अनुशासनों के कारण जात–पांत और छुआ–छूत के बंधन और कठोर हो गये। धर्म में अनेक रूढ़ियाँ प्रधान बन बैठी। भारत में प्रायः सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बारहवीं शताब्दी के अन्त तक राजपूतों का राज्य रहा। सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक अंग पर राजपूती छाप दिखायी देती है।

पुरातन समय में धर्म ही हमारी सभ्यता का मूलाधार रही है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, धर्म ही वह तत्व था जो समाज को नियंत्रित करता था। धर्म के अन्तर्गत उन सभी तत्वों का समावेश थाय अर्थात् सत्य, अहिंसा, दया, संयम, प्रेम, परोपकार, ब्रह्मचर्य का पालन तो था ही किन्तु सन्ध्या स्नान, ध्यान, जनेऊ धारण करना चोटी रखना ही धर्म बन गया था। कर्मकाण्ड का बोलबाला था। ब्राह्मण धर्म में कर्म की जटिलता का समावेश हो गया था। कबीर ने इसलिए कहा,

'मनु बूड़ा नहिं केश मुडाय।
मुड़मुड़ाया फल का बैठे, कानन पहरि भजसा।।'

कर्मकाण्ड धार्मिक भावना और साधना का बाह्य रूप है। कर्मकाण्ड किसी धार्मिक अन्धविश्वास पर आधारित नहीं होता है वह किसी धर्म का बाह्यमूलक प्रतीकात्मक योजना है। जब–जब भावमूलक प्रेरणायें कम होती है। साधारण लोक अन्ध–विश्वास को महत्व देता है। अन्ध–विश्वास के परिणाम स्वरूप टोना–टोटका, भूत–प्रेत, पी–पैगम्बर, पूजा–रिवाज, तीर्थ–व्रत और पाखण्ड को बढ़ावा मिलता है। ब्राह्मण, मुल्ला, शास्त्री, पंडितों का वर्चस्व बढ़ता है। कबीर और परवर्ती संतों ने इसी कर्मकाण्ड का विरोध किया। कबीर ने पंडितों पर व्यंग्य करते हुए कहा पण्डित वेद पढ़कर आत्म ज्ञान को भूल गये। गायत्री का जाप चार युगों तक किया, किन्तु मुक्ति नहीं मिली। रोजा और नवाज के बाह्यडम्बर पर भी संतों ने कटाक्ष किया उन्होंने कहा ''कंकड़ और पत्थर की मस्जिद में खड़े होकर आवाज देना कहाँ तक उचित है, क्या खुदा बहरा हो गया।'' इसी प्रकार पण्डितों के त्रिपुण्ड धारण पर भी कबीर ने करारा प्रहार किया, ''जप माला छापा तिलक''। कबीर का उद्देश्य समाज में फैले

पाखण्ड को मिटाने का प्रयास करना था। धर्म के दिखावटी व्यवहार का विरोध किया। उनका मानना था कि इन आडम्बरों के कारण धर्म का वास्तविक रूप आँख से ओझल हो जाता है।

संतों ने शूद्र के शूद्रोद्धार के लिए अपने लोकगीतों का विषय दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम वे लोक गीत जिनमें उच्च वर्णों की तुलना में निम्न वर्ग को अधिक धर्म एवं कर्त्तव्यपरायण सिद्ध किया गया है तथा निम्न वर्ग के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे भाग में वे लोक गीत है जिनमें सीधे शब्दों में जाति वर्णादि की आलोचना करते हुए शूद्र वर्ण को अन्य वर्णों के समान ही पवित्र और सद्भावना युक्त बताया गया है। इस दृष्टि से कबीर और रविदास के पद बहुत जनप्रिय है। कबीर ने निचली जातियों को समान स्तर पर लाने के लिए संगत अर्थात् सत्संग की महिमा का गान किया, जिससे ईश्वरीय ज्ञान और भक्ति की प्रेरणा मिलती है एवं दुःखों का विनाश होता है। संत जन सत्संग के माध्यम से शूद्रों में सुबुद्धि एवं समत्व बुद्धि जागृत करते है, भाव भक्ति का वरदान देते हैं तथा प्रम, विश्वास, ज्ञान, आत्म–विचार की प्रेरणा भी देते है। यदि समाज से ऊँच–नीच की भावना समाप्त हो जाए तो संघर्ष एवं प्रतिशोध भी समाप्त हो जाए एवं सुख–शान्ति का पूर्णरूप से विकास हो जाए। हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष के उस युग में इस प्रकार के उपदेशों ने धर्म तथा मानवता की गरिमा बनाये रखने में सहयोग दिया तथा जनता की विचारधारा को एक नवीन दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार कबीर ने मानव मात्र की एकता एवं समानता पर जोर देते हुए शूद्रों के साथ दुर्व्यवहार रोकने का प्रयास किया। उन्होंने न केवल शूद्रों की सामाजिक दुःस्थिति के प्रति चिन्ता और असंतोष व्यक्त किया। अपितु ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर तीव्र प्रहार भी किया। उन्होंने शूद्रों के शूद्रोद्धार के अनेक पद एवं साखियों की रचना करके निम्न जातियों में साहस, विश्वास एवं बल को बढ़ावा दिया।

संदर्भ सूची :–

1. जयशंकर मिश्रा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 699–700,755
2. अशोक कुमार सिंह (संपा0) मुशीदेवीप्रसाद कृत औरंगजेबनामा (जयपुर, 2001), पृ0 7
3. जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, (जयपुर, 1985) पृ0 94–101
4. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, पृ0 247
5. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ0 589
6. रघुबीर सिंह व मनोहर सिंह राणावत (संपा0) मुशीदेवी प्रसाद कृत शाहजहाँनामा, (जयपुर, तिथि रहित), पृ0 67
7. बनारसी प्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ आफ देलही, (इलाहाबाद, 1958), पृ0 208–209
8. इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, (1556–1707), (नई दिल्ली, 1999), पृ0 364
9. अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा, (अंग्रेजी अनु0) इलियट व डाउसन, भारत का इतिहास, भाग–7, (आगरा, 1972), पृ0 19–20य
10. इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 115
11. आर0पी0 त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुगल इम्पायर, पृ0 390
12. इरफान हबीब (संपा0), अकबर और तत्कालीन भारत (अनु0) नरेश नदीम, नई दिल्ली 2005, पृ0 20

13. रघुबीर सिंह (संपा0) मुंशविदेवी प्रसाद कृत जहाँगीरनामा, (जयपुर, 1996), पृ0 16, 19–33
14. अबुल फजल, अकबरनामा, भाग–2 (अनु0) एच0 बेवरीज, (कलकत्ता, 1902), पृ0 203–4
15. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, (इलाहाबद, 1962), पृ0 79
16. डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड, फ्रम अकबर टू औरंगजेब, (लन्दन, 1923 ई0), पृ0 15
17. वही, पृ0 458,' परमात्मा सरन, स्टडीज इन मेडिवल हिस्ट्री, (दिल्ली, 1952) पृ0 49
18. परमात्मा सरन, इस्लामिक पोलिटी, (इलाहाबाद तिथि रहित), पृ0 55–59
19. अब्बास खान सरवानी तारीखे शेरशाही, पृ0 757य के0आर0 कानूनगो, शेरशाह, (कलकत्ता, 1922), पृ0 370–73
20. अब्बास खान सरवानी, तारीखे शेरशाही, पृ0 787य एस0वी0पी0 निगम, सूरवंश का इतिहास, (दिल्ली, 1973), पृ0 236
21. राधेश्याम, शेरशाह, (श्याम प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996) पृ0 114
22. एस0वी0पी0 निगम सूरवंश का इतिहास, पृ0 115
23. अब्बास खान सरवानी, तारीखे शेरशाही (ढाका, 1964), (अंग्रजी अनु0) बी0पी0 अम्बष्ट, (पटना 1977), पृ0 445
24. डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड, ऐग्ररियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, पृ0 66
25. रश बुक विलियम, ऐन इम्पायर बिल्डर ऑफ दी सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, (लन्दन, 1918), पृ0 162
26. सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, मुगल कालीन भारत बाबर, (अलीगढ़, 1960) पृ0 232–237
27. बाबर, बाबरनामा, (अनु0) बेबरीज, भाग– 1–2 (लन्दन, 1921), पृ0 481
28. आर0पी0 त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल आव दि मुगल इम्पायर, (इलाहाबाद, 1956), पृ0 35
29. अब्दुल्ला, तारीखे दाऊदी (अनु0), सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग–1 (अलीगढ़ 1958), पृ0 222, 227, 228, 280
30. हबीब व निजामी (संपा0), दिल्ली सल्तनत, भाग–1, पृ0 594
31. ए0 रशीद, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, (कलकत्ता, 1969), पृ0 223–224
32. आर0सी0 मजूमदार और एच0सी0 मजूमदार और एच0सी0 राघवाचारी, ऐन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (मद्रास, 1946), पृ0 342
33. अब्दुला, तारीखे दाऊदी, (अलीगढ़, 1958), पृ0 59–60
34. हबीब व निजामी (संपा0) दिल्ली सुल्तनत, भाग–1, पृ0 483
35. शरफुद्दीन अली यजदी, जफरनामा, मौलवी मुहम्मद इलाहाबाद (संपा0) (कलकत्ता, 1889), पृ0 15
36. अशोक कुमार सिंह, सल्तनत काल मं हिन्दू प्रतिरोध, पृ0 325
37. उमेश सिंह, कबीर का काव्य एवं लोकजीवन, पृ0 9

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 208-213

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भाव एवं अनुभूति के परिप्रेक्ष्य में लम्बी कविताओं का वस्तु विधान : समाज चित्रण

अनिता मिश्रा, शोध प्रज्ञ,
डॉ० मणि कान्त ठाकुर, सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

हमें ऐसे धर्म को अपनाना चाहिए जो किसी संप्रदाय विशेष से संबंधित न होकर भाईचारे, प्रेम व मनुष्यता से संबंधित हो। जो मनुष्य को सही दिशा दिखाते हुए उसका मार्गदर्शन कर सके। कट्टरता फैलाने वाले धर्म को कवि प्रगति–पथ में बाधक मानते हैं। अतः मानवता पर आधारित धर्म व संस्कृति ही मनुष्य के लिए हितकर हैं और मनुष्य को सुव्यवस्थित बनाने में सहायक है।

'मानव' को उसके गुणो, जैसे–करूणा, ममता, प्रेम, सेवा, दया, क्षमा, सहनशीलता, संयम, अहिंसा, त्याग इत्यादि के आधार पर सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। उपर्युक्त शाश्वत् गुणो का विकास होने पर ही एक व्यक्ति सच्चे अर्थो में मानव बन पाता है और समूचे संसार के लिए कल्याणकारी साबित होता है। मानव धर्म क्या है 'धर्म' शब्द सुनते ही हमारे जहन में मंदिर, मस्जिद, चर्च, इत्यादि की तस्वीर छा जाती है। जबकि धर्म तो इस संकीर्ण मानसिकता से परे, बहुत पवित्र भावना है जिसमें हर तरीके के बंधनों को नकार कर संपूर्ण वसुधा को अपना परिवार माना जाता है। सभी धर्मों में सर्वोपरि मानव धर्म होता है जिसका न कोई मजहब होता है और न ही संप्रदाय। उसकी तो बस एक ही पहचान है – मानवीय एकता।

मनुष्य को संवेदनशील इंसान होना चाहिए ताकि वह दूसरों के दुःख–दर्द, खुशी को समान भाव से समझ सके और उनका साथ दे सके। परंतु अपनी व्यस्त दिनचर्या और जीवनशैली के कारण वह अपनी मानवीय संवेदनशीलता को खोता जा रहा है। कवि नागार्जुन अपनी कविता के माध्यम से समाज को संदेश देना चाहते हैं कि हमें सबके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए, उनकी भावनाओ को समझने का प्रयास करना चाहिए। 'हरिजन–गाथा' में नवजात शिशु के विषय में वे कहते हैं कि यह सबके सुख–दुःख साझा करेगा और अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए समानता का व्यवहार रखेगा। कविता का एक अंश देखिए –

"सबके दुख में दुखी रहेगा
सबके सुख में सुख मानेगा
समझ–बूझकर ही समता का

असली मुद्दा पहचानेगा।'

वस्तुतः सांप्रदायिकता और विभाजन के खून में यदि कोई लहूलुहान हुआ तो वह था – देश का आम आदमी। यही वह वर्ग था जिसने बँटवारे का डटकर विरोध किया क्योकि जनसामान्य सदैव आपसी प्रेम, भाईचारे और सद्भाव से जीवनयापन करते हुए देश को एकता और अखंडता के सूत्र में बाँध कर रखना चाहता था। ''एक केन्द्रीय विचार और भीतरी तनाव पूरी कविता को अन्तः सूत्रित किये हुए हैं, जिससे कटु यथार्थ अपने व्यापक फलक पर मानवीय संवेदनाओ को गहराता है।'' इस दिशा में सफलता पाने के लिए उसने अनेक प्रयास भी किए। कवि देश को संगठित रखने के लिए युसुफ द्वारा किए गए प्रयासों को चित्रित करते हुए अपनी कविता 'एक अग्निकांड जगहें बदलता' में कहते हैं –

''पुलो की हिफाजत में तकरीरें देता
मीटिंगे करता
संगठित करता लोगो को।''

मनुष्य का अतीत काफी हद तक जिम्मेवार होता है, उसके वर्तमान के लिए। नरेन्द्र मोहन की कविता में काव्य नायक युसुफ विभाजन पूर्व एक हँसमुख और जिंदादिल इंसान होता था। जिसकी बेखौफ हँसी से दीवारें भी काँप उठती थी। उस हँसी में एक जोश, जुनून और जज्बा था, जीवन–मूल्यों का समावेश था। दूसरो को खुश करने, उनकी मदद करने का भाव समाहित था। कविता का एक अंश देखिए जहाँ युसुफ का यह दृष्टिकोण उजागर होता है –

''हाँ, मैंने उसे देखा था
वर्षों पहले जोर–जोर से हँसता
उसकी हंसी से कांपने लगती थी दीवारें
हंसी जो एक चेतना–सी जज्ब हो जाती है चीजों में
चीजों का हिस्सा बन और छा जाती है सभी पर एक जुनून–सी
इजहार करती जीवन से बड़े मूल्य की कल्पना का।''

प्रत्येक मनुष्य का व्यवहार ही उसके सफल जीवन का मापदंड होता है। समाज में रहते हुए उसे सामाजिकता को अपनाना पड़ता है और यह सामाजिकता विवशता के रूप में न होते हुए निष्ठा व समझ के आधार पर होनी चाहिए। अपनी लंबी कविता के केन्द्रीय पात्र 'नगई' के माध्यम से कवि मानवीय संबंधो की जटिलता को अभिव्यक्त करते हुए समाज को संदेश देने का प्रयास करते हैं कि एक समझदार इंसान का बात करने का तरीका, उसका व्यवहार ही उसकी असल पहचान होती है और अपने व्यवहार के बलबूते ही वह समाज के अन्य लोगो से अपना जुड़ाव कायम कर पाता है। सम्मान व प्रेम के भाव को सर्वोपरि मानते हुए त्रिलोचन कहते हैं –

''आदमी बात से व्यवहार से
पहचान जाता है

समझ ही

आदमी को आदमी से जोड़ती है।''

व्यक्ति एवं समाज संवेदनशील होता है। उसमें विवेक होता है – सही और गलत के बीच फर्क करने का, मानवता को ध्यान में रखते हुए सही निर्णय लेने का। कोई भी देश, राज्य या नगर इतना गैर–जिम्मेदार नहीं होता कि हकीकत देखते, जानते हुए भी उसे नजरअंदाज कर दे। जिसका प्रभाव वहाँ की समस्त जनता को भुगतना पड़े। ''इसलिए इस शोर की कई पर्ते हैं। इन चौराहों पर बाये चलने की बात कही गई है। कवि के अनुसार बाएं चलने का अर्थ उस व्यक्तित्व के विरूद्ध चलना है जो अमानवीय है, सत्तापरक है, जो बाहर का है। इस प्रकार कविता मानवीय पक्ष की पक्षधर बनती है।'' 'उपनगर में वापसी' लंबी कविता में कवि बलदेव वंशी स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं –

''कोई भी नगर ऐसा नहीं होता

और जब भीतर आग लगी हो

चुपचाप नहीं सोता।''

इस कविता में, नगर के बनने और विकसित होने के दौरान मानव–जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। ''जिसमें बाह्य दृष्टि से शहरीकरण, आधुनिकीकरण होता रहा है और अन्त रुप में व्यक्ति मानवतावादी धारणाओं, मूल्यों और व्यवहारों को त्यागकर मानवघाती होता चला गया है। इसलिए यह वापसी उस पक्ष की ओर है जो मानवता का समर्थक है।'' 'एक अग्निकांड जगहें बदलता' नामक लंबी कविता में अपना सर्वस्व खोने के पश्चात् एक दिन युसुफ को २० वर्ष पुराना विष्णु नाम का अपना एक साथी मिलता है जो अतीत में आजादी पाने के लिए संघर्ष कर चुका एक इंकलाबी व्यक्ति था परंतु आज उसकी आँखो में, जुनून और उत्साह नजर नहीं आ रहा था। निराशा की वास्तविक वजह जानने पर उसे कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिलता। फिर दोनो अपने हालातों को भूलकर हँसने लगते हैं। यहाँ युसुफ और विष्णु दो विभिन्न धर्मों से संबंधित होने के बावजूद मानवता को सर्वोपरि मानकर उसका प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति बनकर आए है। ''विभाजन की त्रासदी को नाटकीय मोड़ देते हुए कवि ने अमानवीय स्थितियों में से मानवीय तथ्य को खोजने की जटिल संघर्ष–गाथा को अभिव्यक्ति दी है।'' दो मित्रों का धर्म से ऊपर उठकर इंसानी रिश्ता दर्शाते हुए कवि कहते हैं –

''तभी उसे विष्णु मिला था

बीस साल पहले का साथी

चमकती आँखो वाला इन्कलाबी

उनके ग्रुप का सरगना

आजादी का परवाना

'क्या हुआ है उसे

आंखे बुझी–बुझी–सी क्यों है'

पूछता है युसुफ

'क्या हुआ है उसे
पेड़ स्याह क्यो दिखता है'
पूछता है विष्णु
और दोनो ठहाके लगाते
मस्ती में झूमते कब
एक फर्लांग लम्बी खूनी बाजार की नोक पर पहुच गये
उन्हें पता न चला।''

अतः कह सकते हैं कि जाति, धर्म, संप्रदाय के आधार पर होने वाला पक्षपातपूर्ण व्यवहार व्यक्ति की संकीर्ण विचारधारा स्वरूप उत्पन्न एक गलत दृष्टिकोण है, जिसे त्यागकर ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को प्रचारित–प्रसारित किया जा सकता है।

मानव जीवन के लिए, समाज एवं राष्ट्र के लिए जो कुछ शुभ, कल्याणकारी, आदर्श एवं ग्रहण करने योग्य हो, जीवन–मूल्य कहलाता है। नीतिशास्त्र में यह किसी चीज, क्रिया या व्यवहार की महत्ता को दर्शाता है। जीवन मूल्य व्यक्ति को सकारात्मक बनाते हैं। विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए सही व गलत को परख कर ही हमें जीवन मूल्यो का निर्धारण करना चाहिए। इन जीवन मूल्यो में बड़ो के प्रति आदर, सम्मान का भाव, छोटो के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार, उनकी देखभाल, बड़े–बुजुर्गों की ज्ञानपूर्ण बातें मानना, देश प्रेम इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। जीवन मूल्यों में नैतिक के साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को भी स्थान दिया गया है।

जीवन मूल्य अस्थिर होते हैं। ये युगीन विचारधारा से प्रभावित होकर परिवर्तित होते रहते हैं। इनमें से कुछ मानवीयता के संदर्भ में शाश्वत् होते हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं विचारधारा के परिणामस्वरूप आध्यात्मिकता का असर भी यहाँ देखने को मिलता है। अतः जीवन मूल्यों के अंतर्गत मान्यता प्राप्त लक्ष्यो व सामूहिक धारणाओ को सर्वोपरि माना जाता है। अतः आर्थिक संवेदनाओ के अंतर्गत समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को आधार बनाकर आम आदमी की दयनीय स्थिति के लिए शोषण वर्ग को जिम्मेवार ठहराया गया है। भुखमरी, बेरोजगारी आदि अनेक समस्याओ के कारण समाज में अमीर और गरीब का भेदभाव देखने को मिलता है।

भारत देश स्वतंत्रता के पश्चात् भी आर्थिक विषमता का दंश झेलता रहा। परिणामस्वरूप बहुसंख्यक आबादी अभावो भरा जीवन जीने के लिए अभिशप्त थी। अर्थ के कारण ही समाज में वर्ग व्यवस्था पनपी – एक शोषक वर्ग एवं दूसरा शोषित वर्ग। पहले वर्ग में, पूंजीपति, व्यापारी, जमींदार आदि अर्थ संपन्न लोगो को शामिल किया जाता है तथा दूसरे वर्ग में गरीब, किसान, मजदूर आदि कमजोर तबके के लोगो को। पहले वर्ग के लोग, दूसरे वर्ग के लोगो का यथासंभव शोषण करते हैं तथा उसी शोषण के बल पर अपने लिए सुख–सुविधाएँ एवं ऐश्वर्य कमा पाते हैं। इस प्रकार, अवैध तरीके से धन कमाने के कारण अमीर–गरीब के बीच की यह खाई और गहराती जाती है। अमीर जरूरत से अधिक कमाई करके अमीर होता जाता है और गरीब के हालात बद से बदत्तर होते जाते हैं। वह अपनी न्यूनतम दैनिक आवश्यकताओ को पूरा करने में भी असफल होता है।

आर्थिक दबाव से पिसकर आम आदमी परिस्थितियों से लड़ रहा है किंतु इस संघर्ष ने उसे शक्तिहीन कर दिया है। इस आर्थिक असंतुलन से मनुष्य और मनुष्य की बीच संबंधो में खटास आ रही है। समाज में व्याप्त इस अव्यवस्था के लिए मात्र पूँजीपति, अमीर वर्ग व राजनेताओ को दोषी नहीं ठहराया जा सकता अपितु निर्विरोध अन्याय को सहने वाला, अपने अधिकारों से अनभिज्ञ वर्ग भी बराबर जिम्मेवार है।

देश में राजनीतिक एवं सामाजिक खामियों के साथ–साथ आर्थिक अव्यवस्था भी चरम पर थी। रूपये के अवमूल्यन से देश के आर्थिक हालात खराब होते जा रहे थे। भारत में मुद्रा की विनिमय पर अन्य देशो की मुद्राओ से कम कर दी गई ताकि देश में निवेश को बढ़ावा मिल सके और मुनाफा कमाया जा सके। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में क्रमशः सन् १९४९, १९६६ तथा १९९१ में रूपये का अवमूल्यन हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. रामविलास शर्मा, राग विराग, पृ० ९२
2. आलोक धन्वा, दुनिया रोज बनती है, पृ० ३२
3. आलोक धन्वा, विचार और लहर के बीच, पृ० १०३
4. लीलाधर जंगूड़ी, नाटक जारी है, पृ० १०५
5. नन्दकिशोर नवल, निराला रचनावली–१, पृ० २८३
6. वही, पृ० ३०३
7. रामविलास शर्मा, राग विराग, पृ० १५७
8. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य, पृ० ६६
9. रामविलास शर्मा, राग विराग, पृ० १४५
10. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य, पृ० ४२८
11. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य, पृ० ७३
12. वही, पृ० ६७
13. गणपति चंद्र गुप्त, साहित्य शैली के सिद्धांत, पृ० १४०
14. मंजुला पुरोहित, नयी कविता : संवेदना और शिल्प, पृ० ७३
15. जयनाथ नलिन, साहित्य का आधार दर्शन, पृ० १८०
16. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० २४४–२४५
17. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढा है, पृ० २४९
18. नरेश मेंहता, दूसरा सप्तक, पृ० १२६
19. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृ० १६८
20. राजकमल चौधरी, मुक्ति प्रसंग, पृ० १०
21. सुमित्रानंदन पंत, आधुनिक कवि (पर्यालोचन), पृ० १७
22. शिवशंकर पाण्डेय, स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी कहानी : कथ्य और शिल्प, पृ० १५९

23. मंजुला पुरोहित, नयी कविता : सरोकार और शिल्प, पृ० ६६
24. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग–१, पृ० १४५
25. रामधारी सिंह 'दिनकर', चक्रवात, पृ० ७३
26. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, पृ० ४५६
27. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, पृ० १४
28. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य (अलविदा), पृ० १७६
29. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य (कुआनो नदी), पृ० १६४
30. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य (बलदेव खटिक), पृ० ४३४
31. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ० १३
32. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं : बीसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य (एक अग्निकांड जगहें बदलता), पृ० २४६
33. नरेश में हत्ता, दूसरा सप्तक (समय देवता), पृ० १२०
34. नरेन्द्र मोहन, लम्बी कविताएं, पृ० ४७

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 214-222

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैहर घराने का इतिहास एवं संगीत परम्परा

धीरज कुमार गुप्ता, शोध प्रज्ञ,
डॉ० रूपा सिन्हा, विभागाध्यक्ष,
संगीत विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

मैहर घराना अपेक्षाकृत नया घराना है, इसे उन्नीसवीं सदी में बनाया गया था, लेकिन इसमें उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का योगदान इतना जबरदस्त था कि उन्हें अक्सर इसका संस्थापक माना जाता है। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने इसे ऐसा आकार दिया जो कि मियां तानसेन के सेनी–बीनकार घराने की गहराई से प्रभावित है, जो आपके गुरु उस्ताद वजीर खाँ से संबंध्ति है।

यह उन गिने–चुने घरानों में से एक है, जिनमें संगीत की परम्पराओं को पीढ़ियों से पारित करना केवल परिवार के सदस्यों तक ही सीमित नहीं रहा है, बल्कि गुरु–शिष्य परम्परा के अनुसार अधिक संचालित किया गया। बाबा ने मैहर को भारतीय शास्त्रीय संगीत में एक घराने और उत्कृष्टता का स्थान बना दिया। शायद यही कारण है कि मैहर भारत का एकमात्र स्थान है, जहां रेलवे स्टेशन पर एक विशाल पट्टिका है जो कि शहर के महत्त्व की बात करता है।

मैहर घराने की शुरुआत १९१८ ईस्वी में हुआ, जब मैहर के शासक महाराजा बृजनाथ सिंह जी ने उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को रामपुर आमंत्रित किया और उन्हें अपने दरबार में दरबारी संगीतकार के रूप में विराजमान किया। तकनीकी रूप से कहें तो, मैहर घराना उससे पहले पिछले महाराजाओं के संरक्षण में अस्तित्व में था, लेकिन उलाउद्दीन खाँ साहब ने अपना इतना बड़ा योगदान दिया कि उसके बाद घराने का श्रेय उन्हें और उनके वंश को दिया जाता है। जल्द ही वे न केवल अपने शिष्यों के लिए, बल्कि मैहर के आम लोगों के लिए भी 'बाबा' बन गए।

बाबा के मैहर स्थित घर में उनके कमरे में, स्पष्ट रूप से,चित्रों से भरी दीवारें हैं जिसमें उनके गुरु वजीर खाँ के अलावा विवेकानंद,माँ सरस्वती,टैगोर और बीथोवेन भी मौजूद हैं। उनकी सार्वभौमिकता उनके द्वारा बनाए गए घराने पर परिलक्षित होती है। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के गुरु वजीर खाँ तानेसन की बेटी के परिवार के वंशज थे,जो वीणा वादक थे और बीनकार के नाम से जाने जाते थे। इस प्रकार मैहर घराने को अक्सर तानसेन से अपनाकर 'सेनी मैहर घराना' कहा जाता है और बीनकारों की संगीत परंपरा के साथ पहचाना जाता है।

मैहर का नाम आते ही संगीत प्रतिभाओं की लंबी सूची सामने आ जाती है, जिन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत को अंतर्राष्ट्रीय गौरव तक पहुँचाया। सितार वादक पंडित रविशंकर और पंडित निखिल बनर्जी, सरोद जादूगर उस्ताद अली अकबर खाँ, बहादुर खाँ, शरण रानी, सुरबहार गुणी अन्नपूर्णा देवी, बांसुरी वादक पन्नालाल

घोष और वायलिन वादक वी० जी० जोग,यहां तक कि पंडित हरिप्रसाद चौरसिया भी इस छोटी सीरियासत के लिए अपने विशाल संगीत वंश का श्रेय देते हैं। अलाउद्दीन खाँ और उनके प्रसिद्ध शिष्यों का पर्याय, मैहर का छोटा शहर हर छिद्र से संगीत की सांस लेता है। यह उन कुछ घरानों में से एक हैं जहाँ पीढ़ीगत परिवर्तन परिवार के सदस्यों के माध्यम से नहीं बल्कि गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा होता है। सितार, सरोद, सुरबहार, बांसुरी और वायलिन में कलाकारों का निर्माण करने वाला एक और घराना खोजना भी मुश्किल है।

इस सूची में गिटार और उसके अन्य संस्करण, मोहन–वीणा को जोड़े, क्योंकि पंडित बृजभूषण काबरा और विश्वमोहन भट्ट दोनों महान कलाकार मैहर घराने से हैं।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जीवन एक साधक का जीवन था। उनकी संगीत साधना,'सादा जीवन उच्च विचार'के सनातन आदर्श पर आधरित थी। उ० अलाउद्दीन खाँ का जन्म पूर्वी बंगाल के को मिला जिले के शिवपुर गाँव में हुआ था और उन्होंने आठ वर्ष की आयु में ही,संगीत की तलाश में घर से भाग जाने का फैसला किया। उ० अलाउद्दीन खाँ शिवपुर से नारायणगंज पहुँचे और गाने–बजाने वाले एक दल के साथ जुड़ गए क्योंकि बचपन से ही आपका मन पढ़ाई–लिखाई में नहीं लगा,अपने बचपन से ही आपको लगातार अपने पिता सोदू मियां से सितार सुनने का अवसर मिला। इनके पिता सोदूमियां अव्यवसायी सितार वादक थे जिन्होंने कासिम अली खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी,जो कि उस्ताद वजीर खाँ के मामा थे।

अलाउद्दीन खाँ बार–बार उन्हें सुनने का अवसर प्राप्त करते इसी वजह से उनके बालमन पर एक संगीतमय छाप पड़ी। घर छोड़ने के पश्चात्जिस संगीतिक दल के साथ उ० अलाउद्दीन खाँ जुड़े थे उसमें बंगाल का स्थानीय ताल वाद्य ढोल अकसर बजाया जाता था और साथ में कुछ प्रचलित वाद्य जैसे हारमोनियम, तबला, क्लेरिनेट, ट्रम्पेट, पखावज इत्यादि, अलाउद्दीन खाँ ने इसी दल में रहकर ये सब वाद्य प्रारंभिक तौर पर बजाने सिखे और इसी दल में यात्रा करते हुए वे ढाका पहुंचे और फिर ढाका से कलकत्ता। कलकत्ता में उनकी भेंट महाराज ज्योतिन्द्र मोहन ठाकुर के दरबारी संगीतज्ञ नुलोगोपाल से हुई और वही आश्रय पाकर आपने अपने गुरु से शिक्षा प्राप्त करी। नुलोगोपाल ने उन्हें लगभग सात वर्षों तक सरगमत थातीन सौसाठ पलटे सिखाये। इसके उपरांत आपके गुरु की मृत्यु हो गयी परंतु उ० अलाउद्दीन खाँ की संगीत सीखने और उसकी साधना करने की लगन ऐसी थी कि उन्होंने अपने जीवन का हर पल संगीत को समर्पित करना शुरू कर दिया था।

इसके बाद अलाउद्दीन खाँ ने हाबुदत्ता से वायलिन और कौरनेट की शिक्षा प्राप्त की। इस समय से आपकी वाद्य संगीत की पारम्परिक शिक्षा प्रारम्भ हुई। उ० अलाउद्दीन में इतनी लगन थी कि उन्होंने कठोर साधना से एक–एक कर अनेकों गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की जैसे – नंदबाबू से मृदंग, मिस्टर लोबो, जो कि गौवानिस बैंड़मास्टर थे ईडन गार्डनस में, उनसे वैस्टर्न म्यूजिक नौटेशन, दारिज परा से वैस्टर्न कौरनेट, इड़ियन स्टाईल वायलिन अमरदास से, उस्ताद हजारी से शहनाई, नगाड़ा, जगझंपा इत्यादि। विभिन्न शिक्षकों से एक साथ इतने सारे वाद्ययंत्रों और रूपों में महारत हासिल करना निःसंदेह उ० अलाउद्दीन के लिए, अपनी युवावस्था में एक बहुत ही कठोर अनुभव था। उ० अलाउद्दीन का संगीत प्रेम उन्हें संगीत पारखी, राजा जगत किशोर आचार्य के पास ले गया,जहाँ राजा साहेब ने उनकी ज्ञान–प्राप्त करने की व्यग्रता और उत्साह को देखकर अपने समय के उत्कृष्ट सरोद वादक उ० अहमद अली से उनकी सिफारिश की। राजा के अनुरोध्त था अलाउद्दीन की प्रतिभा को देखते हुए अहमद अली ने उन्हें अपना शिष्य बनाया। इसके उपरांत अलाउद्दीन खाँ ने रामपुर जाकर

बहुत मुश्किलों का सामना कर उस्ताद वजीर खाँ का सान्निध्य गुरु के रूप में प्राप्त किया और विधिवत शिक्षा प्राप्त की।

तरुण अवस्था में उस्ताद अलाउद्दीन ने कलकत्ता में कई गायक–वादकों से संगीत सीखा तथा लेकिन संगीत में उनकी लम्बी शिक्षा–दीक्षा रामपुर में ही हुई। वे सेनिया बीनकार एव म्नवा बरामपुर के गुरु मोहम्मद वजीर खाँ के शिष्य बने। रामपुर निवास काल के आरम्भ से लेकर अंत तक वे वजीर खाँ साहेब से तालीम पाते रहे। वजीर खाँ सदारंग के वंशज थे। सदारंग तानसेन के समकालीन बीनकार मिश्री सिंह के वंशज थे, जो आगे चलकर नौबत खाँ के नाम से जाने गए मिश्री सिंह अर्थात् नौबत खाँ वीणा वादक थे। तानसेन के वंशज ध्रुपद गायक यारबाब वादक होते थे और सदारंग जी के वंशज बीनकार एवं ध्रुपद गायक हुए हैं। ध्रुपद गायक, रबाबियों एवं बीनकारों के बीच दो परम्परा और घराना रहने के बावजूद दोनों में गहरा संबंध सैकड़ो वर्षों से रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन दोनों वंशों में बराबर वैवाहिक संबंध होता आया है।

संगीत के लिए उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की तड़प और उनका योगदान ही उन्हें पूर्वी बंगाल की एक अनजानी जगह से रामपुर ले गयी और कई वर्षों की कड़ी तपस्या के बाद उनके गुरु उस्ताद वजीर खाँ ने उन्हें बाहर जाने और योग्य शिष्यों में संगीत बाँटने को कहा। जिसके बाद कलकत्ता के एक सुप्रसिद्ध हारमोनियम वादक रईस श्यामलाल खत्री ने उन्हें मध्यप्रदेश की एक छोटी–सीयासत मैहर में नौकरी दिलाने की पेशकश की क्योंकि मैहर के माहराजा ब्रिज नारायण सिंह जी ने ही अपने मित्रा श्यामलाल खत्री से किसी ऐसे सिद्दहस्त संगीतज्ञ की तालाश करने को कहा था जो उन्हें गाना और विभिन्न वाद्य यंत्रा बजाना सिखा सके। इस तरह अलाउद्दीन खाँ साहब मैहर के राजगुरु और प्रमुख दरबारी संगीतकार बन गए और अपनी अंतिम साँस तक वहीं के होकर रहे। बाबा अलाउद्दीन 1918 से अपनी मृत्यु तक मैहर में रहे। 1955 में उन्होंने मैहर कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना की। उन्हें 1952 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 1958 और 1971 में पद्मभूषण और पद्मविभूषण भारत का तीसरा और दूसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान दिया गया।

मैहर शैली को मुख्य रूप से ध्रुपद अंग द्वारा सूचित किया जाता है, जो कि विस्तृत आलाप (आत्म निरीक्षण प्रदर्शनी) और विभिन्न संगीत स्रोतों के सम्मिश्रण एवं मींड पर आधरित है। जैसा कि पुरानी रिकॉर्डिंग प्रदर्शित करती है, पहले के संगीतकारों ने राग के केवल कुछ पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया था–उदाहरण के लिए, वाद्यों पर कोई आलाप नहीं था और अधिकांश वाक्यांश और तान नीरस 'दिरी–दिरी' में बजाए जाते थे। नसपाट तान थे और नही दीर्घ मींड। लेकिन उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने सुर सिंगार, सुरबहार, वीणा, सितार और सरोद की शैली को अन्य वाद्य यंत्रों से परिचित कराने का बहुमूल्य योगदान दिया और इन सभी तकनीकों को मैहर घराने के संगीत में एक रचनात्मक आयनीकरण में समाहित किया गया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ बाएँ हाथ से वाद्य बजाया करते थे और बाएँ हाथ के वादक होने के कारण उनका सरोद अलग था, बिल्कुल बाएँ हाथ के गिटार की तरह। इसलिए, उन्होंने कभी भी अपने शिष्यों को यह नहीं दिखाया कि सामान्य सितार या सरोद कैसे बजाया जाता है। वह कई बार गाते और समझाते थे। आपके शिष्यों के पास अपने वाद्य पर इसकी व्याख्या और पुनरुत्पादन करने की स्वतंत्रता थी इसीलिए मैहर का प्रत्येक कलाकार संगीत की दृष्टि से अद्वितीय है। वे एक दूसरे की तरह नहीं बजाते, जैसे कि पंडित रविशंकर की चकाचौंध में भी पं० निखिल बनर्जी का सितार वादन विशिष्ट रूप से उनका ही था। लेकिन दोनों ही मैहर के एक विशिष्ट ध्रुपद प्रभाव राग का विस्तार करते हुए

निचले सप्तक पर अधिक समय तक रहना पसंद करते थे। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जब रामपुर में रहते थे तब वे जो भी अपने उस्ताद वजीर खाँ साहब और रामपुर के अन्य गुणियों से सीखते थे उसे सरोद पर कठिन और बड़ी मेहनत कर उसे उतार लेते। उ० अलाउद्दीन खाँ ध्रुपद–धमार, ख्याल, तराना के अतिरिक्त बीन (वीणा), रबाब एवं सुर सिंगार की वादन शैलियों को सरोद पर उतारने के लिए कठिन अभ्यास करते थे। अपनी अदम्य साधना के फलस्वरूप खाँ साहब सरोद पर सेनिया परम्परा की ध्रुपद गान शैली एवं वाद्यों (वादन) के विभिन्न अलंकारों को सरोद पर उतारने में सक्षम हुए और ध्रुपद, बीन एवं सुर सिंगार की गम्भीर एवं मींड युक्त आलाप प्रधान वादन शैली को सरोद पर विकसित किया जिस कारण सरोद में सर्वथा एक नवीन वादन शैली का जन्म हुआ। इस नवीन शैली के साथ–साथ आपने तानसेन से चली आर ही प्राचीन ध्रुपद परंपरा की गरिमा को कायम रखाव अपने शिष्यों को भी इसे कायम रखने में निष्ठावान बनाया।

सरोद वाद्य आरंभ से ही अपने वजनदार बोलों के कारण एक आकर्षक वाद्य रहा है। लेकिन इसकी आवाज में पहले इतनी अधिक मिठास नहीं थी। सरोद की आवाज को अत्यधिक कर्णप्रिय एवं हृदयाकर्षक या चिताकर्षक बनाने का सर्वप्रथम एवं एकमात्र श्रेय उ० अली अकबर खाँ साहब को प्राप्त है। वे एक महान शिल्पकार एवं कल्पनाशील कलाकार थे, तंत्र संगीत में उनकी वादन शिल्प का उनकी सरोद वादन कला सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सरोद पर खाँ साहब ने कठिन अलंकारों, पलटें, कृतंन, मींड, मूर्च्छना आदि को विकसित किया और भारतीय शास्त्रीय संगीत के मैहर घराने को पूरी तरह से नया रूप दिया। सरोद वादन शैली के इतिहास में मैहर घराने की शैली प्रत्येक दृष्टि से सम्पन्न रही है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि इस घराने के संस्थापक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को संगीत–साधना के विविध् अनुभव प्राप्त थे। सरोद पर बीन अंग का आलाप, स्वर विस्तार की नवीन प्रक्रिया, पखावज के साथ तार–परन, अलंकार, तान में लड़ी, लुड़ गुथाव, लड़ लपेट और सबसे महत्त्वपूर्ण–बीन के अलाप की गंभीरता और राग भाव एवं सरोद–वादन के विभिन्न अंगों की क्रमबद्ध योजना मैहर घराने की मौलिक देन है। इस घराने में स्वर लगाने की प्रक्रिया सूक्ष्म है। प्रत्येक स्वर को भाव–युक्त होकर बजाना इनकी वादन शैली को हृदय स्पर्शी गुण प्रदान करता है। इस घराने में हर एक वाद्य को बजाने की एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है, जैसे कि सरोद में जवा पकड़ने और अभ्यास करने की एक विशेष पद्धति है। प्रत्येक स्वर और बोल को स्पष्ट निकालने की विशेषता इस घराने की विशेष उपलब्धि है। इसी कारण इस घराने में भाव पक्ष को बल मिलता है। इसके अतिरिक्त मर्म और सुकोमल भावना को छूने वाली प्रक्रिया इस घराने में कृतंन के खास रियाज से संभव होती है। मींड और कृतंन, उल्टी गमक, अवरोहात्मक अलंकारों को प्रत्येक स्वर–स्थान पर साधा जाता है। भिन्न–भिन्न बोलों को विभिन्न तालों के अंतर्गत अभ्यास किया जाता है ताकि साथ–संगत के आनंद को बढ़ाया जा सके। अतिद्रुतलय में भी झाले के अंतर्गत मींड का कठिन काम उ० अली अकबर खाँ द्वारा दी गई इस घराने में अतुलनीय भेंट है। इस घराने की वादन शैली में भाव पक्ष तथा कला पक्ष को समान रूप से उच्च स्तर प्राप्त है। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने संगीत जगत को विभिन्न पहलुओं के माध्यम से योगदान दिया है और उनमें सबसे प्रमुख है यह घराना जिसने तंत्र वाद्य की शैली विकसित की जिससे तंत्र वाद्यों में विशेष उन्नति हुई।

विकसित वादन शैली के अनुरूप इस घराने में वाद्यों में वांछित परिवर्तन किये गये। इसके अतिरिक्त बाबा अलाउद्दीन खाँ ने इस घराने के रूप में संगीत जगत को जो योगदान दिये वह हैं आपके द्वारा रचित

राग–रागनियाँ। आपके द्वारा रचित अनेक वाद्य, दुर्लभ बंदिशें, शास्त्रीय संगीत पर आधरित मैहर बैंड और सबसे महत्त्वपूर्ण है। आपकी शिष्य परम्परा जिसमें आपके प्रत्येक शिष्य द्वारा संगीत के क्षेत्र में योगदान दिया गया और आज तक दिया जा रहा है। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब द्वारा निर्मित नवीन वाद्यों के रूप में संगीत जगत को अभूतपूर्व योगदान मिला। वैसे तो उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अनेकों वाद्यों का निर्माण व संशोधन किया परंतु इन में सबसे प्रमुख हैं– चंद्रसारंग, सारंगा, नलतरंगत था सितार बैंजो। इनमें से चन्द्र सारंग वाद्य एकल–वादन के रूप में प्रयुक्त होता है तथा नल तरंग, चन्द्र सारंग व सारंगा को खाँ साहब ने मैहर वाद्य वृन्द में प्रयुक्त किया।

नलतरंग :–

इस नवीन वाद्य के निर्माण के लिए उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने लगभग सौ बन्दूक खरीद लिया, इस्तेमाल की। अपनी समझ से बाबा ने तारता के आधर पर नलियों की कटाई–छंटाई करके उन्हें एक पेटी पर स्थापित करके एक नवीन वाद्य की रचना की जिसका नाम उन्होंने नलतरंग रखा। यह वाद्य मैहर बैंड में आज भी बजाया जाता है। इस वाद्य को देखने से यह ज्ञात होता है कि यह वाद्य एक लम्बे बॉक्स के आकार का होता है जिसमें ऊपर की ओर व नीचे की ओर अलग–अलग नलियाँ लगी होती हैं। इसमें नीचे की ओर वाली नलियाँ शुद्ध स्वरों व ऊपर की ओर वाली नलियाँ कोमलवती व स्वर की नलियाँ होती हैं। इन नलियों की संख्या 22 होती हैं, जिन्हें राग में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार मिलान किया जा सकता है, नलतरंग का वादन दो नलियों के द्वारा होता है। इस वाद्य के निर्माण से जलतरंग में व्याप्त सभी कमियों का निराकरण हो गया। इसके अतिरिक्त इस वाद्य में स्वर स्थापना पास–पास होने से इस पर द्रुतगति से वादन भी संभव हो गया तथा घसीट जमजमा, कृन्तन जैसी बारीकियों का प्रयोग करने में भी सुगमता हो गयी। इनका स्पष्ट उदाहरण मैहर वाद्य वृन्द के श्रव्य सामग्री को सुनकर लगाया जा सकता है। नलतरंग पाश्चात्य वाद्य जाइ लोपफान के समान ही है। 'नलतरंग से पूर्व मैहर बैंड में जलतरंग वाद्य का वादन किया जाता था। जलतरंग, नलतरंग के समान अधिक विश्वसनीय नहीं था। जलतरंग को कहीं ले जाते समय टूटने का डर रहता था। जलतरंग को मिलाने के लिये प्यालों में पानी भरकर स्वरों में मिलाया जाता है और यदि बजाते–बजाते जरा सा पानी छलक जाये तो बेसुरा हो जाता है। इसके पश्चात तीव्र व कोमल स्वरों को बजाने के लिये प्यालों की संख्या बढ़ानी पड़ती है जिससे घेरा बड़ा हो जाता है व बजाने में कठिनाई आती है।

सितार बैंजो :–

सितार बैंजो को बाबा अलाउद्दीन खाँ साहब ने सितार वाद्य में संशोधन करके निर्मित किया था। यद्यपि यह वाद्य सितार जैसा होता है किन्तु इसमें तुंबे के ऊपरी भाग में लकड़ी की तबली के स्थान पर चमड़े की तबली का प्रयोग सरोद वाद्य के समान किया जाता है। इस वाद्य को गोद में रखकर बजाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस वाद्य के डांड, पर्दे सितार के समान होते हैं। सितार बैंजो में तारों की संख्या आठ होती हैं जिसे मिलाने के लिए गिटार जैसी चाबियां लगी रहती हैं। इस वाद्य में तरब के तार नहीं होते।

सारंगा :–

बाबा एक ऐसा वाद्य बनाना चाहते थे जिसमें आधार स्वर मिलता रहे और इसी विचार को मूर्त रूप देकर बाबा ने इस वाद्य की रचना की। बाबा ने इस वाद्य का निर्माण एक पेड़ के तने को काटकर किया। यह वाद्य देखने में सारंगी से आठ गुना बड़ा होता है। सम्भवतः इसी कारण आपने इसका नाम सारंगा रखा होगा। आकार

में बड़ा होने के कारण इस वाद्य को इधर–उधर ले जाने में कठिनाई होती होगी। पाश्चात्य वाद्य चेलों का प्रचार भारत में हुआ तो सारंगा के स्थान पर चेलो को सम्मलित किया गया क्योंकि यह वाद्य सारंगा के समान ही था। वर्तमान में सारंगा का प्रयोग वाद्य वृन्द में नहीं किया जाता।

चन्द्रसारंग :–

चन्द्रसारंग वाद्य की बनावट प्राचीन वाद्य सारिन्दा के समान है। इसमें तीन वाद्यों, सारंगी, सरोद व वायलिन की विशेषतायें परिलक्षित होती हैं। यह वाद्य सारंगी व वायलिन की भाँति गज से बजाया जाता है। सारिन्दा में केवल चार स्वरों का निष्पादन होता था जबकि चन्द्रसारंग में तीनों सप्तक में वादन कुशलता के साथ किया जा सकता है। इसकी आवाज कभी सारंगी तो कभी सरोद सी लगती है। चन्द्रसारंग वाद्य, सारंगी व सरोद के समान सारिका विहीन वाद्य है। इसमें तरब के तार भी होते हैं। इसके अतिरिक्त बाबा अलाउद्दीन खाँ ने जो सरोद वाद्य में बदलावकर के एक नवीन शैली को स्थापित किया उसने सरोद वाद्य को बहुत अधिक प्रसिद्धि प्रदान की। और इसमें आपकी मदद की आपके भाई उस्ताद आयात अली खाँ ने जो कि एक उच्च कोटि के वाद्य निर्माता थे और साथ ही साथ संगीतकार भी। आपने सरोद में जवारी के तार जोड़े। आपके संशोधन से पूर्व समकालीन सरोदियों के सरोद में पाँच तार थे, उनमें से चार तार ही प्रभावी थे। दो चिकारी के तार होते थे, जो मध्य साव तार सां में मिलाये जाते थे। बाबा ने पाँचवां तार बदलकर दूसरा लगाया व उसे राग के थाट के अनुरूप अति मंद्रमध्यमया अति मंद्रपंचम में मिलाया बाबा के इस प्रयास से पांचों तारों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। जिससे इस वाद्य में सुर बहार व वीणा जैसा गांभीर्य उत्पन्न होने लगा। इसके अतिरिक्त आपने 'निरेगसा' चार तार और लगाये। इन चार तारों के लिये तार–गहन लगाया गया। इन चार तारों को जवारी के साथ जोड़ दिया गया इससे वाद्य की गूंज व ध्वनि का प्रभाव बढ़ गया, इसके अतिरिक्त आपने तरब के तारों की संख्या 9 से बढ़ाकर 11 कर दी। बाबा ने तुम्बे के आकार में भी परिवर्तन किया। बाबा से पूर्व प्रचलित सरोद का तुम्बा थोड़ा लम्बाई में था जिसे बाबा ने गोलाई में कराया जिससे सरोद की टोनल क्वालिटी अच्छी हो गयी। सरोद के गर्दन की पीछे पीतल का तुम्बा लगाया गया। धातु के स्थान पर नारियल/छाल का जवार खा गया। चमड़े की मोटाई स्थिर की तथा धातु चद्दर की मोटाई का स्तरीकरण किया गया व बेली का आकार बड़ाकर 9 इंच से 11 इंच कर दिया गया। अलाउद्दीन खाँ साहब द्वारा किए गए इन संशोधन व परिवर्तनों द्वारा ही सरोद वाद्य यंत्रावाद्यों की सूची में उच्च स्थान ग्रहण कर पाया। बाबा अपने पारम्परिक एवं प्रिय रागों का वादन किया करते थे और साथ ही साथ अपनी चमत्कारिक एवं सृजनात्मक कल्पना शक्ति से नवीन रागों व बंदिशों की रचना भी किया करते थे जिनका भारतीय संगीत के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। खाँ साहब द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण राग कुछ इस प्रकार हैं :–

- राग भगवती
- कोंसी भैरव
- हेम बिहाग
- हेमंत भैरव
- मदन मंजरी
- प्रभाकली

- दुर्गेश्वरी
- शोभावती
- चण्डिका
- मुहम्मद
- केदारमाँझ, आदि।

बाबा अलाउद्दीन खाँ द्वारा निर्मित नवीन रागों में से कुछ रागों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :–

राग मुहम्मद :–

राग मुहम्मद बिलावल थाट का राग माना जाता है। धैवत स्वर पूर्णतः वर्जित होने के कारण इस राग की जाति षाड़व–षाड़व मानी गयी है। गायन समय प्रातःकाल है। राग मुहम्मद राग तिलक से मिलता जुलता राग है राग मुहम्मद में– सा रे ग म प नि सां, सां नि प म ग रे सा। इस प्रकार के स्वर प्रयुक्त होते है तथा तिलक में भी सा रे ग म प नि सां, सां नि प म ग रे सा। इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं दोनों का गायन–वादन समय प्रातःकाल है।

राग भुवनेश्वरी :–

राग भुवनेश्वरी में निषाद स्वर पूर्णतः वर्जित है अतः इसकी जाति षाड़व–षाडव है। इसके गायन वादन समय प्रातःकाल माना है।

आरोह – सा रे ग म प ध सां।

अवरोह – सां ध प म ग रे सा।

आरोह सरल है व उसमें मध्यम को पूर्ण महत्त्व दिया जाता है। मध्यम के अतिरिक्त गंधर और धैवत को भी महत्त्व दिया जाता है। अवरोह भी सरल है व इसमें धैवत को महत्त्व दिया जाता है।

आरोह – सा ग म ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध म ग सा।

मुख्य स्वर समुदाय – ध नि सा, म ग म ध म, ग म ध नि सां, नि ध, ग म ग सा, ध म ध नि सा, ध नि ध म, ग सा, नि ध नि सा ग म, ध नि सां, नि ध म ग सा।

राग मदन मंजरी :–

राग मदन मंजरी अलाउद्दीन खाँ साह बने अपनी पत्नी के नाम पर बनाया था। इस राग में दोनों मध्यम का प्रयोग होता है। इस राग के आरोह में ऋषभ स्वर वर्जित है तथा पंचम स्वर का भी अल्प प्रयोग है। तीव्र मध्य के अतिरिक्त सभी स्वर शुद्ध लगने के कारण इसे कल्याण थाट के अन्तर्गत रखा जा सकता है एवं इसका गायन समय प्रातःकाल हैं।

आरोह – सा ग म ध नि ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।

राग हेम बिहाग :–

यह राग हेम कल्याण वह बिहाग दो रागों के मिश्रण से निर्मित किया गया है। हेम बिहाग गंभीर प्रकृति का राग है। इस का चलन मुख्यतः मध्य व मंद्र सप्तक में अधिक होता है हेम बिहाग में हेम कल्याण का मुख्य

अंग – प ध प, सा रे सा ध प,ग म रे सा है हेम कल्याण का अंगमंद्र व मध्य में दृष्टिगोचर होता है तथा बिहाग का अंग – मध्य सप्तक के अन्तर्गत– ग म ग, ग म ग रे सा, नि ध प, नि सां नि ध प,प म ग म ग, रे सा नि आदि। उक्त राग का गायन समय मध्य रात्रि है। वादी षड़ज व सम्वादी मध्यम है।

आरोह – सा ग म प नि सां

अवरोह – सां नि ध म प ग ग म रे सा।

अलाउद्दीन खाँ साहब ने भारतीय संगीत को अपने कौशल और प्रतिभा से अनेक शिष्यों को तैयार किया और यही उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का संगीत जगत को सबसे बड़ा योगदान है। आपने अपने ज्ञान और तप से भारतीय संगीत को अनेकों संगीत रत्न प्रदान किए। ऐसा योगदान करने वाले कलाकार सदियों में एक बार जन्म लेते हैं। बाबा के द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त यह कलाकार सम्पूर्ण विश्व में सम्मानित स्थान पर प्रतिष्ठित हैं व सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संगीत में मैहर घराने का परचम लहराकर इस घराने के रूप में चार चाँद लगा रहे हैं। खाँ साहब ने बड़ी आत्मीयता से ज्ञान प्रदान किया और यही कारण है कि अलाउद्दीन खाँ साहब के शिष्य उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। जिस विद्यार्थी ने उस्ताद जी के कड़े अनुशासन में संगीत शिक्षा प्राप्त की व गुरू डांट को प्रसाद के रूप में ग्रहण किया और संगीत शिक्षा प्राप्त करते गये। वह बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर संगीत जगत में अपना विशेष स्थान बनाने में सफल रहे। जिस विद्यार्थी में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ सीखने की उमंग व जुनून देखते थे तो बिना किसी भेदभाव के उन्हें संगीत शिक्षा प्रदान करते थे। अपने जीवनकाल में खाँ साहब ने बहुत कठिनाइयों का सामना किया इसी कारण उन्होंने प्रण किया कि जो भी संगीत सीखने आयेगा उसे खुले दिल से सिखायेंगे। बाबा का ज्ञान अथाह सागर के समान था जिसे बाबा खुले दिल से वितरित करते थे और यही कारण है कि बाबा के शिष्यों का जो तारामण्डल तैयार हुआ वह संगीत जगत को अभूतपूर्व रूप से प्रकाशित कर रहा है। अनेक विद्यार्थी अलाउद्दीन खाँ साहब से संगीत शिक्षा प्राप्त करने आयेजिन में से कुछ प्रमुख हैं :–

श्री अली अकबर खाँ (पुत्र) (सरोद), श्रीमती अन्नपूर्ण देवी (पुत्री) (सुरबहार), पं० रविशंकर (जमाता) (सितार), श्री पन्नालाल घोष (बाँसुरी), श्री निखिल बनर्जी (सितार), श्री बहादुर खाँ (सरोद), श्री तिमिरवरन भट्टाचार्य (सरोद), श्रीमती शरण रानी (सरोद), श्री राबिन घोष (वॉयलन), श्री इन्द्रजीत भट्टाचार्य (सरोद), श्री ज्योतिन भट्टाचार्य (सरोद), मैहर महाराजा (गायन), डेविड (सरोद), घूरे महाराज (हारमोनियम), वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी, वी. जी. जोग (वायलिन) इनके अतिरिक्त अलाउद्दीन खाँ साहब के शिष्यों में श्री पद बन्दोपाध्याय, श्री श्याम गांगुली, हीरेन बाबू, वलाई बाबू, फटीक बाबू, रेबुती बाबू, श्री रंजीत बनर्जी, श्री सत्यनारायण शर्मा, श्रीमती शिप्रा बनर्जी, श्री जीतेन्द्र प्रताप सिंह, राबू शास्त्रीय (फिल्मी संगीतकार), प्रजेश बन्दोपाध्याय, बहादुर खाँ, यतीन भट्टाचार्य, यतीन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय, यामिनी कुमार चक्रवर्ती, विष्णु गोविन्द जोग, शुभेंद्र शंकर, सनत बन्दोपाध्याय, हीरेन मुखोपाध्याय, जोई श्रीवास्तव, तीन कड़िदे, नगेंद्रचंद लाहिड़ी, निखिल बन्दोपाध्याय, निर्मल कुमार राय चौधरी, निहार बिन्दु चौधरी, राजा राय, राग गंगोपाध्याय, राम प्यारो, रोशन, विनय भरत राम, विवेक रंजन सिंह, विमल कुमार भट्टाचार्य, श्याम गंगोपाध्याय, स्वर्णलता चौपड़ा आदि।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने अनेक संगीत रूपी रत्न तैयार किये आप सभी शिष्यों ने बाबा से संगीत शिक्षा प्राप्त की एवं भारतीय संगीत को कौने–कौने में प्रतिष्ठित किया व अपनी सृजनात्मकता से संगीत जगत को विकसित करने में अहम भूमिका निभाई यदि मैहर घराने के इन कलाकारों को संगीत के प्रमुख स्तम्भ कहें

तो अतिश्योक्ति न होगी।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. हमारे संगीत रत्न – लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस (उ० प्र०), चतुर्थ संस्करण, 1984
2. सरोद वादन में मैहर की समृद्ध परम्परा, डॉ. रीता दास, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2013
3. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973
4. हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न, डॉ. सुशील कुमार चौबे, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 1976
5. निबन्ध संगीत, डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस।
6. अलाउद्दीन खाँ – जीवन साध्ना एवं शिल्प, अरूण कुमार वसू और कंकनभट्टाचार्य, पश्चिमी बंगाल राज्य, संगीत अकादमी, प्रथम संस्करण, 1989
7. संगीत पारिजात, आहोबल, भाष्यकार कलिंद, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, 1971
8. महान संगीतज्ञ उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, अनुराध घोष, अनुवाद– डॉ. शुभ्रा शर्मा, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2003

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 223-230

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गंझुओं का आर्थिक जीवन

निर्भय कुमार, शोध प्रज्ञ,
डॉ० ममता मौर्या, सहायक प्राध्यापक,
समाजशास्त्र विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

यहाँ आर्थिक जीवन या भौतिक संस्कृति का अर्थ है। उन सभी विभिन्न साधनों और संसाधनों का योग जिनके द्वारा गंझू लोग भौतिक क्षेत्र में मानव व्यक्ति के रूप में अपना जीवन जीते हैं। इसमें उनके व्यवसाय, उनकी संपत्ति और उनकी आय और व्यय शामिल हैं। उन्होंने भौतिक रूप से जीवित रहने के लिए अपने स्वयं के तंत्र विकसित किए हैं जैसे खाद्य सामग्री प्राप्त करने के लिए जंगल का उपयोग करना, कभी–कभी वे नौकरियों की तलाश में अन्य स्थानों पर चले जाते हैं। भारत में गरीब लोग अक्सर आंकड़ों तक ही सीमित रह जाते हैं (साईनाथ 1996)। वे एक दुर्भावनापूर्ण, दमनकारी व्यवस्था के शिकार हैं, जो अमीरों को और अमीर बनाने में मदद करती है, लेकिन गरीबों को और गरीब बनाती है। उन्हें व्यवस्थित रूप से अमानवीय स्तर तक गिरा दिया गया है। वे ठंड, गर्मी और कुपोषण से मरते हैं।

जब हम वैज्ञानिक रूप से गरीबी की जड़ों की खोज करते हैं, तो हम अपने अध्ययन को भुखमरी, कुपोषण, फसल की विफलता के कारण आत्महत्या, बच्चों को आसन्न मौत से बचाने के लिए बच्चों को बेचना आदि जैसी घटनाओं में गरीबी की विभिन्न अभिव्यक्तियों तक सीमित नहीं रख सकते। हमें इन स्थितियों को प्रक्रियाओं के संदर्भ में देखना चाहिए, न कि केवल घटनाओं के रूप में (साईनाथ, 1996)। इसके लिए हमें भूमिहीनता, निरक्षरता, स्वास्थ्य समस्याओं, उच्च शिशु मृत्यु दर, कम जीवन प्रत्याशा, ऋण, सिंचाई सुविधाओं की कमी, सुरक्षित पेयजल की कमी और बेरोजगारी जैसे कई कारकों के कारण होने वाली गरीबी को देखना होगा।

गरीबी कई रूपों में दिखाई देती है। लोगों के पास सर्दियों के मौसम में गर्म कपड़े खरीदने के लिए पैसे नहीं होते। भारत के ज्यादातर ग्रामीण इलाकों में बिजली अभी भी एक सपना बनी हुई है, खासकर उत्तर भारत में। मलेरिया एक जानलेवा बीमारी है, जो हर साल 100 से ज्यादा लोगों को अपनी चपेट में ले लेती है। कई गरीब लोगों की जान चली गई। इसी संदर्भ में गंझू लोगों के जीवन के आर्थिक पहलू पर गौर करना चाहिए।

गंझूओ का व्यवसाय :

मुख्य व्यवसाय – कृषि :–

गंझू लोगों का निवास स्थान पहाड़ियों से घिरे जंगलों के करीब है। उनके पूर्वजों ने ऐसी जगहों पर रहना पसंद किया। इसलिए उनका मुख्य व्यवसाय खेती है, शिकार और मजदूरी से पूरित है। फिर भी खरवार भोगता (गंझू) मौखिक परंपरा से पता चलता है कि वे एक उग्रवादी समूह थे।

गंझूओ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। परंपरागत रूप से वे एक कृषक समुदाय हैं और जीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार 90 प्रतिशत से अधिक गंजु या तो कृषक हैं या कृषि मजदूर हैं। खेती पारंपरिक व्यवसाय है और भूमि गंझूओ के लिए आय का मुख्य स्रोत है (सिंह, 1993)। 90 प्रतिशत गंझूओ ने कहा कि वे खेती से प्राप्त आय से छह महीने जीवित रहते हैं और बाकी छह महीने वे अन्य कामों में लगे रहते हैं, जैसे जंगल से लकड़ी और अन्य संसाधन इकट्ठा करना और ऑफ सीजन के दौरान काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन करना आदि। गंझूओ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। उनके पास खेती करने के लिए अपनी कुछ जमीन है। उनमें से कई लोग जमीन से आय बढ़ाने के लिए दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करते हैं।

चूंकि गंझू लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है और यह उनके जीवनयापन के लिए पर्याप्त नहीं है, इसलिए उनमें से कुछ लोग, विशेषकर ऑफ सीजन के दौरान, दिहाड़ी मजदूर के रूप में कलकत्ता, रांची, पटना आदि जैसे बड़े शहरों में पलायन कर जाते हैं। महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि उत्तरदाताओं में से अधिकांश (85 प्रतिशत) कृषक हैं और भूमि पर निर्भर हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पूरा गंझू समाज कृषि में लगा हुआ है। यहां तक कि कुछ गंझू जिनके पास छोटा व्यवसाय या रोजगार है और कुछ राजमिस्त्री और पारा शिक्षक भी सोचते हैं कि वे भी जीवित रहने के लिए भूमि और कृषि पर बहुत अधिक निर्भर हैं। इस प्रकार कृषि उनकी आय और जीवनयापन का मुख्य स्रोत बन जाती है।

संक्षेप में कहें तो लगभग पूरा गंझू समुदाय कृषि पर निर्भर है, क्योंकि किसान अपनी जमीन या दूसरों के खेतों पर खेती करते हैं। 1981, 1991 और 2001 की जनगणना के अनुसार गंझू को कृषि कार्यों में लगे हुए पाया गया। साक्षात्कार अनुसूची और मेरे अपने अवलोकन से यह स्पष्ट है कि गंझू का मुख्य व्यवसाय कृषि है।

सिंचाई सुविधा :-

गंझू गांवों में तालाबों और कुओं के अलावा सिंचाई की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। कुओं से सिंचाई गांव की भूमि से सटे बाड़ी भूमि में खेती तक ही सीमित है। तालाबों से सिंचाई केवल निचले चावल के खेतों तक ही सीमित है, जिन्हें धनखेत दो के रूप में वर्गीकृत किया गया है। चूंकि अधिकांश गंझू गांवों में सिंचाई की कोई सुविधा नहीं है, इसलिए वे खेती और युवा पौधों के अस्तित्व के लिए मुख्य रूप से प्रकृति द्वारा प्रदान की गई प्रचुर वर्षा पर निर्भर हैं। इसलिए वे खेती के लिए पूरी तरह से वर्षा के देवता पर निर्भर हैं। यदि मानसून अच्छा होता है, तो उन्हें अच्छी फसल मिलती है। यदि मानसून विफल होता है, तो फसल भी खराब हो जाती है। वे संकर बीजों पर भरोसा नहीं करते हैं, इसलिए वे अपने खेतों की खेती के लिए उपलब्ध साधारण बीजों का उपयोग करते हैं। वे जानते हैं कि संकर बीज पहले वर्ष में अच्छी फसल देते हैं, लेकिन अगले वर्षों के लिए भूमि कम उपजाऊ हो जाती है। संकर बीजों को रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की आवश्यकता होती है जबकि पारंपरिक प्रकार के बीजों को इसकी आवश्यकता नहीं होती है। आर्थिक रूप से गंझू इन चीजों को खरीदने का जोखिम नहीं उठा सकते हैं। इसलिए वे प्राकृतिक फसलों से संतुष्ट हैं।

अकाल की देयता :-

गंझूओ के पास सिंचित भूमि का क्षेत्रफल नगण्य है। साधारण किसान खेती की सफलता के लिए पूरी तरह वर्षा पर निर्भर है। छोटानागपुर में अकाल का इतिहास बताता है कि वर्ष के मानसून में कुल कमी की तुलना

में अक्सर वर्षा का प्रतिकूल वितरण संकट का कारण बनता है। इसका कारण यह है कि खेती की सारी जमीनें ढलान पर हैं और चूंकि पानी के भंडारण और उसके धीरे–धीरे निकलने की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए किसी भी समय बारिश का असमय रुक जाना सभी फसलों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। तांड़ की ऊंची भूमि पर उगाई जाने वाली फसलों को यह जरूरी नहीं है कि उनके खेतों में लगातार पानी भरा रहे और चूंकि उन्हें धान की तुलना में पकने में कम समय लगता है, इसलिए न तो देर से शुरू होना और न ही जल्दी रुक जाना उनके लिए जरूरी रूप से घातक है। तीसरी श्रेणी के चावल की जमीन अक्सर केवल तांड़ की जमीन होती है जो कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों से घिरी होती है, जो सबसे अनुकूल मौसम को छोड़कर गीली खेती के लिए वास्तव में अनुपयुक्त होती है। इसकी सफलता सबसे पहले जमीन की तैयारी के लिए अप्रैल और मई में कभी–कभार होने वाली बारिश पर निर्भर करती है। दूसरा, समय पर मानसून का आनारू अगर मानसून देर से आता है तो कई खेतों को साल भर के लिए खाली छोड़ना पड़ता है। तीसरा, जुलाई में अत्यधिक बारिश से कमजोर फसल बर्बाद हो सकती है। चौथा, चूँकि मिट्टी में नमी का भंडार नहीं है, जैसा कि दूसरी और पहली श्रेणी की जमीनों में होता है, इसलिए बारिश का जल्दी बंद होना और लंबा अंतराल घातक होता है। संक्षेप में कहें तो पूरी खेती बारिश पर निर्भर करती है और अगर बारिश नहीं होती है तो फसल भी खराब हो जाती है।

आय के अन्य स्रोत :

महुआ के पेड़ :–

महुआ के पेड़ आय का दूसरा स्रोत हैं। गंजहुओं के बीच महुआ की फसल का महत्व इस तथ्य से पता चलता है कि यह एक मौसम को अपना नाम देता है, 'महुआ का मौसम', और लोग कहते हैं कि वे 'अगले महुआ के बाद अपना कर्ज चुकाते हैं' (सिफ्टन, 1925)। इस फूल को सुखाकर संरक्षित किया जाता है, इसके बाद लोग इससे शराब बनाते हैं। स्थानीय रूप से बनाई जाने वाली यह देशी शराब जो एक लोकप्रिय मादक पेय है, उसे दारू के नाम से जाना जाता है। वे किण्वित महुआ फूल से दारू बनाते हैं। दारू को सभी महत्वपूर्ण अवसरों (फुच्स, 1988) जैसे विवाह प्रस्ताव, विवाह, ग्राम पंचायत के बाद, दुष्कर्म, मृत्यु के बाद 10वें दिन की रस्में, मेहमानों का स्वागत आदि के दौरान परोसा जाता है। यह गंजहुओं के लिए एक स्वीकृत सामाजिक पेय है। कुछ गंझू महिलाएँ दारू बेचती हैं और इससे अपना जीवन यापन करती हैं।

महुआ बीनने वाले लोग इसे दो–तीन मौसम तक रखते हैं और मिलजुलकर इसे बेचकर अपनी बेटियों की शादी करते हैं। शोधकर्ता ने जिन भी गंझू परिवारों का दौरा किया, उन सभी की जमीन पर महुआ के पेड़ हैं। उनके पास जंगलों में भी महुआ के पेड़ हैं। जंगलों में पाए जाने वाले महुआ के पेड़ गांवों में किसी न किसी के स्वामित्व में होते हैं। जब पेड़ में फूल आते हैं तो फूलों का दावा करने वाला व्यक्ति पेड़ के आस–पास के जंगल को साफ कर देता है और दूसरों को पता चल जाता है कि यह विशेष पेड़ उसका है और जब फूल गिरेंगे तो वह उन्हें इकट्ठा कर लेगा। महुआ के फूलों को तोड़ा नहीं जाता है, जब समय होता है तो फूल अपने आप गिर जाते हैं। महुआ का मौसम करीब दो महीने तक रहता है। कुछ लोग महुआ के फूलों को चुराने से रोकने के लिए महुआ के पेड़ों के नीचे रातें भी बिताते हैं।

वन संसाधन :–

जंगल आय का दूसरा स्रोत है। गंझू लोगों ने अनादि काल से घर बनाने और घर की मरम्मत, कृषि

उद्देश्य और ईंधन के लिए उचित मात्रा में लकड़ी लेने का अधिकार इस्तेमाल किया है, वह भी बिना किसी शुल्क के। अन्य जंगल उत्पाद जैसे चॉप, महुआ फूल और फल, और जंगल में उगाए जाने वाले अन्य फल आम तौर पर गांव के समुदाय के स्वतंत्र अधिकार के रूप में उपयोग किए जाते हैं। ग्रामीणों को अपने मवेशी चराने का भी अधिकार है। निम्नलिखित मूल्यवान पेड़ों को नहीं काटा जा सकता है आम, महुआ, आसन, इमली, हर्रा, केंद, जामुन, पारस, कुसुम और साल के पेड़ जो रैयत के सामान्य घर–निर्माण के लिए उपयुक्त आकार से अधिक बड़े हो गए हैं।

गंझू के लिए जंगल उसका दूसरा घर है, 'जंगल न केवल आय का स्रोत है बल्कि हमारा घर भी है,' साक्षात्कार के दौरान कई लोगों ने कहा। जंगल वातावरण को शुद्ध और साफ रखता है। पर्यावरण साफ और सुंदर है। हम जंगल को संरक्षित करने की कोशिश करते हैं, इथिज गांव के जेठ रायथ ने कहा।

आमतौर पर आदिवासी और खासतौर पर गंझू अपने जंगल के अधिकारों को बहुत महत्व देते हैं और इन अधिकारों के प्रयोग में किसी भी तरह के अनुचित हस्तक्षेप का कड़ा विरोध करते हैं। वे बहुत बड़ी कीमत चुकाने को तैयार हैं। उन्हें खेती के संबंध में कोई असुविधा नहीं होगी, बशर्ते कि उनके वन अधिकार बरकरार रहें।

सफेद मिट्टी बेचना :–

कुछ गंझू गांवों में सफेद मिट्टी उपलब्ध है जिसका उपयोग मिट्टी के घरों की सफेदी करने के लिए किया जाता है। दिवाली के मौसम में इस मिट्टी की बहुत मांग होती है क्योंकि लोग इस दौरान अपने घरों की सफेदी करते हैं। इस मौसम में गंझू इस मिट्टी को इकट्ठा करते हैं और इसे बाजारों में बेचते हैं। आस–पास के गांवों के लोग इस मिट्टी को खरीदने के लिए गंझू गांवों का रुख करते हैं। चेलांगदाग और हेसाबार गांवों में सफेद मिट्टी की भरमार है।

पत्ती प्लेट बनाना :–

आषाढ़ के समय गंझू कुछ और काम खोज लेते हैं जिससे उनकी थोड़ी–बहुत आमदनी बढ़ जाती है। वे जंगल में जाकर पत्ते इकट्ठा करते हैं और पत्तल बनाते हैं। ये पत्तल या तो आसपास के बाजार में या फिर किसी दुकानदार को बेच दिए जाते हैं। एक हजार पत्तल के बदले उन्हें अस्सी रुपये मिलते हैं। एक व्यक्ति करीब 300 पत्तल बनाता है और उसे करीब 25 रुपये मिलते हैं, यानी पूरे दिन काम करने पर उन्हें सिर्फ 25 रुपये मिलते हैं। लेकिन उनके मुताबिक घर बैठे कुछ न कमाने से यह बेहतर है। चूंकि पत्ते मुफ्त में इकट्ठे किए जाते हैं, सिर्फ मजदूरी ली जाती है। इस काम की खूबसूरती यह है कि पूरा गांव मिलकर काम करता है। वे सब एक समूह में जंगल जाते हैं और पत्ते इकट्ठा करते हैं। जब वे जंगल से वापस आते हैं, तो बच्चे हों या जवान, बूढ़े सभी पत्तल बनाने में लग जाते हैं। इस तरह गंझू काफी नवोन्मेषी और व्यावहारिक लोग हैं, जो गुजारा करना जानते हैं।

शिकार :–

भूखे आदमी को भोजन की जरूरत होती है। कभी–कभी भूख साहसिक गतिविधियों को जन्म देती है। गंझू लोगों के लिए शिकार करना एक साहसिक कार्य है। गंझू लोग शिकार करने में माहिर होते हैं। उनके लिए शिकार करना एक उद्देश्यपूर्ण खेल है। वे जो शिकार करते हैं, उसे वे भोजन के रूप में भी खा सकते हैं। इस प्रकार शिकार करना उत्सव का अवसर बन जाता है, बशर्ते वे कुछ जानवरों का पीछा करके उन्हें मार डालें।

यह एक समय लेने वाला खेल है। कभी–कभी इस तरह के शिकार में एक दिन और पूरी रात बीत जाती है। हालांकि जंगली जानवरों के शिकार की अनुमति कानून द्वारा नहीं दी जाती है, लेकिन गंझू कभी–कभी शिकार के लिए खुद को संगठित करते हैं। जब कटाई का मौसम खत्म हो जाता है तो वे शिकार के लिए खुद को तैयार करते हैं। वे इसे शिकार खेल कहते हैं। वे शिकार का बहुत आनंद लेते हैं। अगर वे भाग्यशाली होते हैं, तो वे कभी–कभी एक या दो जंगली सूअर, या खरगोश, या जंगली बकरी या हिरण को मार देते हैं। अगर वे अच्छा शिकार करते हैं तो शाम को अपने गांव वापस आने पर दावत करते हैं।

शिकार माघ (फरवरी–मार्च) के महीने में शुरू होता है और जून–जुलाई तक लगभग छह महीने तक चलता है। इनका मुख्य लक्ष्य जंगली सूअर होते हैं और जंगली सूअरों के अलावा ये हिरण, जंगली बकरी, नील गाय, खरगोश, मोर सहित कई पक्षियों का भी शिकार करते हैं। शिकार प्रशासन और वन विभाग की जानकारी के बिना किया जाता है क्योंकि सरकार ने जानवरों के शिकार पर प्रतिबंध लगा रखा है। लेकिन इन दिनों लोग शिकार करना बंद कर रहे हैं क्योंकि उन्हें पर्याप्त शिकार नहीं मिल रहा है। शिकार के लिए वे कुल्हाड़ी, धनुष–बाण, देशी बंदूक और पिस्तौल जैसे हथियारों के साथ प्लास्टिक या सूती जाल का इस्तेमाल करते हैं। वे लंबे जाल लगाते हैं और जानवरों का पीछा करते हैं। जानवर अपनी जान बचाने के लिए भागते हैं और जाल में फंस जाते हैं और लोग उन्हें मार देते हैं।

गंझूओं की संपत्ति :–

इस खंड में गंझूओ की संपत्ति का आकलन करने का प्रयास किया गया है। भूमि उनकी मुख्य संपत्ति है। जैसा कि पिछले अध्याय में देखा गया है, संयुक्त परिवार में भूमि का स्वामित्व परिवार के मुखिया के पास होता है। भले ही गंजु आर्थिक सुरक्षा और अपनी भूमि की रक्षा के लिए एकल परिवारों में रहना पसंद करते हैं। उनमें से कुछ विस्तारित परिवारों में रहना जारी रखते हैं। फिर भी एक घर में अलग–अलग परिवार एक साथ रह सकते हैं जैसे कि बेटों की शादी हो गई और उनका अपना परिवार हो गया। यहाँ घर का मतलब परिवार के भीतर सामूहिक सदस्यता है, जो दादा, बेटों और पोते–पोतियों की तीन पीढ़ियों तक फैली हुई है। जब पिता की मृत्यु हो जाती है तो सबसे बड़ा बेटा परिवार का मुखिया बन जाता है और घर की संपत्ति को एक साथ रखता है।

गंझूओं के घर :–

किसी भी समाज में घर का स्वामित्व किसी भी व्यक्ति के लिए एक संपत्ति है। झारखंड में गंझू लोग मिट्टी, लकड़ी और खपरैल से अपने घर बनाते हैं। एक सामान्य गंझू घर मिट्टी की दीवारों और खपरैल की छत वाला होता है जिसमें एक या दो दरवाजे होते हैं लेकिन कोई खिड़की नहीं होती। प्रत्येक गंझू परिवार के पास मालिक के नाम पर एक घर और जमीन का एक टुकड़ा होता है। गंझू घरों में कुछ कमरे, एक बरामदा और पूर्वजों के लिए एक कमरा होता है।

घर का प्रकार :–

गंझू लोग खपरैल की छतों वाले मिट्टी के घरों में रहते हैं। आदिवासियों की तरह वे भी अपना घर खुद बनाते हैं। हर घर में एक छोटा सा आंगन और घर के आसपास एक छोटा सा सब्जी का बगीचा सहित कुछ जमीन होती है। उनके पास कंक्रीट के घर नहीं हैं, सिवाय उन बहुत कम लोगों के जिन्होंने इंदिरा आवास परियोजना के तहत दो कमरों का घर बनाया है। आदिवासियों की तरह हर घर में अपने जानवरों के लिए घर

के पास या घर के एक हिस्से में जगह होती है। कुछ घरों में पीने के पानी के लिए अपने खुद के कुएं होते हैं, लेकिन हर गंझू गांव में आम कुएं होते हैं। पचास घरों वाले एक गांव में कम से कम पांच कुएं हो सकते हैं। चूंकि अधिकांश गंझू गांव अलग–थलग जगहों पर बसे हैं, इसलिए गंझू गांवों में बहुत कम गैर–गंझू पाए जाते हैं। पैतृक संपत्ति बेटों में बराबर–बराबर बांटी जाती है। बेटियों को अपने माता–पिता की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। महिलाएं आर्थिक गतिविधियों के साथ–साथ घरेलू कामों में भी शामिल होकर परिवार की आय में योगदान देती हैं। जन्म प्रदूषण 10 दिनों तक चलता है और 12वें दिन सामुदायिक भोजन का आयोजन किया जाता है (सिंह 1994 : 513)।

गंझूओ की आर्थिक या भौतिक संस्कृति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया। गंझूओ की भौतिक संस्कृति का अध्ययन करते समय शोधकर्ता को यह बात खटकती है कि आजादी के 62 साल बाद भी सरकारें ग्रामीण भारत का विकास करने में असमर्थ हैं। देश ने आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू कीं और प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कम से कम एक विशिष्ट लक्ष्य हासिल करना था। 1950 के दशक की शुरुआत से, सरकार ने गरीबों को खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करने में मदद करने के लिए विभिन्न योजनाएँ शुरू की हैं। गरीब अपनी आय का 80 प्रतिशत हिस्सा अकेले भोजन पर खर्च करते हैं। वे गाँवों में कोई भी आधुनिक सुविधा नहीं खरीद पाते हैं। यहाँ तक कि देश के दूरदराज के गाँवों में जहाँ गरीब रहते हैं, बिजली भी नहीं पहुँच पाई है।

आजादी के 62 साल बाद भी, बड़े पैमाने पर गरीबी भारत के चेहरे पर सबसे शर्मनाक दाग बनी हुई है। झारखंड के गंझू सहित भारत के ग्रामीण गरीबों को पोषण, स्वच्छ पानी, स्वास्थ्य सेवा, कपड़े और आश्रय जैसी बुनियादी मानवीय जरूरतों का अभाव है। गरीबी एक मुख्य समस्या है जिसने समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया है। यह एक ऐसी स्थिति को इंगित करता है जिसमें एक व्यक्ति अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमता के लिए पर्याप्त जीवन स्तर बनाए रखने में विफल रहता है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई भी व्यक्ति नहीं रहना चाहता। यह एक विसंगति की भावना को जन्म देता है कि किसी के पास क्या है और उसके पास क्या होना चाहिए। खेती योग्य भूमि तक पहुँच की कमी और किसी अन्य काम के लिए कौशल की कमी के कारण गंझू लोग गरीब बने हुए हैं। परिवारों में विवाह और मृत्यु ऐसे अवसर हैं, जिसके लिए बड़ी रकम की आवश्यकता होती है, और गंझू लोग गरीब होने के कारण खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन नहीं जुटा पाते हैं, इसलिए वे मदद के लिए साहूकारों की ओर रुख करते हैं, और इस प्रक्रिया में वे अपनी जमीन उन्हें दे देते हैं।

झारखंड में गंझूओ समुदाय मुख्य रूप से खेती–किसानी वाला समुदाय है। यह जंगल की उपज, शिकार और मछली पकड़ने पर भी निर्भर है और कुछ लोग दैनिक मजदूरी करके अपना जीवन चलाते हैं। पारिस्थितिकी क्षरण ने शिकार और मछली पकड़ने जैसे पारंपरिक व्यवसायों को गंभीर रूप से कम कर दिया है। इसलिए वर्तमान में गंझू या तो किसान हैं या खेतिहर मजदूर। उनके लिए जमीन आय का मुख्य स्रोत है और वे मानते हैं कि जमीन ही उनके लिए जीवन है। यह न केवल उनके जीवनयापन का स्रोत है बल्कि उनकी संस्कृति का एक हिस्सा भी है जो उन्हें पहचान देता है। जब शोधकर्ता गंझू गाँवों में गए तो उन्होंने पाया कि गंझूओ न केवल गरीबी से पीड़ित हैं बल्कि सीमित रोजगार के अवसर, राजनीतिक हाशिए पर होना, बहुत कम या बिल्कुल भी शिक्षा नहीं मिलना, सामाजिक भेदभाव और मानवाधिकारों का उल्लंघन जैसे कई तरह के नुकसानों से भी पीड़ित

हैं। वे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और पोषण सहित मानव विकास के सभी पहलुओं में पिछड़े हुए हैं। ब्रिटिश काल से ही वे धीरे–धीरे अपने पारंपरिक अधिकारों और अपने संसाधनों पर नियंत्रण खोते जा रहे हैं।

संदर्भ सूची :-

1. फुच्स, स्टीफन. 1981 भारतीय समाज के निचले स्तर पर, मुंशीराम मनोहरलाल प्राइवेट लिमिटेड।
2. फुच्स, स्टीफन. 1988 विंध्य हिल्स के कोरकुस (भारत के जनजातीय अध्ययन श्रृंखला : टी124) इंटर इंडिया पब्लिकेशंस नई दिल्ली : डी–17 राया गार्डन एक्सटेंशन।
3. गेल, ओमवेट. 1994 दलित और लोकतांत्रिक क्रांति, डॉ. अंबेडकर और औपनिवेशिक भारत में दलित आंदोलन, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस।
4. गणेश कमला ठक्कर उषा (सं.) 2005 समकालीन भारत में संस्कृति और पहचान का निर्माण, सेज, नई दिल्ली।
5. गीर्ट्ज, क्लिफर्ड. 1993 संस्कृतियों की व्याख्या, बेसिक बुक्स, इंक, न्यूयॉर्क : घुर्ये, जी.एस. 1932 भारत में जाति और नस्ल, बॉम्बे : पॉपुलर प्रकाशन।
6. घुर्ये, जी.एस. 1959 द शेड्यूल्ड ट्राइब्स, द्वितीय संस्करण (प्रथम संस्करण 1943) बॉम्बे : पॉपुलर प्रेस।
7. गिर्टलर, रोलाण्ड 1984 पद्धतिगत विचार और जांचे जाने वाले समूह तक पहुंच की कठिनाईयां, मानव विज्ञान में ऐतिहासिक विज्ञान के रूप में – स्टीफन फुच्स के सम्मान में निबंध (संपादक) एम. भूरिया और एस.एम. माइकल द्वारा, इंदौर : सत प्रकाशन।
8. गिस्बर्ट, पी. 1957 फंडामेंटल्स ऑफ सोशियोलॉजी ओरिएंट लॉन्गमैन्स, बॉम्बे।
9. ग्लेसर, बार्नी और एन्सेलमम, एल स्ट्रॉस, 1967 ग्राउंडेड थ्योरी की खोज, शिकागो, एल्डीन। प्रतिभागी असंरचित अवलोकन।
10. गुहा, रणजीत. 1983 औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोह के प्राथमिक पहलू, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. हैलेट, एम.जी. 1917 बिहार और उड़ीसा जिला गजेटियर, रांची, पटना, बिहार और उड़ीसा : सरकारी मुद्रण।
12. हरलाम्बोस, माइकल विद रॉबिन हेराल्ड, 1980 समाजशास्त्र विषय और परिप्रेक्ष्य, बॉम्बे : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. हरलम्बोस और होलबोर्न 2000 हरलम्बोस और होलबोर्न, समाजशास्त्र विषय और परिप्रेक्ष्य, (5वां संस्करण) लैंडन : हार्पर कॉलिन्स प्रकाशन लिमिटेड हर्सकोविट्स, मेलविले 1955 सांस्कृतिक नृविज्ञान, बॉम्बे ऑक्सफोर्ड और आईबीएच प्रकाशन कंपनी।
14. होरे क्विंटिन स्मिथ जेफ्री नोवेल 1996 एंटोनियो ग्राम्स्की की जेल नोटबुक से चयन, हैदराबाद : ओरिएंट लॉन्गमैन।
15. होनिगमैन, जॉन जे 1959 द वर्ल्ड ऑफ मैन, न्यूयॉर्क : हार्पर एंड रो ह्यूमन राइट्स वॉच 1999 ब्रोकन पीपुल–कास्ट वायलेंस अगेंस्ट इंडियाज अनटचेबल्स, न्यूयॉर्क, वाशिंगटन, लंदन, ब्रुसेल्स : ह्यूमन

राइट्स वॉच।
16. झा, जगदीश चंद्र 1993 छोटानागपुर का कोल विद्रोह, पटना : ठाकर स्पिंक कंपनी प्राइवेट लिमिटेड।
17. जोगदंड, पी.जी. (सं.) 2000 नई आर्थिक नीति और दलित, जयपुर और नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन्स।
18. झुनझुनवाला, भरत. 1999 जाति व्यवस्था के माध्यम से वर्ण व्यवस्था शासन, जयपुर और नई दिल्ली : रावत प्रकाशन।
19. क्लुकहोहन, क्लाइड 1949 मिरर फॉर मैन, द रिलेशन ऑफ एंथ्रोपोलॉजी टू मॉडर्न लाइफ, न्यूयॉर्क : मैकग्रॉ–हिल।
20. क्लुकहोहन, क्लाइड 1967 संस्कृति का अध्ययन, समाज का अध्ययन, (सं.) पी. 1 द्वारा. रोज, न्यूयॉर्क : रेनेहार्ट।
21. क्रोबर, अल्फ्रेड एल. और पार्सन्स, टी. 1958 संस्कृति और सामाजिक प्रणाली की अवधारणा, अमेरिकी समाजशास्त्रीय समीक्षा।
22. कोचरू, जे.एल./काचरू, विजय। 1997 सोसाइटी इन इंडिया, कॉसमॉस बुकहाइव (पी) लिमिटेड।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 231-236

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक गतिशीलता और मध्यम वर्ग

प्रीति जायसवाल, शोध प्रज्ञ,
डॉ. रेणु गुप्ता, सहायक प्राध्यापक,
अर्थशास्त्र विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

सामाजिक संरचना को समझने के लिए सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक वर्ग पर अध्ययन समाजशास्त्री के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसका एक कारण समाज के बदलते स्वरूप के कारण है। इसके बावजूद, सामाजिक गतिशीलता और वर्ग पर अध्ययन ने हमेशा समाजशास्त्री का ध्यान खींचा है। यह देखा गया है कि सामाजिक वर्ग भी सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया से आकार लेता है क्योंकि समाज में एक व्यक्ति को हमेशा सामाजिक पदानुक्रम की सीढ़ी पर ऊपर या नीचे जाने का अवसर मिलता है। किसी व्यक्ति के पास मौजूद भौतिक संसाधन और साथ ही समाज में दूसरों के साथ संबंध में रैंक की धारणा ने भी सामाजिक वर्ग को आकार दिया है। मूल रूप से सामाजिक वर्ग को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित किया जा सकता है। वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से मध्यम वर्ग से संबंधित है। यह सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव का पता लगाने की कोशिश करता है और कैसे इसने विशेष रूप से सूचना समाज के युग में नए मध्यम वर्ग के निर्माण को जन्म दिया है। हालांकि, विभिन्न वर्गों के बीच मध्यम वर्ग को समझना एक कठिन कार्य है, क्योंकि विषय की विविधता और जटिलता है। अपने सरलतम अर्थ में मध्यम वर्ग को समाज के सबसे ऊंचे और सबसे निचले तबके के बीच खड़ा माना जा सकता है। इसमें मध्यम आय वाले सामाजिक समूह शामिल हैं। लेकिन मध्यम वर्ग को परिभाषित करने का प्रश्न असंतोषजनक बना हुआ है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि मध्यम वर्ग को परिभाषित करना इस बात पर निर्भर करता है कि आप इस अवधारणा के साथ क्या और किस संदर्भ में काम करना चाहते हैं।

यह कहने के बाद, यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य मध्यम वर्ग की सावधानीपूर्वक परिभाषा से निपटना नहीं है, बल्कि मध्यम वर्ग की बदलती प्रकृति को समझना है। इस अध्याय को दो खंडों में विभाजित किया गया है। पहला खंड सामाजिक गतिशीलता और वर्ग पर सैद्धांतिक बहस से संबंधित है। यह सामाजिक गतिशीलता के विभिन्न कारकों और आयामों और अधिक महत्वपूर्ण रूप से सामाजिक गतिशीलता के विश्लेषण में शामिल विश्लेषणात्मक चरणों पर भी चर्चा करता है। दूसरा खंड सामान्य रूप से पश्चिमी देशों और विशेष रूप से भारत के संदर्भ में मध्यम वर्ग की अवधारणा से संबंधित है। यह देखता है कि एक अवधि से दूसरी अवधि में मध्यम वर्ग धीरे–धीरे कैसे विकसित हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सामाजिक संरचना में मध्यम वर्ग की स्थिति और स्थान में हो रहे परिवर्तनों को उजागर करेगा। भारत में मध्यम

वर्ग को अक्सर भारत में ब्रिटिश शासन का उप–उत्पाद माना जाता है। भारत में मध्यम वर्ग की वृद्धि से पता चलता है कि यह स्वतंत्रता के बाद और विशेष रूप से उदारीकरण के बाद तेजी से बढ़ने लगा। भारत में उदारीकरण भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का गवाह है। मध्यम वर्ग समाज के उन वर्गों में से था जिसने उदारीकरण का पूरा लाभ उठाया और उनकी संख्या में वृद्धि हुई। जिस तरह से उन्होंने शहरी सेटिंग पर हावी होना शुरू किया, वह उन्हें समाज में एक रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान पर रखता है। उदारीकरण के बाद का मध्यम वर्ग न केवल उपभोक्ता वर्ग के रूप में जुड़ा था, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एक नए मध्यम वर्ग के रूप में सॉफ्टवेयर पेशेवर के उद्भव ने भारत में मध्यम वर्ग के अध्ययन में एक नया आयाम जोड़ा। सामाजिक वर्ग समाजशास्त्रीय शोध में सबसे व्यापक रूप से प्रयुक्त चर बन गया है। यह कच्चे द्वंद्व से बहुत परिष्कृत होकर दो–वर्गीय व्यवस्था में बदल गया है, जिसमें उत्पादन के साधनों के स्वामी और उनका उपयोग करने वाले लोग शामिल हैं"।

वर्ग और वर्ग संघर्ष की अवधारणा पर मार्क्स (1818–1883) के लेखन सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन पर सैद्धांतिक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं, जब वे कहते हैं कि समाज के विभिन्न वर्ग निरंतर विरोध में हैं और समाज को फिर से बनाने के लिए एक–दूसरे से लड़ते हैं, जैसे कि स्वतंत्र व्यक्ति और दास, कुलीन और साधारण, स्वामी और दास, गिल्ड मास्टर और जर्नीमैन। और यह विचार भी कि "अब तक के सभी मौजूदा समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है" यह दर्शाता है कि मार्क्सवादी विद्वान के लिए वर्ग संघर्ष सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिकी के विकास के बजाय मोटर है। वर्ग विरोध पर अपनी बात को जारी रखते हुए, मार्क्स और एंगेल्स (1970) इस प्रकार कहते हैं, 'व्यक्तियों को एक वर्ग से अलग तभी किया जा सकता है जब उन्हें दूसरे वर्ग के खिलाफ एक आम लड़ाई लड़नी पड़े, अन्यथा, वे एक दूसरे के साथ शत्रुतापूर्ण शर्तों पर प्रतिस्पर्धी बन जाते हैं'।

मार्क्स ने सर्वहाराकरण में शामिल सामाजिक गतिशीलता को छोड़कर, वर्ग निर्माण की प्रक्रिया के लिए प्रतिकूल माना। मार्क्स ने अमेरिकी समाजों को यूरोपीय समाज से स्पष्ट रूप से अलग किया, उनके अनुसार उत्तरार्द्ध में 'वर्गों का एक विकसित गठन' है, जबकि अमेरिका में, हालांकि वर्गों के अस्तित्व के बारे में कहा जा सकता है, 'वे अभी तक स्थिर नहीं हुए हैं, लेकिन निरंतर प्रवाह में अपने तत्वों को बदलते और बदलते रहते हैं'। वर्ग निर्माण और वर्ग स्थितियों के बीच गतिशीलता के अध्ययन पर मार्क्स द्वारा शुरू की गई चिंता का उत्तर लोप्रेटो और हेजब्रिग (1972) ने दिया। वे कहते हैं कि, 'वर्ग सिद्धांत के दो मुख्य चर हैं। वे वर्ग गतिशीलता की दो मूलभूत प्रक्रियाओं का उल्लेख करते हैं : वर्ग चेतना और सामाजिक गतिशीलता'।

यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी भी वर्ग संघर्ष का इतिहास काफी हद तक इन दो महान सामाजिक ताकतों के परस्पर क्रिया का इतिहास है। मार्क्सवादी जिस तरह से वर्ग को पदानुक्रमिक क्रम में व्यवस्थित और विभाजित करते हैं, उसने भविष्य में वर्ग और सामाजिक गतिशीलता पर अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। इस पदानुक्रमिक क्रम में श्रमिक वर्ग को सबसे नीचे रखा जाता है, उसके बाद निम्न–मध्यम वर्ग और उच्च–मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग को सबसे ऊपर रखा जाता है। वर्गों के पदानुक्रम का विश्लेषण एक वर्ग से दूसरे वर्ग में ऊर्धवाधर गतिशीलता की प्रकृति को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके प्रकाश में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन और माप करने वाली परंपराओं में अंतर करना महत्वपूर्ण है। दुबे (1975) ने

तर्क दिया कि मूल रूप से सामाजिक गतिशीलता पर अध्ययन को मोटे तौर पर दो परंपराओं में वर्गीकृत किया जा सकता है यानि यूरोपीय अध्ययन और अमेरिकी अध्ययन। उनके अनुसार यूरोपीय परंपरा एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाने के संदर्भ में गतिशीलता का अध्ययन करती है जो "निम्न से मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग से उच्च वर्ग की स्थिति" है। दूसरी ओर अमेरिकी परंपरा व्यवसाय में परिवर्तन के संदर्भ में गतिशीलता का अध्ययन करती है, जो कि 'एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाना, अर्थात् मैनुअल से गैर–मैनुअल, या सफेदपोश से पेशेवर तक' है।

प्रथम विश्व युद्ध की अवधि के सामाजिक–राजनीतिक उथल–पुथल में सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन पर महत्व सोरोकिन (1927) के काम से मिलता है। सोरोकिन की धारणा कि 'सामाजिक गतिशीलता को किसी व्यक्ति, या सामाजिक वस्तु, या मूल्य के एक सामाजिक स्थिति से दूसरे सामाजिक स्थिति में किसी भी संक्रमण के रूप में समझा जाता है' सामाजिक गतिशीलता पर उत्तेजक विचार देता है। गोल्डथ्रोप (1980) ने तर्क दिया कि सामाजिक गतिशीलता को दो अलग–अलग प्रभावों के तहत देखा जा सकता है। एक ओर, 'हम गतिशीलता के एक विशेष पैटर्न को एक लक्ष्य का प्रतिनिधित्व करने के रूप में देखते हैं जिसका पीछा किया जाना है'। दूसरी ओर, 'यह लक्ष्य प्राप्त होने की संभावना है या नहीं, यह महत्वपूर्ण रूप से हमारे समाज में वास्तव में प्रचलित गतिशीलता के पैटर्न पर निर्भर करेगा'। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी तर्क दिया कि समूह निर्माण पर गतिशीलता के प्रभाव की जांच तीन स्तरों पर की जा सकती है। सबसे पहले, गतिशीलता को जनसांख्यिकीय अर्थ में सामाजिक वर्गों के निर्माण में एक तत्व के रूप में माना जाता है। दूसरे, गतिशीलता को वर्ग संरचना के स्थिरीकरण में एक तत्व के रूप में परिकल्पित किया गया है। और तीसरा, गतिशीलता की चर्चा संरचना के एक अस्थिर तत्व के रूप में की गई है।

सामाजिक गतिशीलता एक सामाजिक घटना के रूप में कई कारकों के परिणामस्वरूप होती है। लिपसेट और बेंडिक्स (1992) ने इस बात पर प्रकाश डाला कि हर समाज में सामाजिक गतिशीलता मौजूद होने के दो बुनियादी कारण हैं : उनका मानना है कि उच्च पद प्राप्त करने वाले कुछ लोगों द्वारा अपने पद से जुड़ी जिम्मेदारियों को पूरा करने में विफलता के कारण, नया सामाजिक समूह उभरता है और पदानुक्रम की पारंपरिक प्रतिष्ठा का स्थान लेता है। इसी तरह, सामाजिक परिवर्तन के दौरान, उच्च क्षमताओं वाले निचले तबके के नेता उभरेंगे क्योंकि 'कोई भी अभिजात वर्ग या शासक वर्ग प्रतिभा, बुद्धिमत्ता या अन्य क्षमताओं के प्राकृतिक वितरण को नियंत्रित नहीं करता है, हालांकि यह शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर पर एकाधिकार कर सकता है' (इबिड, पृष्ठ 3)। सोरोकिन (1959) के अनुसार, ऊर्द्धवाधर गतिशीलता कुछ हद तक हर समाज में मौजूद होती है। उन्होंने ऊर्द्धवाधर गतिशीलता के कारकों को प्राथमिक और द्वितीयक कारकों में विभाजित किया। प्राथमिक कारकों में, ये हैं : (1) 'जनसांख्यिकीय कारक जो या तो ऊपरी तबके के खत्म होने या कुल आबादी में उनके सापेक्ष आयाम का कारण बनते हैं इन कारकों के अलावा, सामाजिक गतिशीलता शिक्षा, प्रवास, शहरीकरण, औद्योगीकरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के संदर्भ में आधुनिकीकरण आदि जैसे कारकों के कारण भी हो सकती है। यह अध्ययन मुख्य रूप से सामाजिक गतिशीलता के तकनीकी कारक पर आधारित है।

जैसा कि पहले कहा गया है, सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन इसकी जटिल प्रकृति के कारण एक कठिन कार्य है। यह कहने के बाद, इसे समझने के लिए सामाजिक गतिशीलता के आयाम को देखना महत्वपूर्ण

होगा। हॉल (1996) ने एक दिलचस्प बयान दिया कि सामाजिक गतिशीलता को कई आयामों से देखा जा सकता है। उन्होंने दो विशेष आयामों के बारे में बात की, पहला समय चरण गतिशीलता, इसमें अंतर–पीढ़ी और अंतर–पीढ़ीगत गतिशीलता शामिल है। और दूसरा आयाम गतिशीलता की दिशा के बारे में है। दिशात्मक गतिशीलता के तहत आगे तीन अक्ष हैं जिन्हें पहचानने की आवश्यकता है। पहला ऊर्ध्वाधर गतिशीलता है जो ऊपर या नीचे की ओर गति को इंगित करता है। दूसरा स्थिति में बदलाव के बिना सामाजिक कार्य में परिवर्तन और क्षैतिज गतिशीलता है और तीसरा अक्ष स्थानिक गतिशीलता द्वारा दर्शाया जाता है, जो व्यवसाय के स्थान में परिवर्तन को इंगित करता है।

लिपसेट और जेटरबर्ग (1967) ने 'सामाजिक गतिशीलता के सिद्धांत' की व्याख्या करते हुए सामाजिक गतिशीलता के चार आयाम प्रस्तुत किए। उनके आयाम व्यावसायिक रैंकिंग, उपभोग रैंकिंग, सामाजिक वर्ग और शक्ति रैंकिंग पर आधारित थे। व्यवसाय को सामाजिक स्तरीकरण के सबसे आम संकेतकों में से एक माना जाता है। इतना ही नहीं, व्यवसाय के भीतर अलग–अलग प्रतिष्ठा और रैंक जुड़ी होती है और अलग–अलग व्यवसाय एक विशिष्ट तरीके से प्रदर्शन करते हैं जो दूसरे से अलग होता है। उपभोग के संदर्भ में गतिशीलता का अध्ययन शक्ति के दृष्टिकोण से करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है, यह देखते हुए कि कुछ भूमिकाओं में एक ओर अधीनता और दूसरी ओर अधिपत्य शामिल होता है। शक्ति रैंकिंग व्यक्ति द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, वे कहते हैं कि एक श्रमिक नेता की व्यावसायिक स्थिति कम हो सकती है और फिर भी वह काफी राजनीतिक प्रभाव रख सकता है। सोरोकिन (1959) ने निरंकुश समाजों की तुलना में लोकतांत्रिक समाजों के गुणों पर तर्क देते हुए कहा कि लोकतांत्रिक समाजों में, कम से कम सैद्धांतिक रूप से, किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके जन्म से निर्धारित नहीं होती है और न ही ऊपर और नीचे की गतिशीलता में कोई न्यायिक और धार्मिक बाधाएं होती हैं। हालांकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि लोकतांत्रिक समाजों में ऊर्ध्वाधर गतिशीलता हमेशा निरंकुश समाजों से अधिक नहीं होती है। इसके आलोक में वह ऊर्ध्वाधर गतिशीलता के पांच सिद्धांत प्रस्तावित करते हैं। पहला प्रस्ताव– 'शायद ही कोई ऐसा समाज रहा हो जिसका स्तर बिल्कुल बंद हो, या जिसमें तीन रूपों– आर्थिक, राजनीतिक और व्यवसाय– में ऊर्द्धवाधर गतिशीलता मौजूद न हो'।

दूसरा प्रस्ताव– 'ऐसा समाज कभी अस्तित्व में नहीं रहा जिसमें ऊर्ध्वाधर गतिशीलता बिल्कुल स्वतंत्र रही हो और एक सामाजिक स्तर से दूसरे सामाजिक स्तर में संक्रमण में कोई प्रतिरोध न हुआ हो'। तीसरा प्रस्ताव– 'ऊर्ध्वाधर सामाजिक गतिशीलता की तीव्रता, साथ ही व्यापकता, समाज से समाज में भिन्न होती है (स्थान में गतिशीलता में उतार–चढ़ाव)'। चौथा प्रस्ताव– 'ऊर्ध्वाधर गतिशीलता की तीव्रता और व्यापकता – आर्थिक, राजनीतिक और व्यावसायिक – एक ही समाज में अलग–अलग समय पर उतार–चढ़ाव करती है'। और अंत में पाँचवाँ प्रस्ताव– 'जहाँ तक संबंधित ऐतिहासिक और अन्य सामग्री देखने की अनुमति देती है, ऊर्द्धवाधर गतिशीलता के क्षेत्र में, इसके तीन मौलिक रूपों में, गतिशीलता की तीव्रता और व्यापकता में वृद्धि या कमी की ओर कोई निश्चित सतत प्रवृत्ति नहीं दिखती है। इसे किसी देश के इतिहास, किसी बड़े सामाजिक निकाय और अंततः मानव जाति के इतिहास के लिए वैध माना जाता है' (पृष्ठ 139–160)।

सामाजिक गतिशीलता की सैद्धांतिक बहस पर विस्तार से चर्चा करने के बाद सामाजिक गतिशीलता के

विश्लेषण में शामिल कुछ महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक चरणों को देखना भी महत्वपूर्ण है। सामाजिक गतिशीलता की प्रकृति और डिग्री को मापना किसी भी शोधकर्ता के लिए सबसे जटिल कार्यों में से एक है। शोधकर्ताओं ने सामाजिक गतिशीलता का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न तरीकों और तकनीकों का उपयोग किया है, उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्री आय को देखते हैं और समाजशास्त्री व्यवसाय को देखते हैं। दुबे (1975) के अनुसार, 'सामाजिक गतिशीलता पर एक विश्लेषण तीन 'अवधारणा; दिखाएगा, यानी, 'वर्ग' (उच्च, मध्यम, निम्न), 'कुलीन' (कुलीन–1, कुलीन–2, कुलीन–3), और 'व्यवसाय' (कुशल और अकुशल, मैनुअल, गैर–मैनुअल, सफेदपोश, और पेशे) का उपयोग आम तौर पर गतिशीलता की प्रकृति और डिग्री को इंगित करने के लिए किया जाता है।'

सामाजिक अभिजात वर्ग जो शिक्षित हो गया और शहरी पेशे को अपना लिया। स्वतंत्रता के बाद मध्यम वर्ग की संरचना में एक महत्वपूर्ण अवलोकन यह किया गया कि जो लोग संपत्ति के मालिक वर्ग से नहीं थे, वे मध्यम वर्ग के संदर्भ में उभरने लगे। ये लोग समाज का नया शिक्षित वर्ग है जो पूरी तरह से राज्य पर निर्भर करता है। उदारीकरण के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था बढ़ने लगी क्योंकि भारत में ऐसी कॉर्पोरेट और बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्थापित की गईं, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कई लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करती हैं। सूचना प्रौद्योगिकी पेशेवर (जिन्हें नया मध्यम वर्ग भी कहा जाता है) उन कर्मचारियों में से थे जिन्हें आईटी उद्योग के तेजी से बढ़ने से सबसे ज्यादा फायदा हुआ और वे नए मध्यम वर्ग के एक हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी पेशेवरों की वृद्धि ने भारत में मध्यम वर्ग के अध्ययन के प्रति नए आयाम और दृष्टिकोण लाए हैं।

स्वतंत्रता के बाद भी मध्यम वर्ग के दृष्टिकोण और मूल्य कमोबेश एक जैसे ही रहे। अधिक सटीक रूप से कहें तो औपनिवेशिक भारत में मध्यम वर्ग में ज्यादातर सामाजिक अभिजात वर्ग शामिल था, जो शिक्षित होकर शहरी पेशे में आ गया था। स्वतंत्रता के बाद मध्यम वर्ग की संरचना में एक महत्वपूर्ण अवलोकन यह किया गया कि जो लोग संपत्ति के मालिक नहीं थे, वे मध्यम वर्ग के संदर्भ में उभरने लगे। ये लोग समाज के नए शिक्षित वर्ग हैं जो पूरी तरह से राज्य पर निर्भर हैं। उदारीकरण के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था बढ़ने लगी क्योंकि भारत में कॉर्पोरेट और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना की गई, जिसने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कई लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान किए। सूचना प्रौद्योगिकी पेशेवर (जिन्हें नया मध्यम वर्ग भी कहा जाता है) उन कर्मचारियों में से थे जिन्हें आईटी उद्योग के तेजी से बढ़ने से सबसे अधिक लाभ हुआ और वे नए मध्यम वर्ग के एक हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी पेशेवरों की वृद्धि ने भारत में मध्यम वर्ग के अध्ययन के प्रति नए आयाम और दृष्टिकोण लाए हैं।[126]

भारतीय मध्यम वर्ग की विविधतापूर्ण और जटिल प्रकृति यह दर्शाती है कि मध्यम वर्ग का अध्ययन किसी विशेष दृष्टिकोण से करना भी एक समस्या है। इस प्रकार, भारत में मध्यम वर्ग पर अध्ययन यह दर्शाता है कि यह जटिल और विविधतापूर्ण है। इस प्रकार, जैसा कि अध्याय की शुरुआत में कहा गया है, मध्यम वर्ग की अवधारणा को परिभाषित करना इस बात पर बहुत निर्भर करता है कि कोई क्या और किस संदर्भ में उपयोग करना चाहता है।

सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया वर्ग निर्माण को जन्म दे सकती है। सामाजिक गतिशीलता से हमारा तात्पर्य मुख्य रूप से ऊर्द्धवाधर गतिशीलता से है – वर्ग गतिशीलता, या तो ऊपर की ओर या नीचे की ओर।

इस प्रकार इस अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया के माध्यम से वर्ग निर्माण का विश्लेषण करना है। यह विशेष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के आगमन के साथ भारत में नए मध्यम वर्ग के उद्भव से संबंधित है। पश्चिमी देशों में मध्यम वर्ग का एक लंबा इतिहास है और भारतीय संदर्भ की तुलना में इसे अधिक आसानी से विभेदित किया जा सकता है जहां समाज अधिक विविध और जटिल है। पश्चिमी देशों में नया मध्यम वर्ग द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभरा। जबकि भारत में नया मध्यम वर्ग उदारीकरण के बाद उभरा। इस नए मध्यम वर्ग की एक महत्वपूर्ण विशेषता शैक्षणिक योग्यता का होना है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :-

1. व्हाइट, डब्ल्यू.एच. (1956). द ऑर्गनाइजेशन मैन. न्यूयॉर्क : साइमन एंड शूस्टर।
2. राइट, ई.ओ. (1997). क्लास काउंट्स : स्टूडेंट एडिशन. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. वैन डेर वीर, पीटर. (2005). 'वर्चुअल इंडिया : भारतीय आईटी श्रम और राष्ट्र–राज्य।' थॉमस ब्लोम हैनसेन और फिन स्टेपुटैट (सं.) द्वारा लिखित, सॉवरेन बॉडीज : पोस्टकोलोनियल वर्ल्ड में नागरिक, प्रवासी और राज्य। प्रिंसटन : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. वर्मा, पवन के. (2007)। महान भारतीय मध्यम वर्ग। नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स।
5. उपाध्याय, कैरल और ए.आर. वासावी, (2006)। भारतीय आईटी उद्योग में कार्य, संस्कृति और सामाजिकता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन। विकास में विकल्पों के लिए इंडो–डच कार्यक्रम को प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट। बैंगलोर।
6. टूरेन, एलेन। (1971)। उत्तर–औद्योगिक समाज : कल का सामाजिक इतिहास : क्रमादेशित समाज में वर्ग, संघर्ष और संस्कृति। लियोनार्ड एफ.एक्स. मेह्यू द्वारा अनुवादित। न्यूयॉर्क : रैंडम हाउस।
7. रस्तोगी, गौरव और बसब प्रधान. (2011). ऑफशोर : भारत वैश्विक व्यापार मानचित्र पर कैसे वापस आया। नई दिल्ली : पेंगुइन इंडिया।
8. रॉबर्ट, केनेथ, एफ.जी. कुक, एस.सी. क्लार्क, और एलिजाबेथ सेमोनॉफ. (1977). खंडित वर्ग संरचना. लंदन : हेनमैन।
9. पार्थसारथी, बालाजी. (2004, 3 मई). सूचना प्रौद्योगिकी का वैश्वीकरण : भारत के सॉफ्टवेयर उत्पादन और निर्यात के लिए घरेलू नीतिगत संदर्भ। पुनरावृत्ति : सॉफ्टवेयर इतिहास का एक अंतःविषय जर्नल।
10. मूर्ति, एन.आर. नारायण. (2001). इस सहस्राब्दी में भारत को एक महत्वपूर्ण आईटी खिलाड़ी बनाना। रोमिला थापर (सं.), भारत : एक और सहस्राब्दी? में. नई दिल्ली : पेंगुइन।
11. मेट्रो, आर.के. और रॉसी, एलिस एस. (1957). संदर्भ समूह व्यवहार के सिद्धांत में योगदान. आर.के. मर्टन में (सं.), सामाजिक सिद्धांत और सामाजिक संरचना, संशोधित संस्करण, ग्लेनको : द फ्री प्रेस। पृष्ठ 225–280।
12. खान, फिरोज। (2002)। ग्लोबल एज में सूचना समाज, नई दिल्ली : ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन।
13. जोशी, संजय। (सं.), (2010)। औपनिवेशिक भारत में मध्यम वर्ग। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 237-241

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किशोरावस्था में आजीविका चुनना

रंजीत कुमार यादव, शोध प्रज्ञ,
डॉ० सोनिया रानी, विभागाध्यक्ष,
मनोविज्ञान विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

किशोरावस्था में आजीविका चुनने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण और जटिल होती है। कई तरह की परिस्थितियाँ लिए गए निर्णय को प्रभावित करती हैं। अच्छी तरह से सूचित निर्णय लेने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जो उन्हें संभावित व्यवसायों के साथ अपनी योग्यताओं की जाँच, मूल्यांकन और संरेखित करने की स्वतंत्रता देता है। नौकरी चुनने के सफल तरीके जिनका उपयोग किशोर अच्छी तरह से सूचित नौकरी के निर्णय लेने के लिए कर सकते हैं, इस खंड में आगे बताए गए हैं।

(क) विस्तृत जानकारी संकलित करना :–

किशोरों को विभिन्न व्यवसायों के बारे में विस्तृत जानकारी संकलित करने के लिए खोज पर निकलना चाहिए। विश्वसनीय स्रोतों, आजीविकाखोज के लिए वेबसाइटों, साथ ही विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के साथ जानकारीपूर्ण चर्चाओं का उपयोग करके गहन शोध करना अमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। यह डेटा–संचालित रणनीति उन्हें बुद्धिमानी से निर्णय लेने के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करती है।

(ख) अनुभवात्मक शिक्षा को स्वीकार करना :–

सफल व्यवसाय–संबंधी गतिविधियों में संलग्न होना ज्ञानवर्धक हो सकता है। किशोर अंशकालिक नौकरी, स्वयंसेवी कार्य या कई क्षेत्रों में इंटर्नशिप कर सकते हैं। रुचि के इन प्रयासों में सफलता प्राप्त करने से न केवल आत्मविश्वास बढ़ता है बल्कि आवश्यक प्रयास की ठोस समझ भी मिलती है। ये मुठभेड़ें उचित नौकरी की संभावनाओं की पहचान करने की प्रक्रिया में कदम हैं।

(ग) आजीविका विकास के चरणों को पहचानना :–

आजीविका विकास के कई चरणों को स्वीकार करना महत्वपूर्ण है। किशोरों को हर स्तर की आवश्यकताओं को समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जैसे कि निर्देश, प्रशिक्षण और कौशल विकास। यह समझ उचित अपेक्षाओं को प्रोत्साहित करती है। इससे उनके लिए अपनी यात्रा को व्यवस्थित रूप से व्यवस्थित करना संभव हो जाता है।

(घ) विभिन्न सूचना स्रोतों का उपयोग करना :–

किशोरों को समझदारी से निर्णय लेने के लिए, उन्हें कई अलग–अलग स्रोतों से परामर्श करने की आवश्यकता होती है। सलाहकारों, पेशेवरों, आजीविका सलाहकारों और ऐसे लोगों के साथ चर्चा जो अपने–अपने

उद्योगों में पहले से ही अच्छी तरह से स्थापित हैं, वे विभिन्न दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं। इस संपर्क से संभावित नौकरी के रास्तों की व्यापक समझ सुनिश्चित होती है।

(ङ) बाधाओं को कम करने पर ध्यान केंद्रित करना :–

व्यवसाय चुनते समय, किशोरों को अक्सर अनिश्चितता और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। लोगों को निर्णय लेने में मदद करने के लिए डिजाइन किए गए हस्तक्षेपों को इन बाधाओं को तोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। आत्मनिरीक्षण को बढ़ावा देना, चिंताओं को पहचानना और गलतफहमियों को दूर करना किशोरों को खुले और पारदर्शी दृष्टिकोण के साथ आजीविका चुनने में सक्षम बना सकता है।

(च) परिवार के प्रभाव को संतुलित करना :–

किशोरों के व्यवसायों के विचारों पर परिवार के प्रभाव को कम करके आंकना असंभव है। आजीविका के विचार परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत से बहुत प्रभावित होते हैं। फिर भी, किशोरों को अपने हितों और परिवार के दृष्टिकोण के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए। परिवार के सदस्यों के साथ खुलकर बातचीत करने से अधिक सुविचारित निर्णय लेने की प्रक्रिया हो सकती है।

भारतीय युवाओं की आजीविका चुनने की दुविधा :–

भारतीय युवाओं द्वारा आजीविका चुनते समय सामना किए जाने वाले लक्ष्य और चुनौतियाँ एक कम आय वाले परिवार की दृढ़ निश्चयी 15 वर्षीय लड़की की टिप्पणियों में समाहित हैं।

परिवार :–

भारत में, किशोरों को महत्वपूर्ण पेशेवर चयन करने के लिए मजबूर किया जाता है क्योंकि कार्य वातावरण में तीव्र परिवर्तन होता है, जो गहन परिवर्तनों द्वारा चिह्नित होता है। बड़े पैमाने पर, आजीविका विकास, सहायता सेवाएँ और भारतीय वातावरण मायावी लगते हैं। अपनी सामाजिक स्वीकृति और सैद्धांतिक सुदृढ़ता के बावजूद। इस विसंगति को हल करना युवा लोगों को बेहतर भविष्य के लिए सशक्त बनाने की सख्त जरूरत है (डॉ. गिदोन अरुलमानी)।

नई अर्थव्यवस्था का जीवंत नौकरी बाजार विकल्पों की प्रचुरता से लुभाता है, जो बहुत सारी संभावनाओं के साथ उज्ज्वल भविष्य की गारंटी देता है। बहुत से नए स्नातक प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (उत्कृष्टता के केंद्र) में दाखिला लेने की इच्छा रखते हैं ताकि वे प्रतिष्ठित और अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी पा सकें। परंपरागत रूप से, अंतिम उपाय विश्वविद्यालय में जाना है। व्यावसायिक प्रशिक्षण का विकल्प अभी भी काफी दुर्लभ है। फिर भी, इसे अक्सर कलंकित माना जाता है। जबकि डॉक्टर, वैज्ञानिक और कंप्यूटर वैज्ञानिक हाल ही में किए गए एक अध्ययन (WORCC-IRS, 2006) के अनुसार सबसे सम्मानित व्यवसायों में से हैं। हालाँकि इन आजीविका के लिए किए गए निर्णयों और आत्म–प्रभावकारिता के बीच बहुत कम संबंध है, पेशेवर ज्ञान या स्वार्थ (प्रो. ग्लेन क्रिस्टो)। आजीविका और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए हाई स्कूल आवश्यक हैं।

आजीविका मेले, सूचनात्मक पैम्फलेट, समूहों में बातचीत और बहुत कुछ सहित विभिन्न चैनलों के माध्यम से छात्रों को सहायता। स्कूल अंशकालिक रोजगार में भी मदद कर सकते हैं। छात्रों के लिए संभावनाएँ, जिससे उन्हें अपरंपरागत व्यवसायों में प्रशिक्षु के रूप में उपयोगी अनुभव प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके।

फिर भी, व्यावसायिक शिक्षा में केवल निर्देश से अधिक शामिल होना चाहिए। व्यावसायिक कौशल इसमें वास्तविक वैश्विक अनुप्रयोगों पर आधारित अधिक व्यापक पाठ्यक्रम शामिल होना चाहिए। उदाहरण के लिए, उत्पादन प्रक्रिया में भाग लेने वाले छात्र कच्चे माल के स्रोतों और कीमतों, प्रासंगिक प्रौद्योगिकियों के विकास, साथ ही अन्य संबंधित विषयों में रुचि विकसित कर सकते हैं। सीखने की प्रक्रिया को प्रत्येक जांच के साथ बढ़ने की जरूरत है, जो आमतौर पर मानक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में किए जाने वाले काम से कहीं अधिक गहराई तक जाती है। कक्षा में कार्य अनुभवों को शामिल करके, छात्र उपयोगी ज्ञान और योग्यताएँ प्राप्त कर सकते हैं और साथ ही साथ शैक्षणिक विषयों की अपनी समझ में सुधार कर सकते हैं। यह पारस्परिक रूप से लाभकारी है। कार्य–शिक्षा साझेदारी का लक्ष्य छात्रों के दृष्टिकोण, क्षमताओं, स्वभाव और समझ को बदलना होना चाहिए, ताकि अंततः उन्हें उनके चुने हुए व्यवसायों में समृद्ध भविष्य के लिए तैयार किया जा सके। (किशोरावस्था योजना पर कार्य समूह की दसवीं पंचवर्षीय रिपोर्ट, भारत सरकार, योजना आयोग)।

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, पॉलिटेक्निक, श्रमिक विद्यापीठ और इसी तरह के अन्य व्यावसायिक स्कूलों को अपने कार्यक्रमों को अपडेट करके उन्हें अधिक प्रासंगिक बनाना चाहिए। अपनी व्यावसायिक पृष्ठभूमि में अधिक आविष्कारशील, आकर्षक और विविधतापूर्ण। विभिन्न पृष्ठभूमियों से लोगों को शामिल करने वाले एक राष्ट्रीय कोर समूह की स्थापना इन कक्षाओं को बढ़ाने के लिए मूल विचार प्रस्तुत कर सकती है। आदर्श रूप से, इस उत्साह को समझदारी पूर्ण आजीविका विकल्पों में मार्गदर्शन करने के लिए एक व्यापक सहायता प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में, व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए ऐसी सुविधाएँ स्थापित करना आवश्यक है जो आधिकारिक स्कूली शिक्षा के साथ मिलकर कई अल्पकालिक पाठ्यक्रम प्रदान करती हों। इन सुविधाओं को छात्रों को विभिन्न उद्योग क्षेत्रों में व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने और उन्हें इन व्यवसायों के प्रबंधन में अधिक सक्रिय रूप से शामिल करने पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए। युवाओं को आवश्यक संसाधन प्रदान करने के लिए उनके उत्साह को बढ़ाने और उनके लिए एक व्यापक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए उनकी शिक्षा की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। निष्कर्ष रूप में, भारत के युवा महत्वपूर्ण आजीविका अनिश्चितताओं का सामना कर रहे हैं। व्यापक शिक्षा और सक्रिय आजीविका प्रशिक्षण के साथ, ज्ञानवर्धक, संतोषजनक और प्रभावशाली पेशेवर विकल्पों को उजागर करना संभव है। अब समय आ गया है कि इस अंतर को पाटा जाए और एक ऐसा पोषण करने वाला माहौल बनाया जाए जो भारतीय युवाओं को आधुनिक कार्यबल की जटिलता से सक्षमतापूर्वक और आत्मविश्वास से निपटने के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करे।

आजीविका के निर्णयों पर माता–पिता का प्रभाव :–

माता–पिता की जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों को यथासंभव सर्वश्रेष्ठ अवसर दें। आजीविका के विकल्पों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण प्रभाव। माता–पिता के पास अपने बच्चों को काम और आजीविका के अवसरों की जटिलताओं से निपटने में मदद करने के लिए अनगिनत विकल्प हैं, दोनों आधिकारिक और अनौपचारिक संदर्भों में।

बच्चों को चुनौतीपूर्ण कक्षाएँ लेने के लिए प्रेरित करना, नई क्षमताओं के अधिग्रहण को प्रोत्साहित करना, परिवार के माहौल में आत्मविश्वास को बढ़ावा देना और आजीविका की खोज के लिए अनौपचारिक संबंधों को प्रोत्साहित करना कुछ ऐसी रणनीतियाँ हैं जिनका माता–पिता उपयोग कर सकते हैं। माता–पिता का समर्थन

और सलाह केवल आजीविका या स्कूली शिक्षा पर मार्गदर्शन देने से कहीं अधिक है। इसमें ऐसे आयोजनों की योजना बनाना शामिल है जो किसी के आजीविका को आगे बढ़ाते हैं।

प्रगति :–

परिवार के साथ घूमना, किताबों जैसी सामग्री की उपलब्धता और दोनों से परिचय इस प्रक्रिया में भुगतान और अवैतनिक दोनों तरह के रोजगार पद शामिल हैं।

कार्यस्थल से किस्से साझा करना :–

कार्य प्रक्रियाओं के उदाहरण प्रदान करके माता–पिता को एक सुरक्षित और सहायक पारिवारिक माहौल को बनाए रखते हुए पेशेवर जीवन की जटिलताओं को समझने में मदद करता है। यह एक सहकारी रणनीति जोखिम मूल्यांकन और खोजपूर्ण आचरण जैसे महत्वपूर्ण घटकों को शामिल करती है, ताकि पेशेवर पहचान की एक मजबूत भावना विकसित हो सके। यद्यपि युवावस्था में ही अक्सर शुरुआती पेशेवर चयन किए जाते हैं, लेकिन यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि अपने आजीविकाको विकसित करना एक सतत प्रक्रिया है। परिवार का प्रभाव ऐसे शुरुआती निर्णयों से व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। माता–पिता जो अपने बच्चों की संभावनाओं को प्रभावित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को समझते हैं और अपने पेशे का उपयोग पूरे परिवार की मदद करने के लिए कर सकते हैं। सावधानी पूर्वक तैयारी और काम के साथ, माता–पिता अपने बच्चों को अमूल्य दिशा प्रदान कर सकते हैं जो उन्हें सफल होने और बुद्धिमान पेशेवर निर्णय लेने में सक्षम बनाता है, जिससे एक अधिक समृद्ध और समृद्ध भविष्य की नींव रखी जा सके।

पेशेवर विकल्प पर माता-पिता का मार्गदर्शन :–

अकादमिक शोध अध्ययनों ने माता–पिता के व्यवहार और किशोरावस्था के शुरुआती आजीविका विकास के बीच जटिल संबंधों में अंतर्दृष्टि प्रदान की है। केलर और व्हिस्टन (2008) द्वारा किए गए एक प्रसिद्ध अध्ययन ने स्पष्ट पेरेंटिंग प्रथाओं और अपने आजीविका में युवा लोगों की बढ़ती आत्म–प्रभावकारिता के बीच संबंध को देखा। उनके निष्कर्षों ने दर्शाया कि पेशेवर विकास आत्म–प्रभावकारिता और पेरेंटिंग तकनीकों के बीच मुख्य संबंध, और यह कि अधिक महत्वपूर्ण देखभाल करने वाले मनोसामाजिक व्यवहार एक निश्चित नौकरी के अनुरूप माता–पिता की गतिविधियों की तुलना में अधिक सक्रिय प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त, डेरिडर (1990), जिन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि किशोरों के रोजगार को रोकने में माता–पिता की शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण है। विकास, यह इंगित करते हुए कि कम शिक्षा वाले माता–पिता एक बाधा हो सकते हैं। सीमित वित्तीय और शैक्षिक संसाधनों वाले घर में पैदा होना न केवल कॉलेज जाने या पेशेवर उद्देश्यों को प्राप्त करने की संभावना को कम करता है, बल्कि यह किसी पेशे के लिए बच्चे की पसंद को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, पारिवारिक आय एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में दिखाई देती है जो आजीविका के विकास को प्रभावित करती है। किशोरों के पेशेवर विकास में माता–पिता की भागीदारी की तीन श्रेणियों की पहचान की गई।

संदर्भ सूची :–

1. वोड्रासेक, एफ. (2001)। परिचय : जीवन पाठ्यक्रम और जीवन–काल सिद्धांत में प्रगति का उपयोग करके आजीविका विकास में नवाचार करना। जर्नल ऑफ वोकेशनल बिहेवियर, 61, 375–380

2. वाचिरा, डी.डब्लू. (2018)। किनांगोप उप–काउंटीय न्यांदरुआ काउंटी, केन्या में मिश्रित दिन माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों के बीच माता–पिता के चर और आजीविका विकल्पों के बीच संबंध। अप्रकाशित एम. एड. थीसिस। केन्याटा : केन्याटा विश्वविद्यालय।
3. वांग, एम.टी., और शेख–खलील, एस. (2014)। माता–पिता का व्यवहार और किशोरों का अवसाद : भविष्य के समय के परिप्रेक्ष्य की मध्यस्थ भूमिका। जर्नल ऑफ यूथ एंड एडोलसेंस, 43(10), 1503–1513.
4. वांग, वाई. और चेन, एक्स. (2016). स्कूली बच्चों में नियंत्रण का स्थान और मानसिक स्वास्थ्य : एक मेटा–विश्लेषण. जर्नल ऑफ स्कूल साइकोलॉजी, 52(1), 35–48. वेबस्टर (1989).
5. वेबस्टर का अपना विश्वकोश अंग्रेजी भाषा का संक्षिप्त शब्दकोश. न्यूयॉर्क : पोर्टलैंड हाउस. वेबस्टर (2018).
6. वेबस्टर का अपना विश्वकोश अंग्रेजी भाषा का संक्षिप्त शब्दकोश. न्यूयॉर्क : पोर्टलैंड हाउस. व्हिस्टन, के. सी. और केलर, बी.के. (2004).
7. आजीविका विकास पर पारिवारिक उत्पत्ति का प्रभाव : एक समीक्षा और विश्लेषण. काउंसलिंग साइकोलॉजी, 32,493–568. व्हिटनी, एफ. (1964). शोध के तत्व. नई जर्सी : प्रेंटिस हॉल।
8. अहमद, के., आलम, के.एफ. और आलम, एम. (1997)। न्यूजीलैंड में छात्रों के आजीविका विकल्प को प्रभावित करने वाले कारकों का एक अनुभवजन्य अध्ययन। लेखा शिक्षा : एक आंतरिक जर्नल, 6(4), 325 – 335।
9. अल्बर्टो, ए. (2010)। मध्य विद्यालय के छात्रों में भावनात्मक बुद्धिमत्ता, माता–पिता की पालन–पोषण शैली और आत्म–पहचान के साथ आजीविका परिपक्वता के बीच संबंध। द फैमिली जर्नल, 22(2)। 8 अक्टूबर, 2016
10. अली, एस.आर. मैकव्हर्टर, ई.एच., और क्रोनिस्टर, के.एम. (2005)। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले किशोरों के लिए आत्म–प्रभावकारिता और व्यावसायिक परिणाम अपेक्षाएँ : एक पायलट अध्ययन। जर्नल ऑफ आजीविका असेसमेंट, 13, 40–58।
11. एम.एड शोध परियोजना, नैरोबी विश्वविद्यालय।
12. ऑल्टमैन, जे.एच. (1997)। पारिवारिक अनुभवों के संदर्भ में आजीविका विकास।
13. विविधता और महिलाओं के आजीविका विकास में : किशोरावस्था से वयस्कता तक, हेलेन एस. फार्मर द्वारा संपादित, पृष्ठ 229–242।
14. थाउजेंड ओक्स, सीए : सेज एंटनी, सोटो, जेम्स (1998), पुरुषों और महिलाओं को मेडिकल आजीविका आकांक्षाओं को बनाने के लिए प्रभावित करने वाले कारकों की खोज।
15. जर्नल ऑफ कॉलेज स्टूडेंट्स डेवलपमेंट, 39(5), 417–426
16. अर्बोना, सी., फैन, डब्ल्यू., फांग, ए. ओल्वेरा, एन. और डियोस, एम. (2021)।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 242-247

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामचरित्रमानस में कलागत सौंदर्य

रीना कुमारी, शोधार्थी,
डॉ. संजय कुमार, अध्यक्ष,
डॉ. दुष्यंत सिंह, सह प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, वाई. बी. एन. विश्वविद्यालय, राँची।

सौंदर्य मनुष्य की अंतर्तम आकांक्षा का प्रतीक है। अतएव मानव जीवन की आदिम अवस्था से ही किसी न किसी रूप में सौंदर्य की आराधना, उपासना करता आया है। मनुष्य की अंतर्तम आकांक्षा होने के साथ–साथ सौंदर्य की यह साधना एक ओर जहां उसके अद्‌भुत आकर्षण का केन्द्र रही है, वहीं दूसरी ओर उसके अपूर्व आनन्द का स्रोत भी रही है। प्रथम प्रभात में प्रथम मनुष्य के नेत्रोन्मीलन के साथ सौंदर्यपूर्ण सूर्य, सरिता, निर्झर, वन–प्रान्त, गिरि–गह्वर, चांद–तारे न जाने कितने सौंदर्य के स्रोत रहे होंगे। आज आधुनिक मानवों के लिए भी वे उसी रूप में आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं, जिस रूप में प्रथम प्रभात में थे। यदि यह कहा जाय कि उनके रूपाकर्षण का उद्‌घाटन कर उसमें अभिवृद्धि ही की गयी है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। अनुराग–रंजिता उषा–सुन्दरी तथा रजत वर्ण रजनी रानी किस सहृदय के अन्तर में न राजती है। मेरे विचार से सत्य एक सरोवर है जिसमें शिवामृत भरा है और उसमें सुन्दर शतदल लहलहा रहा है। शिव जल तथा सुन्दर ही उसका कमल है। कोई किसी वस्तु को क्यों सुन्दर कहता है और किसी को क्यों कुरूप ? इसकी वास्तविक व्याख्या नहीं हो सकती है। सौंदर्य एक अव्याख्येय वस्तु है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि देखनेवाली दृष्टि विवृत्ति करनेवाले मन को क्षण–क्षण में जो नवीन मालूम पड़े, उसी को सौंदर्य कहते हैं। आचार्य ने इसी को 'क्षणे–क्षणे यावन्नमुपैति तदैव रूपं नवीनतायाम्' कहकर हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है।

आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास को एक साथ ही कवि शिरोमणि और भक्त–चूड़ामणि कहा है। उनके ऐसा कहने का मात्र अभिप्राय यही है कि भक्ति एवं काव्यकला इन दोनों क्षेत्रों में तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। वास्तविक बात यह है कि बिना सच्ची भक्ति के सच्ची कविता से साक्षात्कार होना अत्यन्त असम्भव व्यापार है। सच्चा भक्त ही सच्चा कवि हो सकता है। बिना भक्ति की कविता दो कौड़ी की होती है। उसमें हृदय के हिलाने की शक्ति का पर्याप्त अभाव होता है तथा वह अल्पजीवी भी होती है। मेरे विचार से निश्छल मानस में ही कविता का उत्स छिपा रहता है और इसी उद्‌गम स्थल से भनिति भक्ति की सरिता का आश्रय पाकर रेती में भी खेती की शक्ति देकर शीतल शावल एवं शस्य–श्यामला के दर्शन कराती है अन्यथा कविता की सरिता रीति होकर रीति की रेती में रोती रह जाती है। वस्तुतः तुलसी की कविता उनकी भक्ति का ही प्रतिरूप थी। उनकी भक्ति ही मानो

वाणी का आवरण पहनकर कविता के रूप में व्यक्त हुई थी। उनकी कविता अपने आप में अपना उद्देश्य नहीं थी।

गोस्वामी जी का काव्यार्थ लोक–कल्याण और उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' में ही निहित 'सर्वान्तः सुखाय' था। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार 'गोस्वामी तुलसीदास की कविता का आदर्श लोक–जीवन का कल्याण था और स्वान्तः सुखाय का उद्देश्य रखते हुए भी उनकी कविता परान्तः सुखाय भी उतनी ही थी।'[1]

रामचरितमानस, भगवान राम के जीवन के बारे में लिखी गई महाकाव्य है जो गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित किया गया। यह काव्य हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण काव्यों में से एक है और भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

रामचरितमानस में कलागत सौंदर्य का विस्तारित वर्णन मिलता है। तुलसीदास ने रामायण के कथानक में अपार सौंदर्य का वर्णन किया है और इसे शब्दों में अद्वितीय रूप से व्यक्त किया है। वह राम के चरित्र, रूप और गुणों की सुंदरता को उजागर करता है।

कलागत सौंदर्य का अभिप्रेत अर्थ है कि रामचरितमानस में भगवान राम के सम्पूर्ण चरित्र, रूप और गुणों की शोभा बहुत ही सुंदरता पूर्ण होती है। उसने राम को एक पूर्णता पूर्ण अद्वितीय पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है।

रामचरितमानस के आरम्भ में ही गोस्वामी जी ने लिखा है :–

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
बिधुबदनी सब भांति संवारी।
सोह न बसन बिना बर नारी।।
कबि न होउं नहिं बचन प्रबीनू।
सकल कला सब बिद्या हीनू।।'
कबि न होउं नहिं चतुर कहावउँ।
मति अनुरूप राम गुन गावउं।।[2]'

में जहां उनकी विनयशीलता का पता चलता है वहीं यह भी संकेत है कि काव्य–रचना का लक्ष्य कविता करना नहीं था। जिस अवस्था में उन्होंने कविता करना शुरू किया, उससे यह भी पता चलता है कि यशोलिप्सा का भी उनमें एकदम अभाव था। उन्होंने जो कुछ कहा है वह केवल कवि–चातुर्य के फेर में पड़कर नहीं बल्कि इसलिए कि अपने हृदय की अनुभूति को बिना प्रकट किए उन्हें चौन नहीं मिलता था। कदाचित् यही आकुलता कविता को अबाध प्रवाह देती है। प्रयत्न–प्रसूत कविता वास्तविक कविता नहीं कही जा सकती। उसमें कविता का बहिरंग हो सकता है पर यह आवश्यक नहीं कि जहां कविता का बहिरंग दिखाई दे, वहीं उसका आभ्यन्तर भी मिल जाय। सच्ची, सजीव एवं सप्राण कविता के लिए यह आवश्यक है कि कवि की मनोवृत्तियां वर्ण्य विषय के साथ एकाकार हो जायें।

तुलसीदास ने राम की विभिन्न लीलाओं, आचरण, व्यवहार और भावों को सुंदरता के साथ वर्णन किया

है। उन्होंने राम के सौंदर्य को मन, वचन और कर्म में प्रकट किया है। राम के चरित्र की मनोहारी गुणवत्ता और रूप की अत्यंत मधुरता को व्यक्त करने के लिए विभिन्न रंगीन वर्णन किए गए हैं।

कलागत सौंदर्य के माध्यम से, तुलसीदास ने रामायण की कथा को सजाया है और पाठकों को राम के अद्वितीय सौंदर्य का आनंद लेने का अवसर प्रदान किया है। रामचरितमानस भक्ति, भक्तिभाव और सौंदर्य के एक महान प्रदर्शन के रूप में माना जाता है।

रामचरितमानस, संत तुलसीदास द्वारा रचित हिन्दी एपिक काव्य है जो भगवान श्रीराम की कथा पर आधारित है। इस काव्य में कलागत सौंदर्य को महत्वपूर्ण भूमिका मिली है।

कलागत सौंदर्य का अर्थ होता है कविता या रचना में सौंदर्य की उपस्थिति। तुलसीदास ने रामचरितमानस में भगवान राम, भक्ति, प्रेम, नीति, धर्म और संस्कृति के माध्यम से सौंदर्यपूर्ण रचना की है। इसमें श्रीराम की परम श्रृंगार भक्ति और प्रेम के माध्यम से रचना की गई है जो काव्य को आकर्षक बनाती है।

रामचरितमानस में श्रीराम के अद्भुत सौंदर्य, उनकी दिव्य लीलाएं, मुक्ति के मार्ग की प्रशंसा और उनके लीलापूर्वक अवतारों का वर्णन किया गया है। काव्य में भगवान राम के दिव्य स्वरूप की चित्रण उनके वैभवपूर्ण विवरणों के माध्यम से की गई है, जिससे पाठकों को रामचरितमानस की आकर्षण और मग्नता का अनुभव होता है।

इस प्रकार, रामचरितमानस में कलागत सौंदर्य का महत्वपूर्ण स्थान है और इसे एक अत्यंत सौंदर्यपूर्ण काव्य बनाता है।

रामचरितमानस, भगवान श्रीराम के जीवन के विभिन्न पहलुओं को व्यंग्यपूर्ण एवं सौंदर्यपूर्ण ढंग से व्यक्त करने वाले एक हिंदी काव्य ग्रंथ है। संपूर्ण ग्रंथ में कला और सौंदर्य के अनेक पहलू दिखाए गए हैं।

रामचरितमानस के लेखक गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी काव्य रचना में भगवान राम के गुण, लीलाएं, प्रेम, शक्ति और देवी रूपों को ब्रह्मांड की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के साथ संबंधित किया है। इसके साथ ही, उन्होंने मानवीय रिश्तों, प्रेम और विश्वास के विभिन्न आयामों को भी सुंदरता के साथ वर्णित किया है।

श्रीरामचरितमानस में कला की विविधता भी प्रकट होती है। तुलसीदास जी ने आकार, रंग, स्पर्श, शब्द, गन्ध और रस की विविधता का वर्णन किया है। वे चित्रकला, संगीत, नृत्य, काव्य आदि कलाओं के माध्यम से भगवान राम के महिमा–मंगल को साक्षात्कर कराते हैं।

जब कवि की सब भावनाएं एकमुख होकर जागृत हो उठती हैं, तब कवि का हृदय स्वतः ही उद्‌गारों के रूप में प्रकट होने लगता है। इस अभिव्यक्ति के लिए न कवि की ओर से प्रयत्न की आवश्यकता होती है। और न कोई बाहरी रुकावट ही उसे रोक सकती है। गोस्वामीजी में इस तल्लीनता की पराकाष्ठा हो गई थी। उनकी निःशेष मनोवृत्तियां रामाभिमुख होकर जागृत हुई थीं। भगवान् श्रीराम के साथ उनके मनोभावों का इतना तादात्म्य हो गया था कि जो वस्तु उनके और राम के बीच व्यवधान होकर आवे, उससे कदापि उनके हृदय का लगाव नहीं हो सकता था। यही कारण है कि भगवान् राम के अतिरिक्त किसी के विषय में उन्होंने अपनी वाणी का उपयोग नहीं किया। वस्तुतः राम की शक्ति–भक्ति की अनुगता–वशीभूता वाणी भी है–

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई।

सुमिरत सारद आवति धाई।।

रामचरित सर बिनु अन्हवायें।

सो श्रम जाइ न कोटि उपायें।।

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी।

कबि उर अजिर नचावहिं बानी।।[3]

यद्यपि तुलसीदासजी का स्पष्ट कथन है :–

कबित बिबेक एक नहीं मोरें।

मैं सच कहता हूं, कागद लिखो।[4]

फिर भी, इस रूपक के द्वारा काव्य–कला की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तुलसीदास ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे पत्थर के पृष्ठों पर अमिट उत्कीर्ण मूर्तियों के समान शाश्वत मान्यता–सम्पन्न हैं :–

'हृदय सिंधु समान, मन सीप समान।

स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।

जौं बरसे विचारमय।

होहिं कबित मुकुटमणि चारू।।'[5]

स्वाति नक्षत्र के आगमन पर जब सिंधु–स्थित सीप में वर्षा होती है तब उसमें मोती उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार हृदय–स्थित मति में शारदा की प्रेरणा से जब सुन्दर विचारों की वर्षा होती है तब उसमें कविता उत्पन्न होती है।

यहां हृदय सिंधु, मति सीप, सरस्वती स्वाति हैं। जब हृदय रूपी समुद्र में जो बुद्धि मति सीप है उसमें स्वातिरूपी शारदा की कृपा से विवेक–वारि की वर्षा होती है, तभी कविता–मुक्ता में चारुता आती है तथा उसकी संज्ञा भी सार्थक होती है। स्यात् शारदा की यह कृपा तभी होती है जब राम की कृपा होती है।[6]

रामचरितमानस के श्लोक, दोहे, छंद आदि में उनकी कवित्वरता, रसवत्ता और सौंदर्य प्रतीत होती है। उन्होंने भाषा का मधुरता और सुंदरता का ध्यान रखा है जिससे पाठकों को आकर्षित किया जाता है।

संक्षेप में कहें तो, रामचरितमानस एक आदर्शवादी और भक्तिपूर्ण काव्य है, जिसमें कलागत सौंदर्य को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से पाठक न केवल भगवान राम के जीवन को समझते हैं, बल्कि उन्हें सौंदर्यपूर्ण रूप से अनुभव भी करते हैं।

रामचरितमानस के प्रत्येक सर्ग में, तुलसीदास ने अपनी कविता में सुंदरता को महत्व दिया है। उन्होंने विविध चित्रणों, वर्णनों और रंग–रूप के माध्यम से रामायण के घटनाक्रमों को सुंदरतापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में विशेष रूप से प्रकृति, नदियाँ, पर्वत, वन, फूल, पक्षियों, जल–जीवों, मृगों, देवी–देवताओं, आकृति–चित्रों, स्वर्ग आदि का सौंदर्यपूर्ण वर्णन किया गया है।[10]

तुलसीदास ने भगवान रामचंद्र के स्वरूप को भी अत्यंत सुंदरता से चित्रित किया है। उन्होंने रामचंद्र

भगवान के चेहरे, आकृति, मुद्रा, वस्त्र, आभूषण आदि के अंगों को बहुत सुंदरतापूर्णता से वर्णित किया है। इसके साथ ही, वनवास काल में भगवान राम के साथी लक्ष्मण, सीता, हनुमान, वानर सेना आदि के स्वरूपों को भी सौंदर्यपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार, रामचरितमानस में सौंदर्य और कला द्वारा भगवान राम और उनके विभिन्न आवरणों का वर्णन किया गया है। यह महाकाव्य हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग है और उसकी सुंदरता और कलागत विशेषता इसे और भी आकर्षक बनाती है।

तुलसीदास की कविताओं में श्रीराम का चरित्र विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है, जिसमें उनकी दिव्यता, सौंदर्य, तेजस्विता और गुणों की महिमा उजागर होती है। इसके अलावा, उनकी पत्नी सीता का भी बड़ा महत्वपूर्ण रोल है और उनकी सौंदर्य, पतिव्रता और सम्पूर्णता को वर्णित किया गया है।[12]

यह कविता महान कवि तुलसीदास द्वारा उच्च काव्यत्मकता और कलागत सौंदर्य के साथ लिखी गई है, जिसे साहित्यिक और साधारण दोनों ही दृष्टिकोण से मान्यता प्राप्त है। इसके अंतर्गत सौंदर्य को प्रशंसा किया गया है और यह काव्य साहित्य की अद्वितीय रचनाओं में से एक माना जाता है।

रामचरितमानस में कलागत सौंदर्य का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। तुलसीदास ने इस महाकाव्य में कविताओं, दोहों और छंदों के माध्यम से रामायण की कथा को सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं में राम, सीता, हनुमान और अन्य पात्रों के सौंदर्य, मधुरता और प्रेम का वर्णन किया गया है।[13]

तुलसीदास के रचित 'रामचरितमानस' में श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान और अन्य पात्रों की चरित्रिक स्थिति, रूप विशेष, वस्त्र, आभूषण आदि का विवरण बड़े ही सुंदर ढंग से किया गया है। उन्होंने इन पात्रों के चरित्र, सौंदर्य, आकृति और आभा को एक सामर्थ्य पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है, जो पाठकों को उनके मन में चित्रित कर देता है।

रामचरितमानस का कलागत सौंदर्य उसकी भाषा, संरचना और रचनात्मकता में निहित है। इस काव्य की रचना आदिकावि वाल्मीकि की महाकाव्य 'रामायण' पर आधारित है, लेकिन तुलसीदास ने इसे अपने समय के लोगों के भावों और संस्कृति के साथ जोड़कर समृद्ध किया है।

कलागत सौंदर्य के अलावा, रामचरितमानस में भारतीय संस्कृति, धर्म और नैतिकता की महत्वपूर्ण सिद्धांतों का भी बहुत महत्वपूर्ण प्रतिपादन होता है। भगवान श्रीराम के जीवन के माध्यम से, तुलसीदास ने विभिन्न धार्मिक, नैतिक और मानवीय मुद्दों को सुंदरता के साथ प्रस्तुत किया है।

सम्पूर्णतया, रामचरितमानस का कलागत सौंदर्य उसके साहित्यिक गुणों, व्याकरण, अलंकार, भाषा, रस–भाव, संरचना और रचनात्मकता में प्रतिष्ठित है, जो इसे एक महान काव्य बनाता है।[14]

तुलसीदास के द्वारा रचित रामचरितमानस में दृश्य, वर्णन और वात्सल्य रस की विविधता होती है। रामायण की कथा को सुंदरता से भरपूर ढंग से प्रस्तुत करके, तुलसीदास ने चरित्रों को जीवंत बनाया है और पाठकों को उनके साथ जुड़ाने का अवसर दिया है। यह काव्य रचना न केवल साहित्यिक महत्व रखती है, बल्कि विभिन्न कला–संगणनाओं में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है, जैसे कि नाट्यशास्त्र, संगीत और कवि सम्मेलनों में।

सन्दर्भ सूचि :-

1. काव्यशास्त्र का इतिहास– डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 345
१. रामचरितमानस – बालकांड – 9/2
3. वही–8/4
4. वही – 11/5
5. वही – 10/28
6. वही – 104/3
7. वही–8/6
8. वही– 10/4
9. वही–38/5
10. वही – दोहा – 9
11. वही–9/4
12. वही–8/5
13. वही–9/4
14. वही–104/3

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2025 Page No. : 248-258

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामचरितमानस के राम कथा का अभिनव स्वरूप

सतीश कुमार, शोध प्रज्ञ,
डॉ० संजय कुमार, प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" अतः प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की मूल प्रवृत्तियों का संवाहक होता है। उसका अपने युग से अविच्छिन्न संबंध रहता है। साहित्यकार युगीन संदर्भों के आधार पर कभी नवीन कथाएँ गढ़ता है तथा कभी पूर्व प्रचलित कथाओं का आधार ग्रहण कर उनमें नए अर्थ भरता है, ताकि वह अपने युग का मार्ग प्रशस्त कर सके। प्रेमचंद के अनुसार– "साहित्यकार बहुधा अपने देश काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता हैय पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है।"

अर्थात् प्रत्येक स्थिति में वह अपने युग के लिए बेचौन रहते हुए सृजन के मार्ग पर अग्रसर होता है। वह समाज को दिशा देने के लिए लोक–हृदय में स्थान बना चुकी पौराणिक कथाओं को आधार बनाता है और युग के अनुरूप उन्हें नए ढंग से विवेचित करने लगता है, फिर राम–कथा तो भारतीय लोक की सबसे प्राचीन कथाओं में से है। वह लोक–रुचि व लोक–प्रसिद्धि, दोनों ही स्थापनाओं से ओतप्रोत है। अतः युगदृष्टाओं के लिए राम से बेहतर चरित्र और हो भी क्या सकता था? यही कारण है कि युग–परिवर्तन के साथ–साथ राम का वृत्त अनादिकाल से स्वयं ही काव्य का रूप लेकर परिणत होता आया है।

राम का स्वरूप कभी ऐतिहासिक, कभी पौराणिक तो कभी मिथकीय आधार पर विवेचित होते हुए युग–परिवर्तन के साथ समाज को नई दिशा देता रहा है। राम को काल्पनिक पुरुष सिद्ध करने वाले विद्वानों में डॉ. वेबर, विंटरनित्ज, भंडारकर, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी व डॉ. सेन प्रमुख हैं तथा ऐतिहासिक पुरुष मानने वाले विद्वानों में डॉ. कामिल बुल्के, धीरेन्द्र वर्मा आदि का नाम लिया जा सकता है। इन दोनों ही श्रेणियों का सार मत भी यदि स्वीकार किया जाए, तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राम–काव्य सभी आदिकाव्यों में प्राचीन है तथा भारतीय जनमानस के लिए नई शक्ति का संचारक है। विनोद शाही के अनुसार यह राम–काव्य उस समय हमारे समाज में स्थान बना रहा था, जब हम जंगलों से निकलकर सामाजिक संरचना का एक निश्चित ढाँचा तलाश कर रहे थे– "एक सभ्यतामूलक परिघटना के सारतत्त्व की तरह, एक 'कथा' के नाम 'राम', अभी

तक हमारे अंग–संग चलते हुए, विकास कर रहे हैं। वे उस दौर से अपना व्यक्तित्व पाते हैं, जब भारतीय समाज मातृसत्ता से पितृसत्ता में प्रवेश कर रहा थाय जब जांगल या वनवासी जीवनपद्धति और व्यवस्था धीरे–धीरे कृषि–आधारित नयी समाज संरचना को उपलब्ध हो रही थी और जब कबीलायी मूल्य और संबंध टूटने–बिखरने लगे थे तथा एक नई अधिक विकसित सामंतीय संबंधों व मूल्यों की चेतना, यज्ञसंस्कृति के रूप में, सत्तावर्चस्व का केन्द्र बनने की कोशिश कर रही थी।" अर्थात् राम का चरित्र उस युग को संदर्भित कर रहा था, जब हम राज्य के एक नवीन ढाँचे का निर्माण करने में संलग्न थे।

ऐसे विशद ढाँचे को खड़ा करने वाले राम–काव्य के सबसे प्राचीन स्त्रोत के रूप में हमारे सामने वाल्मीकि रामायण है, जिसमें राम एक विराट व्यक्तित्व के रूप में वर्णित हैं। वाल्मीकि–युग में एक ऐसे विराट चरित्र का आख्यान अपेक्षित था, जो जीवन का एक ऐसा सुदृढ़ ढाँचा प्रस्तुत करे, जिसे अपनाकर लोक राज्य, परिवार, धर्म आदि की संकल्पनाएँ समझ व सीख सके, इसलिए "वाल्मीकि ने मानवीय विकास की चरम सीमा तक मानवीय गुणों के अनुपम आदर्श के रूप में प्रभु रामचंद्र को, मानवीय गुणों से युक्त एक मानव के रूप में ही प्रस्तुत किया। उनकी माता–पिता के प्रति भक्ति, भाइयों के प्रति स्नेह, पत्नी के प्रति प्रेमदृउसकी करुणा और विशुद्धता में–सबके प्रेम का विषय बन गया है। ये और प्रतिदिन के मानव–जीवन के अन्यान्य पक्षों को इतने उत्कृष्ठ रूप में रखा गया है कि जिनसे स्फूर्ति ग्रहण कर सर्वसाधारण मनुष्य अपने दैनिक जीवन को उस उज्ज्वल आदर्श के अनुसार ढाल सकें तथा उन्नत कर सकें। जिन कठिनाइयों से वे पार निकले, माता–पिता तथा बाद में अर्धांगिनी के वियोग का दुख सहन किया और अंत में पाप एवं अधर्म की शक्तियों पर उन्होंने जो विजय प्राप्त की, उससे हमारे हृदय में आशा की लहर पैदा होती है और समस्त आपत्तियों से लोहा लेकर, उन पर विजय प्राप्त कर इस पृथ्वी पर अपने को ईश्वरीय प्रतिमा के अनुरूप हम बना सकते हैं।" अर्थात् वाल्मीकि–रामायण राम के एक ऐसे सांसारिक रूप का आख्यान है, जो विराट पुरुष तो हैं, किन्तु मानवीय स्वभाव उसमें सर्वथा आगे है। वह वियोग–संयोग व सुख–दुख आदि के सभी प्रसंगों में एक सामान्य मनुष्य की भाँति विह्वल होते हैं। सीता के भूमि में समा जाने पर राम वसुधा पर अत्यंत क्रोध प्रकट करते हैं तथा कहते हैं :–

"आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोअहं मैथिलीकृते।
न मे दास्यसि चे त्सीतां यथारूपां महीतले।।
सपर्वतनां कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितिम्।
नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवत्विह।।"

अतः राम का आदि स्वरूप ऐसा है, जो इस प्रकार के मानवीय क्रोध से स्वयं को बचा नहीं सका है। वह जहाँ कहीं भी अपना अवतारी होना विस्मृत करतें है, वहीं दैवीय सत्ता उन्हें अवतार का पुनः स्मरण कराती हैं। सीता के वियोग में क्रोधित राम को ब्रह्मा जी इस रूप में समझाते हैं :–

"राम राम न सन्तापं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
स्मर त्वं शपूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन।।"

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के नायक राम एक ऐसे विराट पुरुष हैं, जो अपनी अन्तश्चेतना में चाहे अवतार हों, किन्तु उनका बाह्य रूप मानवीय है। संसार के समस्त ताप से अन्य लोगों की भाँति वह भी ग्रसित हैं। वाल्मीकि के यह राम अपने युग की समस्त आकांक्षाओं को पूर्ण करते हुए, एक ऐसे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करते

हैं, जो दैवीय शक्तियों से संचालित होते हुए भी मानवीय है।

वाल्मीकि–रामायण के बाद तात्कालिक लोक भाषाओं में राम के स्वरूप के विभिन्न प्रशस्ति गान लिखे गए, किन्तु मध्यकाल में तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' राम–कथा को एक नया मोड़ देता है। वाल्मीकि के विराट पुरुष पूर्णतः अवतार के रूप में लोक–जीवन के निवारक का रूप लेकर तुलसी के मानस में विवेचित होते हैं। शुक्ल राम के इस अवतार को युगीन परिस्थितियों का ही परिणाम मानते हैं। मध्यकाल का भारतीय समाज जब चारों ओर से मुस्लिम शासन द्वारा परिचालित हुआ, तो हिंदू जनता के हृदय में निराशा की एक गहरी लहर दौड़ गई। वह अपने ईश के न तो गुण गा ही सकती थी और न लज्जित होकर सुन ही सकती थी। सच्चे शासकीय भाव समाप्त हो गए थे तथा एक भाई को मारकर दूसरा भाई राजगद्दी पाने के लिए तत्पर था। ऐसे विकट समय में वाल्मीकि के मानवीय भावों से परिपूर्ण राम पूर्णतः अलौकिक शक्तियों से ओतप्रोत हो तुसली के मानस में अवतार ग्रहण करते हैं।

रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "जिस समाज में बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान, अत्याचार का दलन करने वाले शूरवीरों के प्रति श्रद्धा इत्यादि भाव उठ जायँ, वह कदापि फल–फूल नहीं सकताय उसमें अशान्ति सदा बनी रहेगी। भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी समय भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ, जिन्होंने वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलाचार, वेदविहित कर्म, शास्त्रप्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित कर आर्यधर्म को छिन्न–भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वांगदर्शी लोक व्यवस्थापक महात्मा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र के चरित्र से बढ़कर और क्या मिल सकता था। उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उन्होंने धर्म के सब रूपों को दिखाकर, भक्ति का प्रकृत आधार खड़ा किया। जनता ने लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा।" अतः तुलसी के राम एक ऐसे अवतारी पुरुष का स्वरूप लेकर उपस्थित हुए, जिनमें ज्ञान–भक्ति–कर्म तीनों का सहज संयोग हुआ। वह मर्यादा और शील के संस्थापक बने, जिनका समस्त चरित्र आदर्श की अवधारणा का संस्थापक है। तुलसी ने राम के मानवीय गुणों से संबंधित अनेक प्रसंगों को हटाकर एक ऐसा चरित्र प्रस्तुत किया, जो हताश व निराश जाति में आशा की किरण लेकर उपस्थित हुआ। इस राम के चरित्र के संबंध में स्वयं तुलसी लिखते हैं :–

"कुपथ कुतर्क कुचाली कलि, कपट दंभ पाषंड।
देहन राम गुणग्राम इमि, ईधन अनल प्रचंड।।"

ऐसे अग्निपुंज राम को दैत्य, नाग, पक्षी, मनुष्य आदि सभी अपना अराध्य मानकर उनकी कीर्ति का गुणगान करते हैं :–

"असुर नाग खर नर मुनि देवा। आय करहिं रघुनायक सेवा।
जन्ममहोत्सव रचहिं सुजाना करहिं राम कलकीरति गाना।।"

अतः मध्यकाल के राम पौराणिक राम से भिन्न एक आदर्श राजा, भाई, पुत्र आदि के साथ–साथ अवतारी व दैवीय सत्ता के संवाहक बने। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने अंधकारमय युग को दिशा देने हेतु वाल्मीकि के राम को अपने युग के अनुरूप ढाल कर जनता के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत किया कि जनता उन्हें अपना रक्षक मानकर, निराशा के उस अंधकार से मुक्त हो सकने का स्वप्न फिर से देखने लगी।

मध्यकाल के बाद रीतिकाल का ऐसा युग हिंदी साहित्य ने देखा, जिसमें राजा की स्तुति, सुरा का पान व राजमहल में सम्मान पाना ही कवि होना बन गया। रीतिकाल में राम भी प्रतिभा–प्रदर्शन के निमित्त ही प्रयोग किए गए। केशव की 'रामचन्द्रिका' में राम का आचरण, शील–स्वभाव, लोक–कल्याणकारी रूप कहीं पीछे छूट गया और अलंकारों व छंदों का सौंदर्य आगे आ गया। आचार्य शुक्ल 'रामचन्द्रिका' के संबंध में लिखते हैं, "रामचंद्रिका के लंबे चौड़े वर्णनों को देखने से स्पष्ट लक्षित होता है कि केशव की दृष्टि जीवन के गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर न थी। उनका मन राजसी ठाटबाट, तैयारी, नगरों की सजावट, चहल पहल आदि के वर्णन में ही विशेषतः लगता है।" अतः राम को तुलसी ने मानवीय भक्ति के जिस स्तर व मर्म तक पहुँचाया था, वह युग–विशेष की चित्तवृत्ति के कारण अपना नया रूप लेने लगा। केशवदास ने राम के अवतारी स्वरूप को तो ज्यों–का–त्यों रखा, किन्तु छंद–शास्त्र का पांडित–प्रदर्शन उसमें प्रमुख हो गया। केशव स्वयं लिखते हैं :–

"जागति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छंद।
रामचन्द्र की चंद्रिका बरणत हौं बहु छंद।।"

अतः राम के व्यक्तित्व द्वारा विलासी राजाओं के सामने त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत होना चाहिए था, वह कहीं पीछे छूट गया और कवि का चमत्कार प्रदर्शन ही प्रमुख हो गया। इस युग में आकर राम के व्यक्तित्व की झलक कुछ फीकी पड़ गई। यह युग का ही प्रभाव था कि जनता ने राम जैसे चरित्र में भी अभिनय एवं मनोरंजन ही तलाशा।

रीतिकाल के बाद आधुनिक काल तक आते–आते एक ओर जहाँ भारत में शासन परिवर्तित होकर पूर्णतः अंग्रेजों के हाथों में चला गया, वहीं दूसरी ओर अब शासक भारत–भूमि के न रहकर बिल्कुल बाहरी हो गए। ऐसे में कवियों के सामने एक विशेष चुनौती आन खड़ी हुई कि इस ताकतवर सत्ता से लड़ने के लिए जनमानस को कैसे जागृत किया जाए? ऐसे विकट समय में लोकरक्षक राम का विराट व्यक्तित्व कवियों को पनुः आकर्षित कर रहा था। डॉ. रामलखन पाण्डेय इन परिस्थितियों के संबंध में लिखते हैं, "पौराणिक काल और भक्ति युग ने राम और कृष्ण को भगवान के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्हें इस देश की सामाजिक आत्मा से जिस रूप में भिन्न कर दिया था और धर्म ग्लानि एवं असुरों के अत्याचार के समय जिस तरह उनके द्वारा रक्षा की मोहक कल्पना को मानसिक संतोष में बैठा दिया था–पौराणिक और भक्ति युग का वह विह्वल करने वाला भाव–प्रवाह देश की जनता में उमड़ता हुआ भी देश की पराधीनता देखकर अवरुद्ध था, अंग्रेजों की दमन नीति और धर्म की दृष्टि में इन म्लेच्छों का धर्म–प्राण देश पर शासन–अवतारवाद की समस्त भावधारा को गन्धर्व नगर की परिकल्पना बनाए हुए था। धर्म की हानि हो रही थी, देश गुलाम था, फिर भी भगवान अवतार नहीं ले रहे थे, भगवान राम की अयोध्या, भगवान कृष्ण का गोकुल सभी हतप्रभ हैं, पर उस ज्योति का कोई पता नहीं है। इस परिस्थिति ने साहित्यिक बुद्धि और हृदय से पूर्ण जनचेतना को अतिमानवीय कल्पनाओं से हटाकर मानवीय विचारों की ओर उन्मुख किया।" अतः ऐसी परिस्थियों में कवियों द्वारा राम का ऐसा चरित्र जनता के सामने लाया गया, जो अवतार की अपेक्षा पुरुषार्थ, भाग्य की अपेक्षा कर्म को स्थापित करने वाला था। ऐसे समय में मैथिलीशरण गुप्त ऊर्मिला को आधार बनाकर एक ऐसी रामकथा 'साकेत' के रूप में सामने लाते हैं, जिसमें राम का चरित्र पुरुषार्थ का प्रतीक बनकर उभरता है। गुप्त के राम राज्य के अभीप्सक नहीं हैं, अपितु प्रजा के हितैषक के रूप में चित्रित हैं। गुप्त लिखते हैं :–

"वही हो जो तुम्हें हो इष्ट मन में,
बने नूतन अयोध्या नाथ वन में।
भले ही दैव का बल दैव जाने,
पुरूष जो है न क्यों पुरूषार्थ माने।"

अतः साकेत में राम अपनी पौराणिक व मध्यकालीन छाया से बाहर आकर, कर्म को ही जीवन का सौन्दर्य सिद्ध करते हैं। गुप्त के यह राम गाँधी के चरित्र में अपने युग का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं।

निराला के राम भी इसी समय–विशेष में शक्ति के पुँज बनकर उपस्थित होते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' के रूप में निराला राम के ऐसे स्वरूप को सामने लाते हैं, जो रणक्षेत्र में हत्तोत्साहित हुए सैनिकों को पुनः आन्दोलित करने की शक्ति से ओत–प्रोत हैं। वह अपनी समस्त साधना का कर्मफल राष्ट्र के उद्धार के लिए न्योछावर करने के लिए तत्पर हैं। समस्त पूर्ववर्ती काव्यों में वर्णित काव्यों से भिन्न निराला के राम के संबंध में रामविलास शर्मा की मान्यता है, "निराला के इस महाकाव्य खण्ड में जो गरिमा राम की ग्लानि, उनकी पराजय, महावीर के अन्तरिक्ष अभियान के चित्रण में है, वह पूजा के चित्रण में नहीं। निराला साधक हैं, पूजक नहीं। साधना रणभूमि से अलग एकांत ध्यान में नहीं है, रणभूमि में शत्रु से जूझते हुए ही साधना संभव है।"

अतः निराला पौराणिक संदर्भों में एक नया मोड़ देकर राम को भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम का कर्णधार निर्मित करते हैं। वह एकान्त में बैठकर निराशा में आशा जगाने वाले तुलसी के राम व केवल मानवीय गुणों से सुसज्जित गुप्त के राम से भिन्न आत्म–बलिदान तक के लिए तत्पर शक्ति के अराधक हैं। निराला राम के इस स्वरूप का चित्र खींचते हुए लिखते हैं :–

"धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध।
जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।
कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"

इस प्रकार निराला के राम भारतीय स्वतंत्रता के निर्णायक युद्ध में हताश जनता को पुनः संगठित करने का कार्य करते हैं। यहाँ पौराणिक राम फिर अपना रूप बदलकर, मानवीय जीवन की ज्योति प्रज्जवलित करते हुए, शक्ति अराधन द्वारा इस समर का अंत करते नजर आते हैं। युग की माँग के अनुसार यहाँ एक बार फिर राम अपने पूर्ववर्ती सभी चरितों से भिन्न हो जाते हैं।

20वीं शती के पाँचवे दशक में अनेक संघर्षों के पश्चात् जब भारतीय जन–मानस स्वतंत्रता को प्राप्त करता है, तो उसका वास्तविक रूप उसे अपने स्वप्न की स्वतंत्रता से भिन्न नजर आता है। जिस भारत का स्वप्न जनता गुलामी के दिनों में देखा करती थी, वह स्वतंत्रता के बाद के भारत को देख, खंडित हो गया था। ऐसे में जनता ने स्वयं को ठगा–सा पाया। एक बार फिर कवियों के सामने चुनौती उत्पन्न हुई कि जनता की आवाज सत्ता–लोलुप इन काले अंग्रेजों के सामने कैसे बुलंद की जाए? भारतीय लोक–मानस में विराजते राम में उन्हें फिर आशा की एक किरण नजर आई। उनकी लेखनी ने एक बार फिर राम के चरित्र को युग की आवाज के

रूप में सृजित किया, किन्तु इस बार राम न तो कोई विराट पुरुष थे और न ही किसी ईश्वरीय सत्ता के अवतार, वह थे केवल जनता के प्रतिनिधि और प्रजातंत्र के संस्थापक। सर्वप्रथम बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ऊर्मिला के चरित के माध्यम से एक ऐसे राम से जनता को रु–ब–रु कराया, जो सत्ता–लोलुप इन नेताओं के सामने प्रश्न–चिह्न की तरह खड़े हैं :–

"राज-भोग-मय जीवन में वह
ओज कहाँ, आदर्श कहाँ?
चिन्तन-स्थिरता कहाँ? कहो वह
विमल-विचार विमर्श कहाँ?"

यहाँ राम उन सभी साम्राज्यवादी ताकतों के विनाशक हैं, जो अपने निजी स्वार्थ के लिए दूसरों को अपना गुलाम बनाते हैं। यहाँ राम किसी भी प्रकार के अश्वमेघ यज्ञ के आह्वाहक नहीं है, बल्कि मानवीय जीवन में आनंद और समरसता के संस्थापक हैं। 'नवीन' ऐसे राम का चित्रण करते हुए लिखते हैं :–

"है साम्राज्यवाद का नाशक,
दशरथ-नंदन राम सदा,
है भौतिकता-वाद विनाशक,
जन-मन-रंजक राम सदा।"

'नवीन' की ही भाँति सुमित्रानंदन पंत के 'पुरुषोत्तम राम' भी प्रजातंत्र के उद्घोषक हैं। वे सभी धर्मों के सार मानवीय प्रेम के पालक हैं तथा मनुष्य की आन्तरिकता में निहित हैं। पंत इस राम के संबंध में लिखते हैं–

"मैं ही था गांधी, भारत का संविधान भी,
मैं ही शासन, सेना, रक्षा दल देशों में,
संप्रति, भू विकास की स्थिति से मैं ही अवरित
जूझ रहा अपनी अजेय संकल्प शक्ति से।
काल-रूप निज दिखा चुका तुझको गीता में।
मानव का सहयोग मुझे प्रिय क्रम-विकास हित।
धरा-स्वर्ग, इह-पर में मुझको करो न खंडित,
मैं ही ईश्वर-नर, जो तुझमें बोल रहा हूँ।
महानाश भी कालहीन मेरे स्पर्शों से
पलक मारते जी उठ्ठेगा,- सृजक-काम मैं।"

इस प्रकार राम मानवीय जीवन में नवीन मानवता लेकर उपस्थित हैं। वह आन्तरिक शक्ति का पुँज हैं। इस युग तक आते–आते उनका चरित एक ऐसे नायक का रूप ले लेता है, जो मानवीय साम्राज्य अर्थात् प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा के लिए प्रतिबद्ध है। यह पंत की अपनी निजी कल्पना–भर नहीं है, अपितु युग की माँग है, जिसके आधार पर वह पुरुषोत्तम राम का सृजन करते हैं।

आधुनिक युगीन परिस्थितियों में विवेचित राम–कथा के संदर्भ में रामलखन पाण्डेय मानते हैं, "चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पूर्ण इन रचनाओं ने इतिहास के यथार्थ सत्य को उभार कर रखने में अधिक क्षमता

प्राप्त की है।...चिन्तन प्रधान साहित्य की राम कथा संबंधी वे रचनाएँ भगवान राम को परमात्मा तत्त्व से उतार कर साधारण मानव की कोटि में रखने का प्रयत्न करती हैं।" अर्थात् आधुनिक रचनाओं में विवेचित राम मनुष्य भूमि पर आकर तत्कालीन समाज की सभी विकटताओं को नजदीक से महसूस करते हैं। वह अवतारी रूप में केवल आदर्श प्रस्तुत करने के लिए चित्रित नहीं होते, बल्कि जीवन की सभी चुनीतियाँ वह स्वयं भोगते हैं। आधुनिक युगीन आतंकवाद, अराजकतावाद और युद्धों की दहलीज पर खड़े वर्तमान विश्व के सामने राम नरेश मेहता की कलम से वह पुनः एक नया रूप लेकर उपस्थित होते हैं। युद्धों की विभीषिका को न चाहने वाले राम मानवीय जीवन को लेकर चिंतित है। नरेश मेहता राम के रूप में मनुष्य के इस संशय को चित्रित करते हुए लिखते हैं–

"धनुष, बाण, खड़ग और शिरस्त्राण।
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
बाण बिद्ध पाखी-सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए।
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए।
सीता भी नहीं।
हाय
आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन
अब नहीं बनूँगा कारण
जन जन के विनाश का।"

इस प्रकार राम का स्वरूप विभिन्न युगों में परिस्थितियों के अनुसार बदलते हुए मानवीय जीवन को नई दिशा प्रदान करता आया है। वाल्मीकि की राम कथा में वर्णित मानवीय सत्ता के विराट व्यक्तित्व राम युगीन परिस्थितियों के अनुसार कभी दैविय सत्ता से परिपूर्ण अवतारवादी, कभी मानवीय गुणों के पोषक करुणापुँज, कभी स्वतंत्रता–संग्राम की हताशा में शक्ति–उपासक, कभी सत्ताधिशों को लताड़ते साम्राज्यवाद विरोधी, कभी जीवन की जटिलताओं में युद्ध की विभीषिका से संशयित तथा कभी देश–काल की सीमाओं से ऊपर सर्वहितकारी रूप ग्रहण कर मानवीय जीवन को गरिमा प्रदान करते रहे हैं। अतः कहा जा सकता है कि युग–भेद के कारण राम के चरित्र में भी अन्तर आता चला गया है। यह राम के चरित की ही महत्ता है कि प्रत्येक युग ने उसमें अपनी छवि तलाशी है।

हिंदी की अवधि भाषा के इस श्रेष्ठ कवि का भारत में अवतरण उस समय हुआ जब देश कई छोटे–छोटे राज्यों–रियासतों में बंटा हुआ था और वे परस्पर एक दूसरे से लड़ते–झगड़ते ही रहते। इस परस्पर वैमनस्य और शत्रुता का लाभ उठा, विदेशी आक्रांता भारत की अकूत संपत्ति के प्रति लालायित हो नित्यप्रति हमले कर धन–सम्पत्ति लूट ले जाते। तुलसीदास जी का जन्म ई. 1568 एवं संवत् 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी को प्रयाग के निकट चित्रकूट जनपद के राजपुर गाँव में सरयूपरीण ब्राह्मण आत्माराम दूबे की धर्मपत्नी हुलसी के यहाँ

हुआ और उनका देहावसान श्रावण कृष्ण तृतीय, शनिवार संवत् 1680 को अस्सीघाट पर रामभजन करते हुए हुआ। अपनी आयु के 112 वर्ष में उन्होंने कई प्रकार की विषमताओं को न केवल देखा, अपितु उन्हें अपने शैशवकाल से ही झेला भी, जिन विषमताओं से आक्रांत तत्कालीन जन–सामान्य त्राहिमाम–त्राहिमाम की स्थिति में था। तुलसीदास के जन्म व बचपन से कई असाधारण–सी बातें जुड़ी हैं, उनका बचपन का नाम श्रामबोलाश था। इसके पीछे भी एक किंवदंती कहें या तथ्य–सत्य है, कि जब तुलसीदास जी का जन्म हुआ तो पैदा होते ही उनके मुँह से राम शब्द निकला, दूसरी बात उनका जन्म बारह महीने के गर्भाधान के बाद हुआ था। जन्मते ही रोने की अपेक्षा उनके मुँह से राम निकला, इसी के आधार पर उनका नाम 'रामबोला' पड़ गया। लेकिन ऐसे असाधारण बालक से किसी अनिष्ट की चिंता में उनकी माँ हुलसी ने जन्म के दो दिन बाद ही उसे अपनी दासी श्चुनियाँश के साथ उसके ससुराल भेज दिया और उसके दूसरे दिन ही हुलसी की मृत्यु हो गई। दासी ने साढ़े पांच वर्ष रामबोला का पालन–पोषण बहुत अच्छी तरह से किया, लेकिन उसके बाद वह भी स्वर्ग सिधार गई। रामबोला का बचपन सामान्य बच्चों जैसा नहीं था। उसका कोई भी सहारा न रहा तो उन्हें एक अनाथ का–सा जीवन व्यतीत करना पड़ा। प्रभु प्रेरणा से रामशैल के वासी श्री अनंतानन्द जी के शिष्य श्री नरहर्यानन्द उर्फ श्रीनरहरि जी भगवान शिव शंकरजी की प्रेरणा से उस बालक को ढूंढ कर अपने आश्रम ले आए और तुलसी के पौधों की परवरिश करने की सेवा उन्हें दे दी। रामबोला ने उसे बड़ी निष्ठा से निभाया। तुलसी की सेवा करते हुए ही इनका नाम 'तुलसीदास' पड़ गया।

एक बात सर्वविदित है कि राम से उनका अनुराग बचपन से ही रहा और जितने कष्टों में उनका जीवन बीता, उसी तरह उन्होंने दूसरों के कष्टों को अपने मन में सहेज कर, उन्हें दूर करने का काव्य–प्रयोजन बना लिया और जिसे राम–काव्य में यथासंभव लोकमंगल की कामना से ही पूर्ण किया। अपने जीवन में झेले गए उन दारुण कष्टों की छाप–छवियाँ उनके बाल–मन पर गहराई से अंकित हो गई। इन्हीं परिस्थितियों का सूक्ष्म विवेचन उनके काव्य में पदे–पदे दिखाई दे जाता है। निश्चय ही वे इन विषमताओं से छुटकारा पाने के लिए श्रीराम जी का आश्रय लेते हैं, जो उनकी लेखनी को समाज कल्याण की ओर अग्रसर करती है। केवल यही आश्रय उन्हें न केवल तत्कालीन समाज को हर तरह की विषमताओं से उबरने का निमित्त बना देता है, अपितु उनका काव्य हर युग में हर तरह की विषमताओं–विसंगतियों से पार पाने का एक सशक्त आधार बन जाता है। वैसे तो तुलसी जी के कवित्त, पदावली आदि काव्य–कृतियां ईश्वरीय भक्ति से जन–कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का अवलम्बन मानी जाती हैं, लेकिन सृष्टि में व्यापक जन–कल्याण के लिए 'रामचरितमानस' उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसे मानव–कल्याण के दृष्टिकोण से उच्च कोटि का महाकाव्य–ग्रंथ माना गया है, जो विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में गिना जाता है। यह एक ऐसा ग्रंथ है जो मानव–जीवन जीने की सर्वोच्च कला मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हुए, सहज रूप से श्री राम जी के चरित्र के उदात्त कृत्यों से सीखने के लिए प्रेरित करता है।

'रामचरितमानस' मात्र एक ग्रंथ ही नहीं अपितु एक ऐसा मानव–कल्याणकारी दस्तावेज है, जिसमें समाज में मानव के उदात्त पक्ष को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप सूक्ष्म–गहन विश्लेषण से विविध काव्य–छन्दों से सुन्दर भाषा–शैली में विवेचित किया गया है। यही नहीं समाज में प्रत्येक छोटे–बड़े सामाजिक पहलूओं यथा सम्बंध, मात–पिता, भाई बांधव, पति–पत्नी, जीवन–स्थितियां, धर्म, ज्ञान–भक्ति, मत–मतांतर, जाति–पाती,

जीवन–शैली, ग्रामीण–नागरिक–बनचारी, शासन–सत्ता, राजा–प्रजा, पारिवारिक–ढाँचे, नर–नारी–बाल, भाव–भावनाएँ, हर्ष–उल्लास–सुख–दुःख मनाने के ढंग, मानव–प्रकृति, मानव–जीवन के आंतरिक–बाह्य–विचार, विविध रूपा प्रकृति चित्रण आदि सभी विषयों पर सुन्दर काव्य–छंदों में बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचित किया गया है।

गोस्वामी जी की 'मानस' में व्यक्त यही सूक्ष्म सामाजिक–चेतनायुक्त लेखन शैली आज तक के समाज में माानव की राहें प्रशस्त कर रही है और आगे भी भावी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करती रहेगी। फिर गोस्वामी जी की विनम्रता, अहं–भाव–रहित अपनी उदात्त लेखन–कला का सारा श्रेय श्रीराम भगवान् को ही समर्पित करते हैं, इस दोहे में उनके भाव हैं :–

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचार सुनिहहि सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक।।
चौ. एहि महँ रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुराण श्रुति सारा।।
मंगल भवन अमंगल हारी।
उमा सहित जेहि जपत पुरारि।।

मानसकार तुलसीदास ने श्रीराम के चरित्र के लोकनायक पक्ष की ऐसी मंगलकारी अभिव्यक्ति की, जिसने युगों–युगों तक राम जी को ऐसा अवतारी स्वरूप प्रदान किया, जो प्रत्येक दारुण स्थिति में, हर तरह के कष्ट–चुनौती से, हर हाल में, प्रत्येक स्थिति में शांतचित्त जूझते हुए जीवन–संग्राम में विजयी होता है। उनका यही उदात्त पक्ष जनमानस को सुदृढ़ विश्वास का प्रश्रय देता है। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने राम के स्वरूप को मानव जाति का ऐसा ही सबल अवलंबन दिया है, जो न केवल अपने समय की त्राहिमाम कर रही जनता को तथा दुःख–संताप झेलती निम्न जातियों को समाज व्याप्त विषमताओं से बचाने का सुदृढ़ आधार बनता हैय अपितु हर युग में उपेक्षितों का उद्धारकर्ता बन जाता है, देखियेय चौपाई का अंश जो हर तरह के दुःख–क्लेश का हरता ही माना गया है :–

सो केवल भगतन हित लागी।
परम कृपाल प्रनत अनुरागी।।
जेहि जन पर ममता अति छोहू।
जेहिं करूणा कर कीन्ह न कोहू।।
गई बहोर गरीब नेवाजू।
सरल सबल साहिब रघुराजू।।
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी।
करहिं पुनीत सुफल निज बानी।।
तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा ।
कहिहउँ नाइ राम पद माथा।।

इस चौपाई में रामकथा की महिमा अतुलनीय है कि जो यह खोई हुई वस्तु, मान–मर्यादा, यश–कीर्ति, सब दिलवाने वाली है, ये छवि रामजी के गरीब निवाज रूप की, दीन–अनाथों के नाथ की है, जो सर्वशक्तिमान होते

हुए भी सरलचित्त व सबके स्वामी सखा हैं। ऐसे सुदृढ़ स्वामी श्री राम का प्रश्रय लेकर ही गोस्वामीजी, न कि केवल अपनी बुद्धि–बल के भरोसे से, अपितु श्रीराम जी पर अटूट विश्वास से इस जन–हितकारी रामकथा की रचना करने का निश्चय करते हैं। लेकिन उन्हें तत्कालीन समाज में कई तरह की विभिन्नताएं एवं विरोधी प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं। ये वह समय था जब समाज में कई मत–मतांतर पैदा हो गए थे और सामान्य–जन को नितांत निर्धनता में जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। अधिकांश लोगों में एक दूसरे के प्रति विद्वेष–अविश्वास बढ़ रहा था। निर्धन अतीव निर्धन होते गए। राजा और प्रजा में भी परस्पर दूरियाँ बढ़ती गई। इन सभी स्थितियों का गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े ही मनोयोग से विवेचन भी किया और उन्हें काव्य का प्रमुख विषय बना कर प्रत्येक स्तर की विषमता को समरसता में बदलने का प्रयास अपने विविध काव्य–छंदों व काव्य–शैली में किया। समाज व्याप्त उन दारुण विषमताओं को तुलसी–काव्य में कलिकाल के रूप में, दम्भ से आकंठ डूबे जनों के आचार–व्यवहार को धर्म की हानि के रूप में दर्शाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ए वेवर पृ –१४ आदि और हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, पृ –१६२
2. ए रमेशचन्द्र वही पृ –२११
3. ए वी कीथ, संस्कृत लिटरेबर–पृ ४३
4. जे पिक्फर्ड महावीर चरित लंदन– १८७१ पृ –८ भूमिका।
5. ऋग्वेद– 1/126/4, 4/57/6–7 आदि।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गौरोला पृ. सं. २०६
7. मानस की रामकथा–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ. सं. ६०
8. आन दि रामायण डा. वेवर, पृ. ११
9. दी बंगाली रामायण–डॉ. दिनेश चन्द्र सेन (कलकत्ता–१६२०)
10. हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग–२ जेप्टी विलर (लन्दन–१८६६)
11. राम कथा–कामिल बुल्के, पृ १११,११२
12. दस रामायण–एच योकोवी, पृ. सं. ८६, १२७
13. मानस की रामकथा–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ६४
14. संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर, पृ. ६६
15. रामकथा–डा कामिल बुल्के, पृ. ६४
16. मानस मीमांसा– रजनीकान्त शास्त्री, पृ. ६२–६३
17. लोक एवं महाकाव्य के नायक राम–डॉ. भागीरथ मिश्र (धर्मयुग, ११ अक्टूबर, १६६४)
18. मानस की राम कथा–परशुराम चतुर्वेदी, पृ. १०१
19. तैत्तिरीय ब्राह्मण–2/3/1
20. डॉ. ए वेवर आन दि रामायना, इण्डियन एन्टीक्वैरी।
21. डॉ. जैकोवी–डोज रामायना अनु. एस, एन. चोसेल–पृ. १०१, १०३

22. डॉ. ए. वेवर–आन दि रामायना, पृ. १७२
23. डा. जैकोवी दस रामायण, पृ. ६४, ६५
24. एम. विन्टरनिटज प्राचीन भारतीय साहित्य, प्रथम भाग द्वितीय खण्ड, पृ. १७८, ८४
25. रामचरितमानसय गोस्वामी तुलसीदास की संक्षिप्त जीवनी, पृ. 967.
26. रामचरितमानसय प्रथम सोपान –बालकाण्ड, दो. चौ. 9, पृ. 13.
27. वहीय चौ. 12, बा.का. पृ. 17.
28. रामचरितमानसय सप्तम सोपान, उत्तर काण्ड, दोहा 17 क, ख, पृ. 920.

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115